क्रम

भूमिका

हिन्दी काव्य की तरह उर्दू शायरी का नवीन काल भी १८५७ ई० की क्रान्ति के वाद शुरू होता है। इससे पूर्व की सौ वर्षीय उर्दू शायरी (अपवादो को छोड़ कर) वादशाहो के कसीदो (प्रशसात्मक काव्य), सूफियाना और इश्किया गजलो तक ही सीमित थी। मानसिक विलासप्रियता, नैराश्य, करुणरस, व्यक्तिवाद, आध्यात्मिकता, अवसन्नता इत्यादि प्रवृत्तियो को विभिन्न 'रदीफो' और 'काफ़ियो' में व्यक्त करने और शाब्दिक वाजीगरी दिखाने को ही (जिसे 'नाजुक-ख्याली' कहा जाता था) काव्य की पराकाष्ठा माना जाता था। ऐसा होना एक रूप से अनिवार्य भी था क्योकि जव तक शांत तथा स्थिर सामाजिक जीवन मे भौतिक तथा चितनात्मक परिवर्तन उत्पन्न न हो, साहित्य तथा काव्य के लिए भी, जो जीवन का प्रतीक होता है, नये मार्ग नही खुलते। ऐसे परिवर्तनो के लिए किसी वडी सामाजिक तथा राजनैतिक क्रान्ति की आवश्यकता होती है जो १८५७ ई० से पूर्व भारत के दीर्घ जागीरदारी-काल मे कही नजर नही आती। परिस्थितियो मे परिवर्तन अवश्य हुए। राज्य वदलते रहे, खून की नदिया भी वही किन्तु इन समस्त वातो का सामूहिक सामाजिक जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नही पड़ा। वह जहां था, वही रहा। ऐसी स्थिति मे जव कि देश का सामाजिक जीवन शताब्दियो तक एक विशेष वातावरण मे सीमित और एक विशेष डगर पर चुपचाप चलता रहा हो, साहित्य तथा काव्य में अपेक्षित उत्थान की तलाश व्यर्थ होगी। प्राचीन उर्दू शायरो को यदि काल्पनिक 'माशूक' की जुल्फो से डसे जाने और सीने पर नजरो के तीर खाने से फुर्सत न मिली तो उसमे उनका उतना दोष नही जितना उस काल की व्यवस्था का था।

वह व्यवस्था ही ऐसी थी जो शायर को जीवन की मूल समस्याओ के प्रति विमुख हो 'जाम और सबू' मे डूबने, मस्त-अलस्त रहने या अधिक से अधिक 'खुदा से लौ लगाने' की प्रेरणा करती थी। अतएव वे शायर जो राजदरबारों से सम्बधित थे वे :

गर यार मय पिलाये, तो फिर क्यो न पीजिये
ज़ाहिद नहीं, मैं शेख नही, कुछ वली नही
(इन्शा)

की रट लगाते रहे और जिनकी पहुँच दरबारो तक न हो सकी थी, आर्थिक दरिद्रता ने उन्हें निराशावादी वना दिया और जीवन उनके समीप 'रात को रो रो सुवह करने' और 'दिन को ज्यो त्यो शाम करने' का विषय वन गया और यह सिलसिला इतनी दूर चला, इतना शक्तिशाली हो गया कि अठारहवी शताब्दी के मध्य मे जव 'नज़ीर' अकवरावादी ने शायरी की इन प्राचीन परम्पराओं के विरुद्ध व्यक्तिगत विद्रोह किया, शायरी को नवाबो की विलासतापूर्ण महफिलो और नीद की पेंग में निमग्न शायरो की पकड से निकाल कर वीच चौराहे मे खडा करने का प्रयत्न किया और

टुक हिरस-ओ-हवा[1] को छोड मियाँ, मत देस विदेस फिरे मारा
कज्ज़ाक़[2] अजल को लूटे हैं, दिन रात वजाकर नक्कारा
क्या वधिया, भैंसा, वैल, शुतर, क्या गउए पल्ला सर भारा
क्या गेहूँ, चावल, मोठ, मटर, क्या आग, धुआ और अगारा
सव ठाठ पडा रह जायेगा जव लाद चलेगा वजारा

ऐसे शेर कहकर मनुष्य और उसकी सामाजिकता को काव्य-विषय वनाया तो लकीर के फकीरो ने उन्हें वाज़ारू और घटिया शायर कहकर नज़र-अदाज़ कर दिया। यहाँ तक कि उन्नीसवी शताव्दी के प्रारभ मे जव 'गालिव' ने गज़ल के तग दामन को फैलाने और उसमे दार्शनिकता समोने का प्रयत्न किया तो उन्ही सज्जनो ने उन पर 'मोहमलगो' (अर्थहीन शेर कहने वाला) होने का आरोप लगाया और उसके चौथाई शताव्दी वाद तक .

---

१ लोलुपता २ डाकू

रुख-ए-रोशन के आगे शमा रखकर वो यह कहते हैं
उधर जाता है देखे या इधर परवाना आता है
(दाग)

—ऐसे काव्य को ही महान काव्य का स्थान देते रहे।

१८५७ की असफल क्रांति के बाद भारत की राजनीति मे असाधारण और मौलिक परिवर्तन हुआ। शताब्दियो की जागीरदारी व्यवस्था पतनशील हुई और उसके स्थान पर पश्चिम से आई हुई औद्योगिक तथा व्यापारिक व्यवस्था उत्तरोत्तर बढने लगी। सामान्य राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तनो से सामाजिक जीवन तथा मानव विचारो मे भी परिवर्तन होने लगे। जीवन की जर्जर परम्पराओ पर कुठाराघात हुआ, नये रूप से वर्गीकरण हुआ और मध्यम वर्ग के लोगो ने पश्चिमी विद्या-विज्ञान को अपनाना शुरू किया। प्रत्यक्ष है इस सार्वभौम परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर होना भी अनिवार्य था। इसी सामाजिक परिवर्तन ने कुछ ऐसे व्यक्तियो को भी जन्म दिया जो चैतन्य रूप से साहित्य तथा काव्य को बदलती हुई परिस्थितियो के साथ-साथ चलाना चाहते थे। जिन महान् लेखको और कवियो ने उस समय परिवर्तनशील परिस्थितियो को स्वीकार किया और आगे बढते हुए जीवन का साथ दिया उनमे सर सय्यद, हाली, आज़ाद और शिवली के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १८६७ मे 'आज़ाद' ने पहलेपहल उर्दू शायरी को 'नज़्म' नामक काव्य-रूप से परिचित कराया और लाहौर मे कर्नल हालरायड (डायरेक्टर, शिक्षा विभाग, पजाब) की सहायता से ऐसे मुशायरो की नीव रखी जिनमे शायर को ग़ज़ल का 'तरह मिसरा' देने की बजाय नज़्म के लिये कोई उपयोगी विषय दिया जाता था। स्वयं आज़ाद ने प्राकृतिक दृश्यो पर बहुत-सी कविताएँ लिखीं। उनके सम्मुख दो मौलिक सिद्धान्त थे; एक तो काव्य-विषय का अनुक्रम और दूसरे 'हुस्न व इश्क' की तग गली से निकलकर अन्य सासारिक विषयो का प्रयोग। परन्तु 'आज़ाद' का काम अधूरा रहता यदि इस आदोलन का नेतृत्व 'हाली' अपने हाथ मे न लेते। 'हाली' साहित्य द्वारा एक उद्देश्य सिद्ध करना चाहते थे और उन्होंने नि:सन्देह उसमे बहुत महत्वपूर्ण तथा महान उद्देश्य सिद्ध किया। 'मुसद्दस' द्वारा जैसी कल्याणकारी नज़्म लिखकर उन्होंने प्राचीन शायरी के रूप-रग को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी बदल

डाला और फिर 'मुक़दमा शेर-ओ-शायरी' जैसा महान् आलोचना-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखकर तो रही-सही कसर पूरी कर दी। शायरी को दैवी सकेत और शायर को अमानवीय व्यक्ति कहकर प्रसन्न तथा सन्तुष्ट हो रहने वाले लोगो को पहली बार ऐसी तर्कपूर्ण बातो से चौंकाया कि .

> "कायद है कि जिस कदर सोसाइटी के ख्यालात, उसकी रायें, उसकी आदतें, उसकी रगबतें (रुचिया), उसका मेलान (प्रवृत्ति) और मजाक बदलता है, उसी कदर शेर की हालत बदलती रहती है और यह तब्दीली बिल्कुल बेमालूम होती है क्योंकि सोसाइटी की हालत देखकर शायर कसदन अपना रग नही बदलता बल्कि सोसाइटी के साथ-साथ वह खुद भी बदलता है।"
>
> (मुकदमा शेर-ओ-शायरी)

अधिक विस्तार मे न जाकर 'हाली' के काम को समझने के लिए यह कह देना पर्याप्त होगा कि जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी-काव्य को रीतिकाल की दलदल से निकालकर उपयोगिता तथा राष्ट्रवाद की राह पर लगाया था, उसी प्रकार हाली ने उर्दू की कृत्रिम इश्किया शायरी की चूलें हिला दी और न केवल अपने काल के कवियो और साहित्यकारो का बल्कि आने वाली पीढी का भी पथ-प्रदर्शन किया।

'हाली' के बाद उर्दू साहित्य मे एक अतरिम-काल आता है जिसमे पश्चिमी साहित्य से जानकारी बढी। पश्चिम का काव्य साहित्य चू कि अपने जागीरदारी काल की मजिलों से गुजर कर बहुत आगे निकल चुका था इसलिए उससे प्रभावित होने वाले उर्दू कवियों ने काव्य विषय को विशाल करने के साथ-साथ उर्दू नज्म को कलात्मक परिपक्वता भी प्रदान की। इस प्रसग मे अजमत अल्लाह खा का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने शायरी मे नये छदो की आवश्यकता, अग्रेजी काव्य-रूपों के प्रसार, भाषा मे हिन्दी शब्दो तथा प्रक्रियाओ के समावेश से स्मृद्धि पैदा करने और विचार और भावो के प्राकृतिक प्रकटीकरण पर जोर दिया और उर्दू शायरी मे पहली बार ग़ज़ल के काल्पनिक 'माशूक' को हाड-मास प्रदान कर उसके लिए स्त्रीलिंग का प्रयोग किया† (इससे पूर्व 'माशूक' के लिए पुल्लिग इस्तेमाल होता था जिसे प्रत्यक्ष रूप से फारसी से लिया

† इस प्रसग मे आगे चलकर अख्तर शीरानी ने उर्दू शायरी के माशूक पर 'सलमा', 'अजरा' आदि स्त्री नामो की अमिट मुहर लगा दी।

गया था)। लेकिन अज़मत अल्लाह् खा की शायरी केवल इश्किया यथार्थवाद (जो अपने आप मे बहुत बडा कारनामा थी) तक सीमित रही। सामूहिक रूप से उर्दू शायरी को धरती से उठाकर आकाश तक पहुँचाने का सेहरा 'इकबाल' के सिर आता है।

इकबाल के साथ-साथ या कुछ पहले अकबर इलाहाबादी, चक्वस्त, हसरत मोहानी, सरवर जहाबादी, इस्माईल मेरठी इत्यादि अपने समय के उच्चकोटि के कवियो ने साहित्य और समाज तथा साहित्य और राजनीति के सम्बन्ध को काफी सुदृढ किया लेकिन उनमे से अधिकाश की कवितायें राजनैतिक नारो से आगे न बढ सकी। इकबाल की शायरी का प्रारंभ भी यद्यपि राजनैतिक नज्मो से हुआ किन्तु अपने समकालीन शायरो की अपेक्षा उनका राजनैतिक बोध काफी आगे था। उन्होंने भारतीय राजनीति के लगभग समस्त पहलुओ को अपनी शायरी मे स्थान दिया लेकिन पर्याप्त चिंतन के बाद—इसी विशेषता ने उनमे गहराई उत्पन्न की और वे न केवल अपने युग के महान् कवि बने अपितु एक दार्शनिक भी। उन्होने हिन्दु-मुस्लिम एकता के गीत गाये, देश की मिट्टी का कण-कण उन्हें देवता नजर आया। देश मे एक 'नये शिवाले' की नीव रखने के उन्हो ने मनसूबे बाधे, भारतवासियो की मौलिक समस्याओ पर गहरी दृष्टि डाली और श्रमजीवियो को जागरूक होने का सदेश दिया। १९१७ ई० मे जब रूस मे महान् क्रान्ति हुई और दुनिया के छठे भाग मे श्रमिक वर्ग ने साम्राज्य और पूजीवाद का तख्ता उलट दिया तो इकबाल ने इसे 'वतन-ए-गेती' (जगत की कोख) से 'आफ्ताब-ए-ताज़ा' (नवप्रभात) का नाम दिया और इसके साथ ही उस रोमांटिक क्रान्तिवाद की परिपाटी पडी जो 'जोश' मलीहाबादी के हाथो निखरती हुई आधुनिक काल के प्रगतिशील कवियो की सम्पत्ति और काव्य-विषय बनी। हाली और इक़बाल के बिना आधुनिक उर्दू शायरी को आज की मंज़िल पर पहुँचने के लिए शायद बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती।

१८५७ ई० के बाद आधुनिक उर्दू शायरी देश तथा मानव-प्रेम और साम्राज्य-विरोध की मजिलें तय करती हुई जब प्रथम महायुद्ध के बाद नये क्रातिकारी मोड पर पहुँची तो एक बार पुन उसमे गतिरोध उत्पन्न हो गया। नई राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ शायरों से कुछ ऐसी माँगें करने लगीं जिन्हें स्वयं इकबाल भी पूरा न कर सके (और उन्होंने इस्लाम की दुनिया मे जा शरण ली)। देश मे स्वतंत्रता आन्दोलन इतना प्रबल

हो गया और किसानो के विद्रोह और मजदूरो के सगठन के भय से साम्राजी अत्याचार इतना बढ़ गया कि राजनैतिक नेताओ की भाँति लेखक तथा कवि भी इस असमजस मे पड गये कि आगे बढ़ें या वही रुक जायें—ऐसे नाज़ुक, महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक मोड पर कथा-साहित्य मे प्रेमचन्द और काव्य-साहित्य में 'जोश' मलीहाबादी उर्दू साहित्य के नेतृत्व के लिये आगे बढे। प्रेमचन्द ने साहित्य मे यथार्थवाद की नीव डाली और जोश ने रोमासवाद को आगे बढाया और अपनी एजीटेशनल नज़्मो द्वारा अग्रेज़ी शासन और उसके अन्याय तथा अत्याचारो पर आक्रमण किये। स्वतन्त्रता सग्राम में मर-मिटने के लिए नौजवानो को ललकारा। हर प्रकार की राजनैतिक समझौतावाज़ी पर लानतें भेजी और साम्यवाद के उगते हुए सूरज की ओर ऐसा स्पष्ट सकेत किया कि उनके बाद आने वाला प्रत्येक प्रगतिशील कवि उस सूरज के प्रकाश मे नहा गया। इन्ही दो महान् साहित्यकारो के नेतृत्व मे लेखक तथा कवि एक यात्री-दल का रूप धारण कर गये और इस दल ने १९३५ ई० मे 'प्रगतिशील लेखक सघ' की नीव डाली।

प्रगतिशील लेखक सघ की नीव डालने वाले और उसके घोषणा-पत्र के प्रस्तावक सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनन्द आदि ऐसे तरुण परन्तु शिक्षित लेखक थे जिन्होंने अपने प्राचीन, अर्वाचीन साहित्य के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य और उसकी धाराओ का गहरा अध्ययन किया था। 'साहित्य को जीवन का प्रतीक' वनाने के साथ-साथ वे उसे 'भविष्य के निर्माण का प्रभाव-शाली साधन' वनाना चाहते थे और चाहते थे कि 'भारत का नया साहित्य हमारे जीवन की मौलिक समस्याओ को अपना विषय वनाये—ये भूख, निर्धनता, सामाजिक विषमता तथा परतन्त्रता की समस्यायें हैं।'

यह आवाज़ इतनी शक्तिशाली तथा सक्रिय थी कि न केवल तरुण कवि और लेखक इससे प्रभावित हुए वल्कि उस समय के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों ने इसका स्वागत किया। काव्य साहित्य को उस समय तक आज़ाद, हाली, शिवली, इकवाल और जोश जो चिंतनशीलता प्रदान कर चुके थे, नई पौध के कवियो ने उसे और विकसित किया और आज जव हम १९३५ ई० के वाद के उर्दू काव्य-साहित्य का निरीक्षण करते हैं तो इसकी असाधारण उन्नति पर आश्चर्य प्रकट किये विना नहीं सकते। आज की उर्दू शायरी को किसी कोण से देख लीजिये, वह ससार की उन्नत से उन्नत भाषा के काव्य साहित्य का मुकाविला कर सकती है।

इस संकलन मे जैसा कि इसके नाम से प्रत्यक्ष है, केवल आज के उर्दू शायरों की रचनाओ का सकलन प्रस्तुत किया गया है। परन्तु आज के उर्दू शायर सख्या मे कुछ कम नही हैं। उनमे एक वडी सख्या ऐसे शायरो की भी है जो उर्दू-साहित्य मे अपने नाम तथा काम के लिए अमर स्थान प्राप्त कर चुके हैं परन्तु कई एक विवशताओ के कारण वे सभी इस सकलन की शोभा नही वन सके, जिन्हें इस सग्रह मे नही लिया जा सका, उनसे मैं हार्दिक क्षमा चाहता हूँ।

—प्रकाश पण्डित

—उन शायरो के नाम जो इस पुस्तक की शोभा नही बन सके



'जोश' मलीहाबादी

काम है मेरा तग़य्युर नाम है मेरा शबाब
मेरा नारा इन्क़िलाबो-इन्क़िलाबो-इन्क़िलाब

दूसरी ओर मशीन पर हल को और नागरिक जीवन पर ग्राम्य जीवन को प्रधानता देते हैं। ज्ञान को नारी के सौन्दर्य की मृत्यु और नारी को पुरुष के सुख-वैभव का एक साधन मानते हैं।

'जोश' साहब के व्यक्तित्व की यह दोरुखी उनकी पूरी शायरी मे भी, जो लगभग आधी सदी मे फैली हुई है, विद्यमान है। और इसकी पुष्टि करते हैं 'अर्शो-फर्श' (धरती और आकाश) 'शोला-ओ-शवनम' (आग और ओस) 'सुवलो-सलासिल' (सुगन्धित घास और जजीरें) इत्यादि उनके कविता-सग्रहो के नाम, और उनकी निम्नलिखित रुबाई से तो उनकी पूरी शायरी के नैन-नक्श सामने आ जाते हैं

झुकता हूँ कभी रेगे-रवाँ[1] की जानिव,
उडता हूँ कभी कहकशा[2] की जानिव,
मुझ में दो दिल हैं, एक मायल-व-ज़मी[3],
और एक का रुख है आसमा की जानिव।

'जोश' की शायरी की इस परस्पर-विरोधी-अवस्था को समझने के लिए जिसमे एक साथ खैयाम, हाफिज़, गेटे, नतशे और कार्ल मार्क्स का दर्शन विद्यमान है, आवश्यक है कि उस वातावरण को, जिसमे शायर का पालन-पोषण हुआ, और उन सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियो को, जिनमे शायर ने अपनी आख खोली, सामने रखा जाए, क्योकि मनुष्य का सामाजिक-वोध सदैव समाज के परिवर्तन-शील भौतिक मूल्यो का वदी होता है और वह चीज़ जिसे 'घुट्टी' कहा जाता है मनुष्य के जीवन मे वहुत महत्व रखती है।

शवीर हसन खा 'जोश' १८९४ मे मलीहावाद (उत्तर-प्रदेश) मे पैदा हुए। जाति के पठान और रहन-सहन से लखनवी। परदादा फकीर मोहम्मद 'गोया' अमीर-उद्दौला की सेना मे रिसालदार भी थे और साहित्य-क्षेत्र के महारथी भी। गज़लो का एक सग्रह तथा गद्य की एक प्रसिद्ध पुस्तक छोडी। 'गोया' के पुत्र मोहम्मद खा अहमद भी एक प्रतिभाशाली शायर थे। यो 'जोश' ने उस जागीरी वातावरण मे पहली सास ली जिसमे काव्य की रुचि के साथ-साथ घमण्ड, आत्मश्लाघा और अहम्मन्यता की भावना शिखर पर थी। गाव का कोई प्राणी यदि खीचे हुए धनुप की भान्ति शरीर को दोहरा करके सलाम न करता था तो मारे कोडो के उसकी खाल उधेड दी जाती थी। (स्वय 'जोश'

---

१ आधी-झक्कड से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाली रेत। २ आकाश-गगा ३. धरती की ओर वढने वाला।

साहव भी एक शरीर पर अपनी छडी आजमा चुके हैं।) प्रत्यक्ष है कि जन्म लेते ही 'जोश' इस वातावरण से दामन न छुडा सकते थे। उनमे भी वही आदतें उत्पन्न हो गईं जो उनके पूर्वजो का स्वभाव वन चुकी थी। अत. अपनी मानसिक स्थिति के सम्वन्ध मे एक स्थान पर वे स्वय लिखते हैं "मैं लडकपन मे अत्यन्त क्रूर था। मेरे हर वोल से जैसे चिंगारिया निकलती थी ....मेरे स्वभाव की यही मौलिक कटुता मेरी राजनैतिक शायरी मे तीखा-कडवा स्वर वनकर आज भी व्यक्त होती है और मेरी शायरी का समालोचक मेरे स्वर की कर्कशता पर चीख उठता है।"

स्वर की इस कर्कशता ने जोश के सामाजिक सम्वधो पर कुठाराघात किया। उन्होने अपने पिता से विद्रोह किया। पूरे कुल से विद्रोह किया। धर्म, राज्य, समाज अर्थात् हर उस चीज से विद्रोह किया जो उन्हे अपने स्वभाव के प्रतिकूल प्रतीत हुई और विद्रोह के इस सिलसिले ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि कई स्थानो पर उन्होंने केवल विद्रोह के लिए विद्रोह किया और स्वय को सर्वोपरि तथा सर्वोच्च समझ कर .

"दूसरे आलम[1] मे हूँ दुनिया से मेरी जग है।"

कहा और

काम है मेरा वगावत नाम है मेरा शवाव[2]।
मेरा नारा इकिलावो-इकिलावो-इकिलाव[3]॥

का नारा लगाया।

उन्होंने वगावत और इक्तिलाव (विद्रोह तथा क्रांति) का एक ही अस्तित्व माना और उसी रूप मे उन्हे हमारे सामने पेश किया और देश की जनता ने जो अग्रेजी राज्य मे वुरी तरह पिस रही थी और देश की स्वाधीनता के लिए सघर्ष कर रही थी, उनके इस नारे को उठा लिया। वह एक विचित्र सघर्षपूर्ण काल था। इधर भारत साम्राज्य की जजीरो मे जकड़ा हुआ स्वतन्त्रता की लडाई लड़ रहा था और उधर रूस की क्रांति के वाद एक नया जीवन-दर्शन सारे संसार को अपनी ओर आकर्पित कर रहा था। अंग्रेजो ने इस नये दर्शन की वास्तविक रूप-रेखा भारत तक नहीं पहुँचने दी और न ही उस समय भारत मे श्रमजीवियो का कोई ऐसा सगठित दल था जो वर्गीय हितो के आधार पर उस स्वतन्त्रता-संग्राम तथा जीवन-व्यवस्था का विश्लेपण करके

---

१. नसार २ यौवन ३. वाद को 'जोश' साहव ने स्वयं ही वगावत शब्द के स्थान पर शब्द तगय्युर (परिवर्तन) कर दिया।

सच्चा पथप्रदर्शन करता। अतएव क्रान्ति को, जिसका वास्तविक अर्थ सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन है, देश की केवल राजनैतिक स्वतन्त्रा के अर्थों मे लिया गया और विद्रोही शायर 'जोश' को 'शायरे-इंकिलाब' (क्रातिकारी कवि) की उपाधि दी गई (हालाँकि 'जोश' से पहले 'इकबाल' एक हद तक क्रान्ति का सही बोध दे चुके थे)।

'जोश' का यथोचित साहित्यिक स्थान आँकने मे, 'सरदार जाफरी' के कथनानुसार सब से बडी चूक 'शायरे-इंकिलाब' की उपाधि के कारण होती है। 'क्राति' का शब्द आज के समालोचको की विचारधारा को ग़लत मार्ग पर डाल देता है, और वे 'जोश' से ऐसी आशाए सम्बद्ध कर लेते हैं जो उनकी शायरी पूरी नही कर सकती। 'जोश' की प्रत्यक्ष तथा सीधी-सादी एजीटेशनल (आन्दोलनात्मक)[1] कविताओ को, जिन्होंने नि सदेह अपने युग मे बहुत बडा कार्य किया, भूल से क्रातिकारी कविताओं का नाम दिया गया। यह भूल केवल राष्ट्रीय तथा विद्रोहात्मक कविताओ तक ही सीमित नही रही, 'जोश' की कुछ क्रातिवादी कविताओ को परखने मे भी यही भूल की गई है। क्रातिकारी कविताओ मे और क्रातिवादी कविताओ मे थोडे से हेर-फेर के साथ लगभग वही अतर है जो यथार्थवाद और रोमासवाद मे है, क्राति के परिपुष्ट बोध और

१ 'ईस्ट-इंडिया कम्पनी के फर्ज़ंदो (बेटो) के नाम', 'वफादाराने-अज़ली (अनादिकालिक राज्यभक्तो) का पयाम शहनशाहे-हिन्दोस्तान के नाम' और 'शिकस्ते-ज़िंदा (जेल के टूटने) का ख्वाब' ऐसी कवितायें हैं जिनकी हज़ारो कापिया चोरी-छुप्पे बटी, लाखो ज़बानो पर आई और बहुत-से लोग स्टेज पर इन्हे पढने से गिरफ्तार हुए। यहा यह चर्चा असम्बद्ध न होगी कि वास्तविक अर्थों मे क्रातिवादी कवितायें न होने पर भी इन कविताओं ने आज की क्रातिकारी कविता के लिए मार्ग समतल किया है, और उर्दू मे एक नये प्रकार की साग्रामिक (Militant) शायरी की नीव डाली है। 'जोश' से पूर्व स्वर की यह घन-गरज, पहाडी झरने का सा प्रवाह तथा शब्दो की ऐसी जादूगरी उर्दू के किसी शायर को प्राप्त नही हुई। अपनी इन कविताओ द्वारा उन्होंने राष्ट्र को अग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध उभारा, प्रतिक्रियावादी सस्थाओ का भडा-फोड किया, मूढ़ता, धर्म-सम्बन्धी उन्माद, अन्धविश्वास और परम्परागत नैतिकता की जजीरें काटने की प्रेरणा दी। उनके अध्ययन से आज भी हमारा लहू गर्म हो जाता है और अपने देश, अपनी जाति, अपनी सभ्यता, सस्कृति और अपने साहित्य तथा कला से हमारा प्रेम दुगना हो जाता है।

आशावाद मे है। लेकिन इसका अभिप्राय यह नही है कि आज यदि क्रांति की उद्भावना सुस्पष्ट हो चुकी है और हम पूरे विश्वास के साथ शुद्ध-अशुद्ध की परख कर सकते हैं तो आधी सदी तक पूरे के पूरे राष्ट्र को प्रभावित करने वाली 'जोश' की शायरी अपने स्थान से हट गई है। क्योकि यह एक ऐतिहासिक सचाई है कि किसी की दुर्व्यवस्थाओ के विरुद्ध घृणा का नकारात्मक भाव ही (जवकि सामाजिक वोध अप्रौढ हो) आगे चलकर स्वीकारात्मक रूप धारण करता है और वह घृणा-भाव आप-ही-आप वैज्ञानिक दृष्टिकोण मे ढल जाता है। लैनिन ने टाल्स्टाय के सम्वन्ध मे कहा था कि टाल्स्टाय अध्यात्मवादी है लेकिन उसने रूसी किसानो को वहुत समीप से देखा और समझा है, अत. उसके साहित्य से रूस की क्राति को पूरी एक सदी की मज़िल मारने मे सहायता मिली है। ठीक यही वात 'जोश' की शायरी के वारे मे कही जा सकती है। 'जोश' की शायरी ने भारत के क्राति-आदोलन के लिए न केवल रास्ता साफ किया वल्कि हज़ारो-लाखो नौजवानों को क्राति-सग्राम के लिए तैयार किया।

'जोश' मलीहावादी वड़े निडर, साहसी तथा भावुक हैं। अभी वे आपकी भाषा तथा शैली की त्रुटियाँ गिनवा रहे हैं और अभी आपके किसी लेख या शेर की प्रशसा कर रहे है। अभी नई पीढी के लेखको को कोस रहे है और अभी साहित्य की वागडोर उनके हाथो मे थामकर निश्चित हो जाते हैं। अभी किसी के दुर्व्यवहार पर अपना रोष प्रकट कर रहे हैं और भरी सभा[1] मे उसे कभी मुँह न लगाने की सौगधें खा रहे हैं कि उस व्यक्ति ने आकर उनके कान मे कुछ कहा और उन्होने लोगो की नज़रें वचाकर नोटो की एक गड्डी उसकी जेव मे डाल दी। प्रधान-मत्री से लेकर सिटी-मजिस्ट्रेट तक और

१. शायद ही कोई समय हो जव उन्हे एकात प्राप्त होता हो, अन्यथा क्या घर और क्या दफ़्तर, लोगो का एक समूह हर समय उन्हें घेरे रहता है। पिछले दिनो लोगो के आक्रमणो से तग आकर उन्होंने अपने दफ़्तर मे एक तख़्ती लगवा दी थी जिस पर अग्रेज़ी अक्षरो मे लिखा था कि "यदि आप समय विताने के विचार से यहाँ पधारे हैं तो सूचनार्थ निवेदन है कि यह स्थान इस प्रयोजन के लिए नही है।" लेकिन दूसरे दिन भी जव एक चौकड़ी सुवह से शाम तक उनके कमरे मे जमी रही तो उन्होंने घूम कर तख़्ती की ओर देखा। देखा तो तख़्ती पर से "नही" गायव था और अव तख़्ती पर की पंक्तियो का अर्थ यह था कि यही वह स्थान है जहाँ आप अपना समय विता सकते हैं। कुछ लोगो का ख़याल है कि यह तवदीली स्वय 'जोश' साहव ने ही की थी।

नवाव रामपुर से लेकर उनकी मोटर के ड्राइवर तक प्रत्येक व्यक्ति को उनके प्रति गहरी श्रद्धा है। अत आपके कहने भर की देर है, वे आपके भाई की सौ-सवा-सौ की नौकरी के लिए शिक्षा-मन्त्री या खाद्य-मन्त्री को टेलीफोन कर देंगे या स्वय मिलने निकल खडे होंगे और आपके किराये के तीन रुपये बचाने के लिए दस मील प्रति गैलन खाने वाली उनकी यह लम्वी ब्यूक आपको अलीगढ पहुँचाने के लिए रवाना हो जाएगी। किसी ऐसे मुशायरे मे जिसमे मुल्लाओ की सख्या अधिक हो, वे जान-बूझकर ऐसी रुबाइया सुनायेंगे जिनमे मुल्लाओ और खुदापरस्तो को गालियाँ दी गई हो। सरकारी ढग की महफिल होगी तो उन्हे अपनी नज्म 'मातमे-आजादी' याद आजायेगी और महिलाओ की सख्या अधिक देखेंगे तो मजे ले-लेकर 'हाय जवानी, हाय जमाने' अलापना शुरू कर देंगे। मुल्ला लोग नाक-भौं सिकोडते हैं, सरकारी दफ्तरो मे टीका-टिप्पणी होती है, और महिलायें 'वॉक-आउट' तक कर जाती हैं, लेकिन जोश की 'कलदरी' मे फ़र्क नही आता। शायद वे जानते हैं (और विल्कुल ठीक जानते हैं) कि अव वे ख्याति के उस शिखर पर पहुँच चुके हैं जहाँ किसी की अनुचित वातो पर भी क्रोध के वजाय प्यार ही आ सकता है।

आश्चर्य और दुख की वात है कि उर्दू का यह प्रसिद्ध तथा सर्वप्रिय शायर पिछले दिनो स्थायी रूप से पाकिस्तान मे जा वसा है। और और भी आश्चर्य और दुख की वात यह है कि 'जोश' से कभी इस वात की आशा नही की जा सकती थी कि वह 'विक' भी सकता है, यद्यपि कुछ लोगो का अव भी यह खयाल है कि "आखरी उम्र मे क्या खाक मुसलमा होंगे"।

ग़द्दार से ख़िताब

उंगलियां उट्ठेंगी दुनियां मे तेरी औलाद पर।
गलगला होगा वो आते हैं रज़ालत[1] के पिसर[2] ॥

तेरी मस्तूरात[3] का बाजार में होगा कयाम।
मारिज़े-दुशनाम[4] में तेरा लिया जाएगा नाम ॥

उस तरफ मुंह करके थूकेगा न कोई नौजवाँ।
बर की हसरत में रहेगी तेरे घर की लड़कियां ॥

क्या जवानो के ग़ज़ब का ज़िक्र ओ इब्ने-ख़िताब[5] !
सुन के तेरा नाम उड़ जायेगा बूढ़ो का ख़िज़ाब ॥

फ़ाश[6] समझी जायेगी महलों मे तेरी दास्ता।
कांप उठेंगी ज़िक्र से तेरे कँवारी लड़किया ॥

आएगा तारीख का जिस वक़्त जुंबिश मे क़लम।
कब्र तेरी दे उठेगी लौ जहन्नुम की क़सम ॥

---

१. नीचता २. वशज ३ औरतो ४. गाली देने के सम्बन्ध मे
५ उपाधियो के लिए लालायित ६. अश्लील

ये कौन उठा है शर्माता ?

ये कौन उठा है शर्माता   रैन का जागा, नींद का माता
नीद का माता धूम मचाता   अगड़ाइया लेता, बल खाता
ये कौन उठा है शर्माता ?

रुख़[1] पे सुर्ख़ी, आख में जादू   भीनी-भीनी बर[2] मे खुशबू
बाकी चितवन, सिमटे अबरू[3]   नीची नज़रें, बिखरे गेसू[4]
ये कौन उठा है शर्माता ?

नीद की लहरें गगा जमुनी   जिल्द के नीचे हल्की-हल्की
आचल ढलका, मसकी साड़ी   हल्की महदी, धुंदली बेंदी
ये कौन उठा है शर्माता ?

डूबा हुआ रुख ताबानी मे[5]   अनवारे - सहर[6] पेशानी मे
या आबे-गुहर[7] तुगयानी[8] मे   या चांद का मुखड़ा पानी में
ये कौन उठा है शर्माता ?

रुखसार[9] पे मौजे-रगीनी[10]   कच्ची चादी, सुच्ची चीनी
आखो मे नकूशे-खुदबीनी[11]   मुखड़े पे सहर[12] की शीरीनी[13]
ये कौन उठा है शर्माता ?

आख मे गलता[14] इशरतगाहे[15]   नीद की सासें जैसे आहे
बिखरी ज़ुल्फें उरिया[16] बाहे   जान से मारें जिसको चाहे
ये कौन उठा है शर्माता ?

---

१ चेहरे २ बगल ३ भौंहें ४ केश ५. मुखड़ा प्रकाश मे डूबा हुआ है ६ सुबह का प्रकाश ७ मोती का पानी ८ ज्वार ९ कपोल १० रगीन धारा ११ आत्माभिमान के चिह्न १२ प्रभात १३ मधुरता १४. [illegible] १५ विलासगृह १६. नग्न

सांस लो या खुश रहो

कसम उस मौत की, उठती जवानी में जो आती है,
उरूसे-नौ[1] को बेवा, मां को दीवाना बनाती है।

जहां से झुटपुटे के वक़्त एक ताबूत[2] निकला हो,
कसम उस शव की जो पहले-पहल उस घर मे आती है।

अज़ीज़ों की निगाहे ढूंढ़ती हैं मरने वाले को,
क़सम उस सुबह की जो ग़म का यह मंज़र[3] दिखाती है।

क़सम साइल[4] के उस अहसास की जब देखकर उसको,
सियाही दफ़अ़तन[5] कजूस के माथे पे आती है।

कसम उन आंसुओं की मां की आंखों से जो बहते हैं,
जिगर थामे हुए जब लाश पर बेटे की आती है।

क़सम उस बेबसी की, अपने शौहर के जनाज़े पर,
कलेजा थाम कर जब ताज़ा दुल्हन सर झुकाती है।

नज़र पड़ते ही एक ज़ी-मर्तबा[6] मेहमा के चेहरे पर,
कसम उस शर्म की मुफलिस[7] की आंखों मे जो आती है।

कि ये दुनियां सरासर ख्वाब और ख्वाबे-परीशां[8] है,
'खुशी' आती नही सीने में जब तक 'सांस' आती है।

---

१ नई दुल्हन २ अर्थी ३ दृश्य ४ भिखारी ५ एकाएक
६ प्रतिष्ठित व्यक्ति ७. निर्धन ८. आकुल-आतुर स्वप्न

पस्त क़ौम

गर्दन का तौक[1] पाव की ज़ंजीर काट दे।
इतनी गुलाम कौम मे हिम्मत कहा है 'जोश' ?
अपनी तबाहियो पे कभी गौर कर सके।
इतनी जलील मुल्क को फुर्सत कहां है 'जोश' ?
इक हर्फ़े-गर्म[2] सुनते ही लौ दे उठे दिमाग़।
हिन्दोस्तान मे वो हरारत[3] कहा है 'जोश' ?

मक़तले-क़ानपुर

ऐ सियह-रू[4], बेहया, वहशी, कमीने, बदगुमां।
ऐ जबीने-अर्ज़ के दाग[5], ऐ दानि-ए-हिन्दोस्ता[6]॥
तुझ पे लानत ऐ फिरगी के गुलामे-बेशऊर[7]।
ये फ़ज़ा-ए-सुलहपरवर[8], ये क़ताले-कानपूर[9]॥
तेगे-बुर्रां[10] और औरत का गला क्यो बदसिफात[11]।
छूट जाए तेरी नब्ज़ें, टूट जायें तेरे हात॥
कोहनियो से ये तेरी कैसा टपकता है लहू ?
ये तो है ऐ सगदिल ! बच्चो का खूने-मुश्कबू[12]॥
मर्द है तो उससे लड पहले जो मारे फिर मरे।
तू ने बच्चो को चबा डाला खुदा ग़ारत करे॥
तू ने ओ बुज़दिल ! लगाई है घरो मे जिन से आग।
क्या उन्ही हाथो मे लेगा रख्शे-आज़ादी की बाग[13]॥
इस तरह इन्सान और शिद्दत[14] करे इन्सान पर।
तुफ है तेरे दीन पर, लानत तेरे ईमान पर॥

---

१ फदा　२ गर्म शब्द　३ गर्मी　४ काले चेहरे वाले　५. धरती के माथे के दाग　६ भारत के नीच　७ मूर्ख गुलाम　८ शान्ति-दायक वातावरण　९ (१९३१ मे) कानपुर मे जो हिन्दू-मुस्लिम फसाद हुआ था, उसकी ओर सकेत है।　१० काटने वाली (तेज) तलवार　११ नीच　१२ सुगन्धित रक्त　१३ स्वतत्रता के घोडे की वाग　१४ अत्याचार

सांस लो या खुश रहो

कसम उस मौत की, उठती जवानी मे जो आती है,
उरूसे-नौ[1] को बेवा, मां को दीवाना बनाती है।

जहां से झुटपुटे के वक़्त एक ताबूत[2] निकला हो,
कसम उस शब की जो पहले-पहल उस घर मे आती है।

अज़ीज़ो की निगाहें ढूंढती है मरने वाले को,
कसम उस सुबह की जो गम का यह मंज़र[3] दिखाती है।

कसम साइल[4] के उस अहसास की जब देखकर उसको,
सियाही दफ़अ़तन[5] कंजूस के माथे पे आती है।

क़सम उन आंसुओ की मां की आंखों से जो बहते हैं,
जिगर थामे हुए जब लाश पर बेटे की आती है।

कसम उस बेबसी की, अपने शौहर के जनाजे पर,
कलेजा थाम कर जब ताज़ा दुल्हन सर झुकाती है।

नज़र पड़ते ही एक ज़ी-मर्तबा[6] मेहमां के चेहरे पर,
क़सम उस शर्म की मुफलिस[7] की आंखों में जो आती है।

कि ये दुनियां सरासर ख्वाब और ख्वाबे-परीशां[8] है,
'खुशी' आती नही सीने में जब तक 'सांस' आती है।

---

१. नई दुल्हन २ अर्थी ३ दृश्य ४ भिखारी ५. एकाएक
६ प्रतिष्ठित व्यक्ति ७. निर्धन ८. आकुल-आतुर स्वप्न

ये कौन उठा है शर्माता ?

ये कौन उठा है शर्माता रैन का जागा, नीद का माता
नीद का माता धूम मचाता अगड़ाइया लेता, बल खाता
ये कौन उठा है शर्माता ?

रुख[१] पे सुर्खी, आख मे जादू भीनी-भीनी बर[२] में खुशबू
बाकी चितवन, सिमटे अबरू[३] नीची नज़रें, बिखरे गेसू[४]
ये कौन उठा है शर्माता ?

नीद की लहरें गगा जमुनी जिल्द के नीचे हल्की-हल्की
आचल ढलका, मसकी साड़ी हल्की महदी, धुंदली बेंदी
ये कौन उठा है शर्माता ?

डूबा हुआ रुख ताबानी मे[५] अनवारे-सहर[६] पेशानी में
या आबे-गुहर[७] तुगयानी[८] में या चाँद का मुखड़ा पानी में
ये कौन उठा है शर्माता ?

रुखसार[९] पे मौजे-रगीनी[१०] कच्ची चादी, सुच्ची चीनी
आखो मे नकूशे-खुदबीनी[११] मुखड़े पे सहर[१२] की शीरीनी[१३]
ये कौन उठा है शर्माता ?

आख मे ग़लता[१४] इशरतगाहे[१५] नीद की सासें जैसे आहें
बिखरी जुल्फ़े उरिया[१६] बाहे जान से मारें जिसको चाहे
ये कौन उठा है शर्माता ?

---

१ चेहरे २ बग़ल ३ भौंहें ४. केश ५ मुखडा प्रकाश मे डूबा हुआ है ६ सुबह का प्रकाश ७ मोती का पानी ८ ज्वार ९ कपोल १० रगीन धारा ११ आत्माभिमान के चिह्न १२ प्रभात १३ मधुरता १४ डूबे हुए १५ विलासगृह १६ नग्न

फीका-फीका आंख में काजल   उलझा-उलझा जुल्फ का बादल
नाजुक गरदन, फूल-सी हेकल[1]   सुर्ख पपोटे नीद से बोझल
ये कौन उठा है शर्माता ?

कुछ जाग रही, कुछ सोती है   हर मौजे-सबा[2] मुंह धोती है
नासुफ्ता रुख[3] या मोती है   अंगड़ाई से जिज-बिज[4] होती है
ये कौन उठा है शर्माता ?

चेहरा फीका नीद के मारे   फीकेपन मे शहद के धारे
जो भी देखे जान को वारे   धरती माता बोझ सहारे
ये कौन उठा है शर्माता ?

हलचल में दिल की बस्ती है   तूफाने-जुनू मे[5] हस्ती है
आंख मे शब की मस्ती है   और मस्ती दिल को डसती है
ये कौन उठा है शर्माता ?

---

१. गले का तावीज २. प्रभात-समीर का झोका ३. अनबिंधा (सुकुमार) चेहरा ४. तग, परेशान ५. उन्माद के तूफान मे

ऐतराज़े-अज्ज[1]

लोग कहते हैं कि मैं हूं शायरे - जादूबया[2] ।
सदरे-माना[3] , दावरे-अलफाज़[4] , अमीरे-शायरा[5] ॥
और खुद मेरा भी कल तक खैर से ये था खयाल ।
शायरी के फन मे हू मिनजुमला-ए-अहले-कमाल[6] ॥
लेकिन अब आई है जब इक-गोना[7] मुझ मे पुख्तगी ।
ज़हन[8] के आईने पर कापा है अक्से-आगही[9] ॥
आसमा जागा है सर में और सीने में ज़मी ।
अब मुझे महसूस होता है कि मैं कुछ भी नही ॥
जिहल[10] की मजिल मे था मुझ को गरूरे-आगही ।
इतनी लामहदूद[11] दुनिया और मेरी शायरी !
ज़ुल्फे-हस्ती[12] और इतने बेनिहायत पेचो-खम ।
उड गया रगे-तअल्ली[13], खुल गया मेरा भरम ॥
मेरे शेरो मे फकत इक तायराना[14] रग है ।
कुछ सियासी रग है, कुछ आशिकाना रग है ॥
चहचहे कुछ मौसमो के, ज़मज़मे[15] कुछ जाम के ।
दैरे-दिल में[16] चद मुखड़े मरमरी असनाम के[17] ॥
चद ज़ुल्फो की सियाही, चद रुखसारो[18] की आब ।
गाह[19] हरफे-बेनवाई[20], गाह शोरे-इकिलाब ॥

---

१ हीनता की आत्म-स्वीकृति २ जिसके बयान मे जादू हो ३, ४, ५ अर्थों का बादशाह, शब्दो का हाकिम, शायरो का नेता ६. सबसे बढे हुओ मे ७ ज़रा-सी ८ मस्तिष्क ९ बुद्धि का प्रतिबिम्ब १०. अज्ञानता ११ विशाल, असीम १२ विश्व-केश १३ शेखी का रग १४ छिछला १५ गीत १६ दिल के मन्दिर मे १७ मरमर की मूर्तियो (प्रेमिकाओ) के १८ कपोलो १९ कभी २० बेसामानी (विवशता) की चर्चा

वस्ल[1] के दो-चार नगमे, हिज्र[2] की एक-आध आह।
क़अ्र[3] से नावाकफ़ियत, सतहे-दरिया[4] पर निगाह॥
गाह मरने के अजायम[5], गाह जीने की उमंग
बस यही सतही[6] सी बाते, बस यही ओछे से रंग॥
बेख़बर था मैं कि दुनिया राज-अंदर-राज़ है।
वो भी गहरी खामशी है जिसका नाम आवाज है॥
इब्तिदा-ओ-इंतिहा का इल्म नज़रों से निहा[7]।
टिमटिमाता-सा दिया, दो जुलमतों[8] के दर्मियां॥
अंजुमन[9] में तख़्लिये[10] हैं, तख़्लियो में अजुमन।
हर शिकन मे इक खिचावट, हर खिचावट मे शिकन[11]॥
पैकरे-हस्ती[12] पे ढीला है मज़ाहिर[13] का लिबास।
और मैं इसकी जरा-सी इक शिकन से रूशनास[14]॥
क्यों न फिर समझूं सुवक[15] अपने सुख़न के रग को।
नुत्क[16] ने अलमास[17] के वदले तराशा संग[18] को॥
पा रहा हूँ शायद अब इस तीरह[19] हल्के से निजात।
क्योकि अब पेशे-नजर हैं उक़्दाहाए-कायनात[20]॥
ये भिंची उलझी ज़मी, ये पेच-दर-पेच आसमां।
अलअमानो - अलअमानो - अलअमानो - अलअमा[21]॥
एक मुन्ना सा सितारा, एक नन्हा सा शरार[22]।
ये तज़लजुल[23], ये तलातुम[24], ये तमव्वुज[25], ये फिशार[26]॥

---

१. मिलन २. वियोग ३. गहराई ४ नदी के स्तर ५. संकल्प ६ छिछली ७ छुपा हुआ ८. अन्धेरो ९. जन-समूह १० एकात ११ सलवट १२. अस्तित्व की काया १३. दृश्यो १४ परिचित १५ हल्का १६ वाक्-शक्ति १७ हीरे १८. पत्थर १९ अन्धेरे २० विश्व की गुत्थियां मेरे सामने हैं २१. खुदा की पनाह! २२ चिंगारी २३, २४, २५, २६ भूचाल, तूफान, ज्वार-भाटा, अफरातफरी

इक नफस[1] का तार और ये शोरे-उम्रे-जाविदां[2] ।
इक कडी और उसमें जजीरो के इतने कारवा ।।
इक सदा[3] और उसमे ये लाखो हवाई दायरे ।
जिनकी आवाजे अगर सुन ले तो दुनिया गूज उठे ।।
एक बूद और हफ्त कुलजम[4] के हिला देने का जोश ।
एक गूगा ख्वाब, और ताबीर[5] का इतना खरोश[6] ।।
इक कली और उसमें सदियो की मता-ए-रगो-बू[7] ।
सिर्फ इक लम्हे की रग मे और करनो[8] का लहू ।।
हर कदम पर नस्ब[9] और इसरार[10] के इतने खयाम[11]!
और इस मजिल में मेरी शायरी मेरा कलाम ।
जिसमें इल्मे-आसमा है और न इसरारे-जमी ।
एक खस[12], इक दाना, इक जौ, एक जर्रा भी नही ।।
नौ-ए-इन्सानी[13] को जब मिल जायेगी रफ्तारे-नूर[14] ।
शायरे-आजम का तब होगा कही जाकर जहूर[15] ।।
खाक से फूटेगी जब उम्रे-अवद[16] की रोशनी ।
झाड देगी मौत को दामन से जिस दिन जिन्दगी ।।
जब बशर[17] की जूतियो की गर्द होगी कहकशा[18] ।
तब जनेगी नस्ले-आदम शायरे-जादू-बया ।।
फिक्र मे कामिल[19], न फन्ने-शेर[20] में यकता[21] हू मैं ।
कुछ अगर हू तो नकीबे-शायरे-फर्दा[22] हूँ मैं ।।

---

१ सांस २ अमर जीवन का कोलाहल ३ शब्द ४ सात समुद्र ५ स्वप्न-फल ६ शोर, वावेला ७ रग और सुगधि की राशि ८ शताब्दियो ९ गडे हुए १० भेदों ११ खेमे १२ तिनका १३ मनुष्य जाति १४ प्रकाश की सी तेज गति १५ आविर्भाव १६ अमर जीवन १७ मनुष्य १८ आकाश-गगा १९ चितन मे पारगत २० काव्य-कला २१ अद्वितीय २२ भावी शायर का सूचक

ग़ज़ल

फ़िक्र ही ठहरी तो दिल को फ़िक्रे-ख़ूबां[1] क्यों न हो ?
ख़ाक होना है तो ख़ाके-कूए-जाना[2] क्यो न हो ?

दहर मे ऐ ख़्वाजा ! जब ठहरी असीरी नागुज़ीर ।
दिल असीरे-हल्का-ए-गेसू-ए-पेचा क्यो न हो[3] ?

ज़ीस्त[4] है जब मुस्तकिल आवारागर्दी ही का नाम ।
अक़्ल वालो फिर तवाफ़े-कूए-जानां[5] क्यो न हो ?

जब नही मस्तूरियो[6] मे भी गुनाहों से नजात ।
दिल खुले-बदो गरीके-बहरे-इसियां क्यो न हो[7] ?

इक-न-इक हंगामे पर मौकूफ़[8] है जब जिन्दगी ।
मैकदे मे रिंद रक्सानो - गज़लख़्वा क्यो न हो[9] ?

या जब आवेजिश[10] ही ठहरी है तो जर्रे छोडकर ।
आदमी खुरशीद[11] से दस्तो-गरेबां क्यो न हो[12] ?

इक-न-इक ज़ुलमत[13] से जब वाबस्ता[14] रहना है तो 'जोश' ।
ज़िन्दगी पर साया-ए-ज़ुल्फ़े-परीशां[15] क्यो न हो ?

---

१ सुन्दरियो की इच्छा २. प्रेयमी की गली की ख़ाक ३. ऐ मालिक ! यदि ससार मे वदी होना अनिवार्य है तो फिर मनुष्य (प्रेयसी के) पेचदार केशो की कडी मे वदी क्यो न हो ? ४. जीवन ५ प्रेयसी की गली की परिक्रमा ६ गुप्त रूप से किये जाने वाले ७. पाप-सागर मे क्यो न डूबे ? ८ आधारित ९. क्यो न नाचे-गाये ? १०. लाग-डांट ११ सूरज १२. क्यो न जूझे ? १३. अन्धेरा (स्याही) १४. सम्बन्धित १५. (प्रेयमी के) उलझे हुए केशो की छाया

रुबाइयां

हर इल्मो-यकी[1] है इक गुमा[2] ऐ साक़ी,
हर ज़र्रा है इक ख्वाबे-गिरा[3] ऐ साक़ी।
अपने को कही रख के मैं भूला हू ज़रूर,
लेकिन ये नही याद कहाँ, ऐ साक़ी!

◇ ◇ ◇

अलफाज़[4] हैं नागन सी जवानी के डसे,
अनफास[5] महकते हुए होंटो मे बसे,
यूं दिल को जगा रहा है तेरा लहजा[6],
जिस तरह सितार के कोई तार कसे।

◇ ◇ ◇

करती है गुहर[7] को अश्कबारी[8] पैदा,
तमकीन[9] को, रूहे-बेकरारी पैदा,
सौ बार चमन मे जब तडपती है नसीम[10],
होती है कली पर एक धारी पैदा।

◇ ◇ ◇

जाने वाले कमर[11] को रोके कोई,
शब के पैके-सफर[12] को रोके कोई,
थक कर मेरे ज़ानू पे वह सोया है अभी,
रोके, रोके, सहर[13] को रोके कोई।

◇ ◇ ◇

---

१ ज्ञान तथा विश्वास २ भ्रान्ति ३ दीर्घ सपना (भारी भ्रम)
४ शब्द ५ श्वास ६ स्वर ७ मोती ८ आँसुओ की झडी ९ सम्मान
१० वायु ११ चाद १२ हरकारा, दूत १३ प्रभात

/

हर रंग में इबलीस[1] सज़ा देता है,
इन्सान को ब-हर-तौर[2] दग़ा देता है,
कर सकते नहीं गुनाह जो अहमक उनको,
बेरूह[3] नमाज़ों में लगा देता है।

◇ ◇ ◇

जन्नत के मज़ों पे जान देने वालो,
गदे पानी में नाव खेने वालो,
हर खैर[4] पे चाहते हो सत्तर हूरें,
ऐ अपने खुदा से सूद लेने वालो[5]!!

◇ ◇ ◇

तुझ से जो फिरेगी तो किधर जायेगी,
ले जायेगी जिस सिम्त[6] उधर जायेगी,
दुनिया के हवादिस[7] से न घबरा कि ये उम्र,
जिस तरह गुज़ारेगा, गुज़र जायेगी।

◇ ◇ ◇

जिस चाल से बढ़ रही है फौजे-बुरहान[8],
औहाम का किला[9] हो रहा है वीरान,
जितना इन्सान बन रहा है अल्लाह,
अल्लाह उतना ही बन रहा है इन्सान।

◇ ◇ ◇

हर ग़ार[10] महो-साल से[11] पट जाता है,
साया हो कि धूप, वक़्त कट जाता है,
गम है मानिंदे-बर्फ[12] ऐसा इक बोझ,
हर गाम[13] पे जिसका वज़न घट जाता है।

---

१. शैतान २. अवश्य ३. रूखी-फीकी ४ शुभ-कर्म ५. इस्लाम में सूद लेना गुनाह है। ६. ओर ७. काल-चक्र ८. सिद्धातो की सेना ९. भ्रमो का दुर्ग १०. खोह ११. महीनो और वर्षो से १२. बरफ की तरह १३. पग

क्या शैख मिलेगा गुलफिशानी करके[1],
क्या पायेगा तौहीने-जवानी करके,
तू आतिशे-दोज़ख[2] से डराता है उन्हे,
जो आग को पी जाते हैं पानी करके।

◇ ◇ ◇

क्या फायदा शैख! तुझ से कीने[3] मे मुझे,
खुश्की में तुझे लुत्फ, सफीने[4] में मुझे,
अय्याश तो दोनो हैं, मगर फर्क ये है,
खाने में तुझे मज़ा, पीने में मुझे।

◇ ◇ ◇

काकुल[5] खुलकर बिखर रही है गोया,
नरमी से नदी गुज़र रही है गोया,
आखें तेरी झुक रही हैं मुझसे मिलकर,
दीवार से धूप उतर रही है गोया।

◇ ◇ ◇

हम रहते है तिश्ना[6] छक के पीने के लिए,
गिर्दाब[7] मे फसते हैं सफीने[8] के लिए,
जीते हैं, तो मरने के लिए जीते हैं,
मरते हैं तो बेदरेग[9] जीने के लिए।

◇ ◇ ◇

खुद को गुमकर्दा-गुनाह[10] करके छोडा,
हव्वा को भी तबाह करके छोडा,
क्या-क्या न किया खुदा ने जन्नत में जतन,
आदम ने मगर गुनाह करके छोडा।

---

१ (उपदेशों की) पुष्प-वर्षा करके (कुकर्मों से वचने को कहना)
२ नरक की आग ३ द्वेष-भाव ४ नाव ५ केश ६ प्यासे
७ भवर ८ नाव (वचने) ९. निश्चिन्त (भरपूर) १० पाप-ग्रस्त

दिन होते न जर्द-रू[1] न रातें ही सियाह,
भूले से भी इक लब[2] पे न आती कभी आह,
इन्सान के दिल को छू न सकते आलाम[3] ,
मेरा-सा अगर शफीक[4] होता अल्लाह।

◇ ◇ ◇

क्यों मुझ से तक़ाज़ा है कि 'फदे खोलो',
किस तरह कटे ये पाप, बोलो, बोलो,
बन्दे की तरफ शौक से आना यारो,
मायूस अल्लाह से तो पहले हो लो।

◇ ◇ ◇

मर-मर के जब इक बला से पीछा छूटा,
इक आफते-ताज़ादम ने[5] आकर लूटा,
इक आबला-ए-नौ से हुआ सीना दोचार[6] ,
जैसे ही पुराना कोई छाला टूटा।

◇ ◇ ◇

ये हुक्म है, चुप साध लो, आँखें न उठाओ,
दो खूब अज़ाँ, धूम से नाकूस[7] बजाओ,
गोबर पे चने चाब के पानी पीलो,
बिस्तर पे गिरो, डकार लो और मर जाओ।

◇ ◇ ◇

ऐ ख्वाब बता, यही है बाग़े-रिज़वां[8] ?
हूरों का कहीं पता, न गिलमां का[9] निशां,
इक कुंज में खामोशो-मलूलो-तनहा[10],
बेचारे टहल रहे हैं अल्लाह मियां।

---

१ पीले चेहरे वाले २. होंट ३ दुख ४ स्नेही ५. नई मुसीबत ने ६. हृदय मे नया छाला उत्पन्न होगया ७. शंख ८. जन्नत (स्वर्ग) ९. लौंडो का १०. मौन, उदास, अकेले

परिचय

"कोई अच्छा इन्सान ही अच्छा शायर हो सकता है," 'जिगर' मुरादाबादी का यह कथन किसी दूसरे शायर पर लागू हो या न हो, स्वय उन पर बिल्कुल ठीक बैठता है। यो पहली नजर मे इस कथन मे मतभेद की गु जाइश भी कम ही नजर आती है लेकिन इसको क्या किया जाए कि स्वय 'जिगर' के बारे मे कुछ व्यक्तियो का मत यह है कि जब वे 'अच्छे इन्सान' नहीं थे, तब बहुत अच्छे शायर थे।

"जब वे अच्छे इन्सान नही थे" से उन समालोचको का अभिप्राय उस काल से है, जिस काल मे वे बेतहाशा शराब पीते थे। इस बुरी तरह और इस मात्रा मे कि यदि दस व्यक्ति मिलकर आयु भर पीते रहे, तब भी उतनी न पी पायेंगे, जितनी 'जिगर' कुछ एक वर्षो मे पी चुके हैं। और उन समालोचको का अभिप्राय उस 'जिगर' से भी है जो सारे ससार और उसकी नैतिकता को शराब के प्याले मे डुबो देते थे और जिन्होने अपना दाम्पत्य जीवन नरक समान बना लिया था[1] और आठो पहर मस्त-अलस्त रहकर

---

१ जिगर साहब की शादी उर्दू के प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय 'असग़र' गोंडवी की छोटी साली से हुई थी। फिर 'असगर' साहब ने 'जिगर' साहब से तलाक दिलवाकर उनकी पत्नी को अपनी पत्नी बना लिया था। 'असग़र' साहब के देहात पर 'जिगर' साहब ने फिर उसी महिला से दोबारा शादी कर ली और कुछ लोगो का खयाल है कि उनकी इस पहली पत्नी ने ही उनकी शराब पीने की लत छुड़वाई है।

मुझे उठाने को आया है वाइज़े-नादा[1]
जो उठ सके तो मेरा सागरे-शराव[2] उठा
किधर से वर्क़[3] चमकती है देखें ऐ वाइज़ !
मैं अपना जाम उठाता हूँ तू किताव[4] उठा ।

ऐसे उच्चकोटि के शेर कहते थे और उनके तरन्नुम (गान) की हालत यह थी कि वडे-वडे उस्तादो का पित्ता उनके सामने पानी हो जाता था ।

जहाँ तक मेरे व्यक्तिगत मत का सम्वन्ध है मैं न तो पूर्ण रूप से 'जिगर' साहव के उक्त कथन का पक्षपाती हूँ और न ही उन समालोचको के इस फैसले से सहमत कि जव से 'जिगर' ने शराव छोडी है उनकी शायरी का स्तर नीचा हो गया है । मेरे तुच्छ विचार मे 'जिगर' साहव की शायरी का यह अन्तर (यदि कोई अन्तर है तो) शराव पीने या न पीने का अन्तर नही है । यह अन्तर दाम्पत्य जीवन के नरक-समान वनने और फिर स्वर्ग-समान वन जाने का अन्तर भी नही है, वल्कि यह अन्तर दो विभिन्न कालो का अन्तर है । दो विभिन्न सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियो मे एक ही ढग से सोचने, पुराने पर सतोप और नये को अस्वीकार करने का अन्तर है । अतएव आज भी जव वे :

उनका जो फर्ज़ है अरवावे-सियासत[5] जानें ।
मेरा पैगाम मुहव्वत है, जहाँ तक पहुँचे ॥

ऐसे शेर कहते हैं तो हम उनकी इस 'मोहव्वत' को उस सूफीवाद तथा अव्यात्मवाद से अलग करके नही देख सकते जो प्रारम्भकाल से ही उनकी शायरी की विशेपता रही है और जिसमे से :

यही हुस्नो इश्क का राज़ है, कोई राज़ इसके सिवा नहीं ।
कि खुदा नही तो खुदी[6] नही, जो खुदी नही तो खुदा नही ॥

ऐसे शेर निकले थे ।

लेकिन ऐसा भी नही है कि 'जिगर' अपनी जगह से टस से मस न हुए हो । यह प्रत्यक्ष है कि उनकी पूरी शायरी मे 'साकी' 'मैकदा', 'हुस्न', 'इश्क', 'जुनून', 'रिंदी' इत्यादि परम्परागत् शब्द, परम्परागत् परिभापाये और परम्परागत् अन्तर्चेतना की गहरी छाप है । वह गजल को उर्दू शायरी की पराकाष्ठा

---

१. नादान धर्मोपदेशक २ शराव का प्याला ३. विजली (एक परम्परा के अनुसार 'तूर' पहाड़ पर विजली चमकी थी और मूसा (पैग़म्बर) ने खुदा से वातें की थी ४. धर्म-ग्रंथ ५. राजनीतिज्ञ ६. अहभाव

'जिगर' साहब बडे हँसमुख और विशाल हृदय के व्यक्ति हैं। धर्म पर उनका गहरा विश्वास है और धर्म और प्रेम को वे मनुष्य के मोक्ष का साधन मानते हैं, लेकिन धर्मनिष्ठा ने उनमे उद्दण्डता तथा घमड नही विनय तथा नम्रता उत्पन्न की है। वे हर उस सिद्धात का सम्मान करने को तैयार रहते हैं जिसमे सच्चाई और शुद्धता हो। यही कारण है कि साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन का भरसक विरोध करने पर भी उन्होने 'मजाज़', 'जज़्बी', मसऊद अख़्तर 'जमाल', 'मजरूह' सुलतानपुरी इत्यादि बहुत से प्रगतिशील कवियो को प्रोत्साहन दिया है और प्रगतिशील लेखक सघ के निमन्त्रण पर अपनी जेब से किराया खर्च करके वे उनके सम्मेलनो मे योग देते रहे हैं। (यो 'जिगर' साहब किसी मुशायरे मे आने के लिए हज़ार-बारह सौ रुपये से कम मुआवज़ा नही लेते।) इस समय मुझे उनकी एक मुलाकात याद आ रही है जिसमे उन्होंने 'मजरूह' सुलतानपुरी की गिरफ्तारी पर शोक प्रकट करते हुए कहा था "ये लोग ग़लत हो या सही, यह एक अलग बहस है, लेकिन इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि ये लोग अपने उसूलो के पक्के हैं। इन लोगो मे खुलूस कूट-कूट कर भरा हुआ है।" और फिर 'मजरूह' की उस ग़ज़ल (जिसके कारण उसे गिरफ्तार किया गया था) की एक पक्ति

'यह भी कोई हिटलर का चेला है, मार ले साथी जाने न पाये'

पर मुस्कराकर व्यग्य करते हुए उन्होने कहा था—"लो, देखो, खुद मे तो मारने की हिम्मत नही, मारने के लिए साथी को आवाज़ दी जा रही है।"

बडे बुज़ुर्ग होने पर भी 'जिगर' साहब हर समय गम्भीर मुद्रा धारण किये नही बैठे रहते। अपने से कही कम आयु के कवियो के साथ कहकहे लगाने मे उन्हे विशेष आनन्द आता है। वे उन्हे खिला-पिलाकर बहुत प्रसन्न होते हैं और 'फ़िक़रे-बाज़ी' के किसी अवसर को हाथ से नही जाने देते। एक बार एक महफिल मे 'जिगर' साहब शेर सुना रहे थे। पूरी महफिल झूम-झूम कर उनके शेरो पर दाद दे रही थी लेकिन एक व्यक्ति शुरू से आखिर तक बिल्कुल चुप-चाप बैठा रहा। एकाएक अन्तिम शेर पर उस व्यक्ति ने उचक-उचककर दाद देनी शुरू कर दी। 'जिगर' साहब ने चौंककर उसकी ओर देखा और कहा .

"क्यो साहब ! क्या आपके पास क़लम है ?"

"जी हाँ" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "क्या कीजियेगा ?"

"मेरे इस शेर मे ज़रूर कोई खामी है, वरना आप दाद न देते। इसे मैं

अपनी वयाज़ (कापी, जिसमे हाथ से शेर लिखे होते हैं) मे से काटना चाहता हूँ।"

इसी प्रकार एक वार एक और व्यक्ति ने उनसे कहा कि, " 'जिगर' साहव, एक महफिल मे मैं आपके एक शेर पर पिटते-पिटते वचा।'

इस पर 'जिगर' साहव वोले, "मेरा वह शेर असर के लिहाज़ से ज़रूर घटिया होगा, वरना आप ज़रूर पिटते।"

'जिगर' साहव का पहला दीवान (कविता-सग्रह) 'दागे-जिगर' १६२८ मे प्रकाशित हुआ था। उसके वाद १६३२ मे 'शोला-ए-तूर' के नाम से एक सकलन मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ से छपा जिसके पूरे खर्चे की ज़िम्मेदारी साहवज़ादा रशीदुज़्ज़फर (भोपाल) ने ली थी। नवाव भोपाल के ये भतीजे 'जिगर' साहव के वहुत प्रशसक थे और एक समय तक उन्होंने 'जिगर' साहव को डेढ सौ रुपया मासिक वज़ीफा दिया। अव तक 'शोला-ए-तूर' के वहुत से सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हाल ही मे 'इदारा फरोग़े-उर्दू' (लाहौर) ने इसका एक वहुत ही सुन्दर सस्करण निकाला है।

'जिगर' साहव उन सौभाग्यशाली कवियो मे से हैं जिनकी कलाकृतियाँ उनके अपने जीवनकाल मे ही 'क्लासिकल' साहित्य का अग वन जाती हैं।

मेरा जो हाल हो सो हो बर्के-नज़र[१] गिराये जा।
मैं यूंही नालाकश[२] रहूं तू यूंही मुस्कराये जा॥

लहज़ा-ब-लहज़ा, दम-ब-दम, जलवा-ब-जलवा[३] आये जा।
तश्ना-ए-हुस्ने-ज़ात[४] हूं, तश्नालबी[५] बढाये जा॥

जितनी भी आज पी सकूं, उज्र[६] न कर, पिलाये जा।
मस्त नज़र का वास्ता, मस्ते-नज़र बनाये जा॥

लुत्फ[७] से हो कि कहर[८] से, होगा कभी तो रू-ब-रू।
उसका जहां पता चले, शोर वहीं मचाये जा॥

इश्क को मुतमइन[९] न रख, हुस्न के एतमाद[१०] पर।
वो तुझे आज़मा चुका, तू उसे आज़माये जा॥

◇ ◇ ◇

खार[११]को गुल[१२]और गुल को खार जो चाहे करे।
तूने जो चाहा किया, ऐ यार जो चाहे करे॥

उसने ये कह कर दिया दिल को फरेबे-जुस्तजू[१३]।
हश्र तक अब आशिके-नाचार[१४] जो चाहे करे॥

था अभी जलवा, अभी पर्दा, अभी कुछ भी नहीं।
आपकी ये हसरते-दीदार जो चाहे करे॥

हर हकीकत हुस्न की है बेनियाज़े-एतराफ[१५]।
अब कोई इकरार या इन्कार जो चाहे करे॥

◇ ◇ ◇

---

१ नज़रों की बिजली २ आर्तनाद करता रहूं ३ क्षण-प्रतिक्षण नवीनतम छवि के साथ ४ सौन्दर्य का प्यासा ५ पिपासा ६ बहाना, इनकार ७ कृपा ८ प्रकोप ९ सन्तुष्ट १० विश्वास ११ कांटा १२ फूल १३ तलाश करने का धोखा १४. बेचारा बेबस आशिक १५ सौंदर्य की प्रत्येक वास्तविकता स्वीकरण—अस्वीकरण से उच्च है।

जब तक कि ग़मे-इन्सां[1] से 'जिगर' इन्सान का दिल मामूर[2] नहीं।
जन्नत ही सही दुनिया लेकिन, जन्नत से जहन्नुम दूर नहीं॥

जुज़ ज़ौके-तलब, जुज़ शौके-सफर[3] कुछ और मुझे मन्ज़ूर नहीं।
ऐ इश्क़! बता अब क्या होगा कहते हैं कि मंज़िल दूर नहीं॥

वाइज़ का हर इक इरशाद बजा, तकरीर बहुत दिलचस्प, मगर,
आँखों मे सरूरे-इश्क नहीं, चेहरे पे यक़ीं[4] का नूर[5] नही॥

इस नफ़अ्-ओ-ज़रर की दुनिया मे[6] मैंने ये लिया है दर्से-जुनूं[7]।
खुद अपना ज़िया[8] तसलीम, मगर, औरों का ज़ियां मन्ज़ूर नही॥

मैं ज़ख्म भी खाता जाता हूँ, क़ातिल से भी कहता जाता हूं।
तौहीन है दस्तो-बाज़ू को[9], वो वार कि जो भरपूर नही॥

अरबावे-सितम की[10] खिदमत मे इतनी ही गुज़ारिश है मेरी।
दुनिया से क़यामत[11] दूर सही, दुनिया की कयामत दूर नहीं॥

---

१. मानव प्रेम और दुख-सुख २. परिपूर्ण ३. सफर करने और प्राप्त करने की उत्सुकता के अतिरिक्त ४. विश्वास ५. ज्योति ६. लाभ और हानि के संसार मे ७. उन्माद की शिक्षा ८ हानि ९. हाथो-बाहो की १० अत्याचारियो की ११. महाप्रलय।

फुटकर शेर

उसे सय्याद[1] ने कुछ, गुल ने कुछ, बुलबुल ने कुछ समझा।
चमन मे कितनी मानीखेज़[2] थी इक खामशी[3] मेरी ।।

◇ ◇ ◇

यू तडप कर दिल ने तडपाया सरे-महफिल[4] मुझे।
उस को कातिल कहने वाले कह उठे कातिल मुझे ।।

◇ ◇ ◇

हद्दे कूचा-ए-महबूब[5] हैं वही से शुरू।
जहा से पडने लगे पाव, डगमगाये हुए ।।

◇ ◇ ◇

ले के खत उनका, किया ज़ब्त बहुत कुछ लेकिन।
थरथराते हुए हाथो ने भरम खोल दिया ।।

◇ ◇ ◇

तेरी आखो का कुछ कसूर नही।
हा मुझी को खराब होना था ।।

◇ ◇ ◇

हुस्न की हर-हर अदा पर जानो-दिल सदके[6] मगर।
लुत्फ कुछ दामन बचाकर ही गुजर जाने मे है ।।

◇ ◇ ◇

वरना क्या था सिर्फ तरतीबे-अनासिर[7] के सिवा।
खास कुछ बेताबियो का नाम इन्सा हो गया ।।

◇ ◇ ◇

जीने तक हैं होश के जलवे आगे होश की मस्ती है।
मौत से डरना क्या मानी, मौत भी जुज़्वे-हस्ती[8] है ।।

◇ ◇ ◇

---

१. शिकारी २ अर्थपूर्ण ३ खामोशी ४ महफिल मे ५ प्रेमिका की गली की सीमायें ६. न्यौछावर ७ तत्वों के क्रम ८ जीवन का अग

क्या लुत्फ कि मैं अपना पता आप बताऊं ।
कीजे कोई भूली हुई खास अपनी अदा याद ।।

◇ ◇ ◇

इधर से भी है सिवा कुछ उधर की मजबूरी ।
कि हमने आह तो की उनसे आह भी न हुई ।।

◇ ◇ ◇

कभी शाखो-सब्जा-ओ-बर्ग पर, कभी गुचा-ओ-गुलो-खार पर[1] ।
मैं चमन में चाहे जहां रहूं मेरा हक है फसले-बहार पर ।।

◇ ◇ ◇

हर इक सूरत, हर इक तस्वीर मुबहम[2] होती जाती है ।
इलाही ! क्या मेरी दीवानगी कम होती जाती है ।।

◇ ◇ ◇

किसी सूरत नमूदे-सोज़े-पिनहानी[3] नही जाती ।
बुझा जाता है दिल, चेहरे की ताबानी[4] नही जाती ।।
मुहब्बत मे इक ऐसा वक़्त भी दिल पर गुजरता है ।
कि आंसू खुश्क हो जाते हैं, तुगियानी[5] नही जाती ।।
जिसे रौनक़ तेरे कदमो ने देकर छीन ली रौनक़ ।
वो लाख आबाद हो उस घर की वीरानी नही जाती ।।
वो यूं दिल से गुजरते है कि आहट तक नही होती ।
वो यूं आवाज़ देते हैं, कि पहचानी नही जाती ।।

◇ ◇ ◇

हाय ये मजबूरिया, महरूमियां, नाकामियां ।
इश्क आखिर इश्क है, तुम क्या करो, हम क्या करें ?

◇ ◇ ◇

किस तरफ जाऊं, किधर देखूं, किसे आवाज़ दूं ?
ऐ हुजूमे-नामुरादी[6] , जी बहुत घबराये है ।

---

१. शाखाओ, हरियाली, पत्तो, कलियो, फूलो, काटो पर २. अस्पष्ट ३. आन्तरिक व्यथा का अस्तित्व ४ चमक ५. तूफान ६. ऐ असफलताओ के समूह ।

वो भी है इक मुकामे-इश्क[1] जहां।
हर तमन्ना गुनाह होती है।।

◇ ◇ ◇

मैं तेरा अक्स[2] हूं कि तू मेरा।
इस सवालो - जवाब ने मारा।।

◇ ◇ ◇

रह गया है अब तो बस इतना ही रब्त[3] इक शोख से।
सामना जिस वक्त हो जाता है, भर आता है दिल।।

◇ ◇ ◇

जिसे मैं भी खुद न बता सकूं, मेरा राज़े-दिल है वो राज़े-दिल।
जिसे गैर दोस्त समझ सकें, मेरे साज़ में वो सदा[4] नहीं।।

◇ ◇ ◇

लाखों में इन्तिखाब के काबिल बना दिया।
जिस दिल को तुमने देख लिया दिल बना दिया।।

◇ ◇ ◇

दिल को क्या-क्या सुकून[5] होता है।
जब कोई आसरा नहीं होता।।

◇ ◇ ◇

कांटों का कुछ हक है आखिर।
कौन छुडाये अपना दामन।।

◇ ◇ ◇

ये इश्क नहीं आसां, इतना ही समझ लीजे।
इक आग का दरिया है, और डूब के जाना है।।

◇ ◇ ◇

इस तरह न होगा कोई आशिक भी तो पाबन्द।
आवाज़ जहां दो उसे वो शोख वहीं है।

---

१ प्रेम की स्थिति २ प्रतिरूप ३ सम्बन्ध ४ आवाज़ ५ शान्ति

हरचन्द वक़्फ़े-कश-म-कशे-दो-जहा रहे[1]।
तुम भी हमारे साथ रहे, हम जहां रहे ॥

◇ ◇ ◇

तौहीने-इश्क न हो, ऐ 'जिगर'! न हो।
हो जाये दिल का खून, मगर आंख तर न हो ॥

◇ ◇ ◇

वो हज़ार दुश्मने-जां सही, मुझे फिर भी ग़ैर अज़ीज़ है।
जिसे खाके-पा[2] तेरी छू गई, वो बुरा भी हो, तो बुरा नही ॥

◇ ◇ ◇

पांव रुकते हो नही मंज़िले-जानां[3] के खिलाफ।
और अगर होश की पूछो तो मुझे होश नही ॥

◇ ◇

दरिया की ज़िन्दगी पे सदक़े[4] हज़ार जानें।
मुझको नही गवारा[5] साहिल की मौत मरना ॥

◇ ◇ ◇

दिल गया रौनके-हयात[6] गई।
ग़म गया सारी कायनात[7] गई ॥

◇ ◇ ◇

इन्हे आंसू समझकर यूं न मिट्टी मे मिला ज़ालिम।
पयामे-दर्दे-दिल है, और आंखो की ज़बानी है ॥

◇ ◇ ◇

क्या आगया खयाल दिले-बेकरार में।
खुद आशियां को आग लगा दी बहार मे ॥

◇ ◇ ◇

---

१. यह ठीक है कि हम दो दुनियाओ की कशमकश मे गिरफ्तार रहे
२. पाव की धूल ३. प्रेमिका तक पहुँचाने वाली मजिल ४. न्योछावर
५. पसद ६. ज़िदगी की रौनक ७. सृष्टि

इश्क है किस कतार मे[1] हुस्न है किस शुमार[2] मे ।
उम्र तमाम हो चुकी, अपने ही इन्तज़ार मे ।।

आज तो कर दिया साकी ने मुझे मस्त अलस्त ।
डाल कर खास निगाहें मेरे पैमाने में ।।

मौतो-हयात[3] मे है सिर्फ एक कदम का फासला ।
अपने को जिन्दगी बना, जलवा-ए-जिन्दगी[4] न बन ।।

---

१ पंक्ति मे (गिनती मे) २ गिनती ३ मृत्यु और जीवन ४ ज़िंदगी का जलवा (नज़्ज़ारा)



'फ़िराक़' गोरखपुरी

यूं ही 'फ़िराक़' ने उम्र बसर की
कुछ ग़मे-जानां, कुछ ग़मे-दौरां

परिचय

किसी पाठशाला मे एक मौलवी साहब ने विद्यार्थियों को पढाते समय 'ग़जल' की व्याख्या इन शब्दो मे की कि "शायरी के दूसरे असनाफ (रूपो) की तरह ग़ज़ल भी एक सनफे-सुखन (काव्य-रूप) है जिसे अमूमन वो लोग अपनाते हैं जिनका चाल-चलन खराब होता है।"

और ठीक ही तो है—मौलवी साहब भला इसके अतिरिक्त ग़ज़ल की और क्या व्याख्या कर सकते थे जबकि गज़ल का पूरा भडार आशिक और माशूक़ की चर्चा, हिज्र और विसाल के झगडो, मैकदे, साक़ी और शराब के गुणगान और वाइज़, शेख और ब्रह्मन की पगडी उछालने आदि 'बदचलनियों' से भरा पटा है। इस पर खुदा और जन्नत और जहन्नुम से इस प्रकार के मज़ाको को .

हम को मालूम है जन्नत की हकीक़त लेकिन ।
दिल के खुश रखने को 'गालिब' ये ख़याल अच्छा है ।।
('ग़ालिब')

और

इलाही कैसे होते हैं जिन्हे है बन्दगी ख्वाहिश ।
हमे तो शर्म दामनगीर होती है खुदा होते ।।
('मीर')

भला कौन 'शरीफ' आदमी है जो सहन कर सकता है। लेकिन वह जो किसी ने कहा है कि किसी से सहन हो न हो, होता वही है जो होना होता है।

अतएव मौलवी साहब आज भी ग़ज़ल की वैसी ही व्याख्या कर रहे हैं और ग़ज़लें लिखने वाले शायर बराबर अपनी ढिठाई का प्रमाण देते चले जा रहे हैं।

'फिराक़' गोरखपुरी की चर्चा करते समय मुझे मौलवी साहब का यह लतीफा इसलिए याद आया क्योंकि इन दिनो शायरी के प्राचीन स्कूल के एक प्रसिद्ध और माननीय शायर नव्वाब जाफर अली खाँ 'असर' बिल्कुल मौलवियो की-सी बातें कर रहे हैं और 'फिराक' गोरखपुरी के :

ज़रा विसाल[1] के बाद आईना तो देख ऐ दोस्त।
तेरे जमाल[2] की दोशीज़गी[3] निखर आई॥

ऐसे सुन्दर शेरो को अश्लील और :

कुछ क़फस की[4] तीलियो से छन रहा है नूर सा।
कुछ फिज़ा[5], कुछ हसरते-परवाज़[6] की बातें करो॥

और

तमाम शबनमो-गुल है वो सर से ता-ब-कदम[7]।
रुके-रुके से कुछ आसू, रुकी-रुकी सी हँसी॥

ऐसे अनुभूतिपूर्ण शेरो को काने, लूले और लगड़े शेर कह रहे है।

'असर' और 'फिराक' दोनो मेरे लिए बुज़ुर्ग और आदरणीय शायर हैं। न मुझे 'असर' साहब की-सी भाषाविज्ञता और पिंगल-ज्ञान का दावा है, न 'फिराक' साहब ऐसे सुन्दर, सरस तथा संगीतपूर्ण शेर लिखना मेरे बस की बात। फिर भी मैं अपने इन दोनो बुज़ुर्गो को आपसी खेंचा-तानी से हाथ खीचने का परामर्श देते हुए किसी प्रकार का दुःसाहस नही कर रहा। 'फिराक' साहब अपनी ग़ज़लो मे 'असर' साहब पर इस प्रकार कीचड़ उछालते है :

वो मेरे अशआर 'असर' साहब है जिन पर मोतरिज़[8]
कुछ समझ मे आ तो सकते हैं लियाकत चाहिये॥
जैसी तनक़ीदें[9] 'असर' लिखते हैं ऐसी तो हर एक।
फेंक देगा लिख के तौफीक़े-हमाक़त[10] चाहिये॥

और उत्तर मे 'असर' साहब, जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, 'फ़िराक़'

---

१. प्रेमी और प्रेमिका का मिलन २. सौंदर्य ३. कवारापन ४. पिंजरे की ५. शून्य (आकाश) ६. उड़ने की अभिलाषा ७. सिर से पाँव तक वह (महबूब) ओस और फूलो का प्रतिरूप है ८. एतराज़ करते हैं ९. आलोचनायें १०. मूर्खता की सामर्थ्य

परिचय

किसी पाठशाला मे एक मौलवी साहब ने विद्यार्थियों को पढ़ाते समय 'गजल' की व्याख्या इन शब्दो मे की कि "शायरी के दूसरे असनाफ (रूपो) की तरह ग़जल भी एक सनफे-सुखन (काव्य-रूप) है जिसे अमूमन वो लोग अपनाते हैं जिनका चाल-चलन खराब होता है।"

और ठीक ही तो है—मौलवी साहब भला इसके अतिरिक्त ग़ज़ल की और क्या व्याख्या कर सकते थे जबकि ग़ज़ल का पूरा भडार आशिक और माशूक़ की चर्चा, हिज्र और विसाल के झगडों, मैकदे, साकी और शराब के गुणगान और वाइज़, शेख और ब्रह्मन की पगडी उछालने आदि 'बदचलनियों' से भरा पटा है। इस पर खुदा और जन्नत और जहन्नुम से इस प्रकार के मजाको को .

हम को मालूम है जन्नत की हकीक्त लेकिन ।
दिल के खुश रखने को 'गालिब' ये खयाल अच्छा है ।।

('ग़ालिब')

और

इलाही कैसे होते हैं जिन्हें है बन्दगी ख्वाहिश ।
हमे तो शर्म दामनगीर होती है खुदा होते ।।

('मीर')

भला कौन 'शरीफ' आदमी है जो सहन कर सकता है। लेकिन वह जो किसी ने कहा है कि किसी से सहन हो न हो, होता वही है जो होना होता है।

अतएव मौलवी साहब आज भी ग़ज़ल की वैसी ही व्याख्या कर रहे हैं और ग़ज़लें लिखने वाले शायर बराबर अपनी ढिठाई का प्रमाण देते चले जा रहे हैं।

'फिराक' गोरखपुरी की चर्चा करते समय मुझे मौलवी साहब का यह लतीफा इसलिए याद आया क्योंकि इन दिनो शायरी के प्राचीन स्कूल के एक प्रसिद्ध और माननीय शायर नव्वाब जाफर अली खाँ 'असर' बिल्कुल मौलवियों की-सी बातें कर रहे हैं और 'फिराक' गोरखपुरी के

> ज़रा विसाल[1] के बाद आईना तो देख ऐ दोस्त।
> तेरे जमाल[2] की दोशीज़गी[3] निखर आई॥

ऐसे सुन्दर शेरो को अश्लील और :

> कुछ कफस की[4] तीलियो से छन रहा है नूर सा।
> कुछ फिज़ा[5], कुछ हसरते-परवाज़[6] की बाते करो॥

और

> तमाम शबनमो-गुल है वो सर से ता-ब-कदम[7]।
> रुके-रुके से कुछ आसू, रुकी-रुकी सी हँसी॥

ऐसे अनुभूतिपूर्ण शेरो को काने, लूले और लंगड़े शेर कह रहे है।

'असर' और 'फिराक' दोनो मेरे लिए बुज़ुर्ग और आदरणीय शायर है। न मुझे 'असर' साहब की-सी भाषाविज्ञता और पिंगल-ज्ञान का दावा है, न 'फिराक' साहब ऐसे सुन्दर, सरस तथा संगीतपूर्ण शेर लिखना मेरे बस की बात। फिर भी मैं अपने इन दोनो बुज़ुर्गों को आपसी खेंचा-तानी से हाथ खीचने का परामर्श देते हुए किसी प्रकार का दुःसाहस नहीं कर रहा। 'फिराक़' साहब अपनी गज़लो मे 'असर' साहब पर इस प्रकार कीचड़ उछालते हैं :

> वो मेरे अशआर 'असर' साहब है जिन पर मोतरिज़[8]
> कुछ समझ मे आ तो सकते हैं लियाकत चाहिये॥
> जैसी तनक़ीदें[9] 'असर' लिखते हैं ऐसी तो हर एक।
> फेंक देगा लिख के तौफ़ीक़े-हमाक़त[10] चाहिये॥

और उत्तर मे 'असर' साहब, जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, 'फिराक'

---

१. प्रेमी और प्रेमिका का मिलन २. सौंदर्य ३. कंवारापन ४. पिंजरे को ५. शून्य (आकाश) ६. उड़ने की अभिलाषा ७. सिर से पाँव तक वह (महबूब) ओस और फूलों का प्रतिरूप है ८. एतराज़ करते है ९. आलोचनायें १० मूर्खता की सामर्थ्य

साहव के शेरो को काना, लूला, लगडा, अश्लील और मूर्खतापूर्ण कहकर अपने दिल की भडास निकालते हैं।

उर्दू साहित्य मे ऐसी ही कई खेंचातानियाँ प्राचीन शायरो मे भी चली थी, लेकिन परिणाम समय के विनाश के अतिरिक्त कुछ न निकला था। 'असर' साहव के 'फिराक' को हजार बार मूर्ख कहने से 'फिराक' की महानता पर और 'फिराक' साहव के लाख वार 'नालायक' कहने से 'असर' साहब की भाषा-विज्ञता तथा पिंगल-ज्ञान पर कोई आक्षेप नही आ सकता। दोनो शायर अपने-अपने स्थान पर अपनी शायरी के द्वारा ऐतिहासिक कर्त्तव्य पूरा कर रहे हैं। आने वाला समालोचक इन खेंचातानियो को कोई महत्व दिये बिना उर्दू साहित्य के इतिहास मे केवल उसी शायर का नाम आदरपूर्वक लेगा जो वास्तविक रूप मे शायर तथा समय के परिवर्तन-शील मूल्यो का साथी होगा।

रघुपतिसहाय 'फिराक' गोरखपुर के रहने वाले हैं। वही १८९६ मे आप का जन्म हुआ और वही आपने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। पिता मुशी गोरखप्रसाद 'इबरत' उस समय के प्रसिद्ध वकील तथा शायर थे। इस प्रकार शायरी 'फिराक' गोरखपुरी को घुट्टी मे मिली। लेकिन काव्य-अभिरुचि उन दिनो फली-फूली जब उच्च शिक्षा के लिए आप इलाहाबाद आये और यहाँ आपको प्रोफैसर 'नासरी' ऐसे साहित्यिक का सहयोग प्राप्त हुआ। प्रोफैसर 'नासरी' ने न केवल उनकी ग़ज़लो को सशोधित किया वल्कि उर्दू शायरी के नियमो पर नियमपूर्वक लेक्चर भी दिये और इस प्रकार 'फ़िराक' के दिल की दवी हुई ज्वाला को प्रज्वलित कर दिया।

शुरू ही से आपकी वुद्धि ऐसी तीव्र थी कि आप प्रत्येक कक्षा में उत्तम सफलता प्राप्त करते रहे। म्योर सेन्ट्रल कालेज इलाहावाद से इस शान से वी० ए० पास किया कि सरकार ने उन्हे तुरन्त डिप्टी कलक्ट्री के लिए चुन लिया, परन्तु डिप्टी कलक्टर वनने से पूर्व ही आप काग्रेस आदोलन मे भाग लेने लगे और यो दूसरो को जेल भेजने की वजाय स्वय जेल चले गये।

जेल मे गये तो वहाँ भी शेरो-शायरी का क्रम जारी रहा, वल्कि जेलखाना एक प्रकार से उनके लिए शेरो-शायरी की पाठशाला वन गया। यहाँ न केवल शायरो से उनकी भेंट हुई वल्कि वडे-वडे साहित्य-प्रेमियो से भी वरावर मुलाक़ातें होती रहीं। स्वर्गीय मौलाना मोहम्मद अली, स्वर्गीय मौलाना 'हसरत' मोहानी और मौलाना अब्बुलकलाम 'आजाद' की प्रतिदिन की सगति ने सोने पर सुहागे

का काम किया, अत अपने एक शेर मे वे कहते हैं :

अहले-ज़िंदा[1] की ये मजलिस है सबूत इसका 'फिराक' ।
कि बिखर कर भी ये शीराज़ा[2] परीशा न हुआ[3] ॥

१९२७ मे जब जेल से छूटे तो क्रिश्चियन कालेज लखनऊ मे नौकर हो गये और फिर सनातन धर्म कालेज कानपुर ने उर्दू पढाने के लिए बुला लिया। इस बीच मे आपने एम० ए० पास कर लिया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे अँग्रेज़ी के लैक्चरर नियुक्त हो गए और आज तक वही हैं।

'फिराक' साहब ने अनगिनत कवितायें, गज़लें, रुबाइयाँ, कतए इत्यादि लिखे है। समालोचक भी वे उच्च कोटि के हैं लेकिन स्मरण वे सदा अपनी ग़ज़लो बल्कि गज़लो के उन शेरो के कारण किये जाएँगे जिनकी सख्या सैकडो तक पहुँचती है और जो निस्सदेह क्लासिक का दर्जा रखते है, और उन्ही शेरो के कारण, जिनमे तसव्वुफ (मुस्लिम सतवाद) और गज़ल की परम्परागत कथावस्तु से लेकर राजनीति और वर्ग-सघर्प तक सभी कुछ है, कुछ लोग उन्हे आधुनिक उर्दू साहित्य का सबसे बड़ा गज़लगो (गज़लें लिखने वाला शायर) मानते हैं और इसमे कोई सदेह भी नही है कि उनके यहाँ शब्दो की जो सुन्दर पैंठ, हिन्दी तथा उर्दू के शब्दो तथा रूपको का सुन्दर समन्वय (जिससे उनकी भाषा सरस तथा सहज हो गई है), प्रेम की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताएँ और सौन्दर्य की अलौकिक उद्भावना जिस सजीलेपन से विद्यमान है, वह अन्य उर्दू शायरो के यहाँ कुछ कम ही नज़र आती है। भावुकता मे चिंतन का तत्व सम्मिलित कर वे न केवल प्रभावशीलता मे बहुत बडी वृद्धि कर देते है बल्कि सार्थकता मे भी निखार आ जाता है।

जहाँ तक पिंगल आदि का सम्बन्ध है 'असर' लखनवी के कथनानुसार 'फिराक' के शेरो मे यहाँ-वहाँ कुछ त्रुटियाँ अवश्य मिलती हैं लेकिन अब इसको क्या किया जाय कि प्रत्येक काल के महान् कवियो की रचनाओ मे उनके समकालीन साहित्यकार कई प्रकार की त्रुटियाँ निकालते रहे हैं। 'मीर' की ग़ज़लो मे से कुछ शेर छाँटकर उन्हे लोलुप आदि सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया, 'ग़ालिब' के शेरो को अर्थहीन तथा 'ग़ालिब' पर फार्सी शायरो के शेर चुराने का आरोप लगाया गया। 'इक्बाल' को तो लखनऊ के शायरो ने यह कहकर शायर मानने से ही इन्कार कर दिया कि वे शायरी के नियमो से

---

१. जेल-निवासी २. सिलाई, जो पुस्तक के पृष्ठो मे की जाती है
३ बिखरा नही

अनभिज्ञ हैं। और अंग्रेजी साहित्य मे तो इसका सबसे बड़ा प्रमाण शेक्सपियर है जिसके सम्बन्ध मे अब भी समालोचको का मत है कि वे व्याकरण बिल्कुल नही जानते थे और अशुद्ध भाषा लिखते थे। लेकिन •

'रूहे-कायनात', 'शोला-ए-साज', 'मशअल', 'रूप', 'शबनमिस्तान', 'रमजो-कनायात' इत्यादि कविता-सग्रहो के रचयिता 'फिराक' गोरखपुरी आधुनिक काल के उन बड़े उर्दू शायरों मे से हैं जिनकी सख्या अधिक नही, जिन्हें प्रगतिशील कवि कहलवाने का गौरव प्राप्त है, और जिनका नाम मीर, ग़ालिब, इकबाल, जोश और जिगर के साथ लिया जाता है।

ग़ज़लें

डरता हूं कामयाबी-ए-तकदीर[1] देख कर।
यानी सितमज़रीफी-ए-तक़दीर[2] देख कर॥
क़ालिब[3] में रूह फूंक दी या ज़हर भर दिया।
मैं मर गया हयात[4] की तासीर[5] देखकर॥
हैरां हुए न थे जो तसव्वुर[6] में भी कभी।
तस्वीर हो गये तेरी तस्वीर देखकर॥
ख्वाबे-अदम[7] से जागते ही जो पे बन गई।
ज़हराबा-ए-हयात[8] की तासीर देखकर॥
ये भी हुआ है अपने तसव्वुर मे होके महव[9]।
मै रह गया हूं आपकी तस्वीर देखकर॥
सब मरहले हयात के तै करके अब 'फ़िराक़'।
बैठा हुआ हूं मौत मे ताख़ीर[10] देखकर॥

◇ ◇ ◇

उमीदे-मर्ग[11] कब तक, ज़िन्दगी का दर्दे-सर कब तक?
ये माना सब्र करते है मोहब्बत में, मगर कब तक?
दियारे-दोस्त[12] हद होती है यूं भी दिल बहलने की!
न याद आये ग़रीबों[13] को तेरे दीवारो-दर कब तक?

---

१. भाग्य की सफलता २. भाग्य का मज़ाक़ ३. शरीर ४. जीवन
५. गुण, प्रभाव ६. कल्पना ७. नास्तित्व ८. जीवन का विष
९. निमग्न १० विलम्ब ११. मृत्यु की आशा १२. मित्र का देश
१३. प्रवासी

ये तदबीरें भी तकदीरे-मुहब्बत बन नही सकती।
किसी को हिज्र मे भूले रहेगे हम मगर कब तक ?
इनायत की, करम की, लुत्फ की आखिर कोई हद है !
कोई करता रहेगा चारा-ए-ज़ख्मे-जिगर[1] कब तक ?
किसी का हुस्न रुसवा हो गया पर्दे ही पर्दे मे।
न लाये रग आखिरकार तासीरे-नज़र कब तक ?

ये माना ज़िन्दगी है चार दिन की।
बहुत होते हैं यारो चार दिन भी ॥
खुदा को पा गया वाइज़[2], मगर है।
ज़रूरत आदमी को आदमी की ॥
बसा-औकात[3] दिल से कह गई है।
बहुत कुछ वो निगाहे-मुख्तसर[4] भी ॥
मिला हूँ मुस्करा कर उससे हर बार।
मगर आखो में भी थी कुछ नमी सी ॥
मुहब्बत में करें क्या हाल दिल का।
खुशी ही काम आती है न ग़म ही ॥
भरी महफिल मे हर इक से बचाकर।
तेरी आखो ने मुझ से बात कर ली ॥
लडकपन की अदा है जान-लेवा।
गज़ब[5] ये छोकरी है हाथ भर की ॥
है कितनी शोख तन्ज़ अय्यामे-गुल पर[6]।
चमन मे मुस्कराहट हर कली की ॥
रकीबे-ग़मज़दा[7] अब सब्र कर ले।
कभी इससे मेरी भी दोस्ती थी ॥

---

१ हृदय के आघात का इलाज २ धर्मोपदेशक ३ प्राय ४ अल्पकालीन दृष्टि ५ लडकपन की अदा को हाथ भर की छोकरी से उपमा दी है ६ वसन्त ऋतु पर कितना चपल व्यग है ७ दुखित प्रतिद्वन्द्वी

शामे-गम कुछ उस निगाहे-नाज़ की बाते करे ।
बेखुदी बढ़ती चली है राज़ की बातें करो ॥

नकहते-जुल्फे-परीशां, दास्ताने - शामे - गम[1] ।
सुवह होने तक इसी अदाज़ की बातें करो ॥

ये सकूते-यास[2] , ये दिल की रगों का टूटना ।
खामशी मे कुछ शिकस्ते-साज की[3] बातें करो ॥

हर रगे-दिल वज्द मे[4] आती रहे, दुखती रहे ।
यूंही उस जा-ओ-बेजा[5] नाज की बातें करो ॥

कुछ कफस[6] की तीलियो से छन रहा है नूर[7] सा ।
कुछ फ़ज़ा[8] कुछ हसरते-परवाज़[9] की बातें करो ॥

जिसकी फुरकत[10] ने पलटदी इश्ककी काया 'फिराक'।
आज उस ईसा-नफ़स दमसाज़[11] की बातें करो ॥

---

१. उलझे हुए सुगंधित केशो और शोकभरी सध्या (रात) का वृत्तात २ नैराश्य की चुप्पी ३. साज़ के टूटने की ४ दिल की हर नस उन्माद मे ५. उचित-अनुचित ६. पिंजरे ७. प्रकाश ८. आकाश ९. उड़ने की अभिलाषा १०. विछोह ११. पवित्र-हृदय मित्र

रुबाइयां

घर छोड़े हुओ की कोई मंजिल न सही ।
होती नही सहल कोई मुश्किल न सही ।।
हस्ती[1] की ये रात काट देने के लिए ।
वीराना सही, किसी की महफिल न सही ।।

◇ ◇ ◇

खोते हैं अगर जान तो खो लेने दे ।
जो ऐसे में हो जाये वो हो लेने दे ।।
एक उम्र पड़ी है सब्र भी कर लेंगे ।
इस वक्त तो जी खोल के रो लेने दे ।।

◇ ◇ ◇

क़तरे अरक़े-जिस्म के[2] मोती की लड़ी ।
है पैकरे-नाज़नी[3] कि फूलो की छड़ी ।।
गर्दिश में निगाह है कि बटती है हयात[4] ।
जन्नत भी है आज उम्मीदवारो मे खड़ी ।।

◇ ◇ ◇

सजोग बियोग की कहानी न उठा ।
पानी मे भीगते कंवल को देखा ।।
बीती होगी सुहाग रातें कितनी ।
लेकिन है आज तक कवारा नाता ।।

◇ ◇ ◇

---

१. जीवन २ शरीर के पसीने के ३. प्रेयसी का वदन ४ जीवन

फुटकर शेर

गरज़ कि काट दिये ज़िन्दगी के दिन ऐ दोस्त ।
वो तेरी याद में हो या तुझे भुलाने मे ॥

◇ ◇ ◇

मंजिलें गर्द[1] के मानिंद उड़ी जाती है ।
वही अंदाज़े-जहाने-गुज़रां[2] कि जो था ॥

◇ ◇ ◇

हज़ार वार ज़माना इधर से गुजरा है ।
नई-नई सी है कुछ तेरी रहगुजर फिर भी ॥

◇ ◇ ◇

ये जिन्दगी के कड़े कोस, याद आता है ।
तेरी निगाहे-करम[3] का घना-घना साया ॥

◇ ◇ ◇

मुनासबत[4] भी है कुछ ग़म से मुझको और ऐ दोस्त ।
बहुत दिनो से तुझे मेहरवां नही पाया ॥

◇ ◇ ◇

कुछ आदमी को हैं मजबूरियां भी दुनियां मे ।
अरे वो दर्दे - मुहब्बत सही, तो क्या मर जाएँ ॥

◇ ◇ ◇

मुझे खबर नही है ऐ हमदमो, सुना ये है ।
कि देर-देर तक अब मैं उदास रहता हूं ॥

◇ ◇ ◇

एक तेरे छुटने का गम, एक गम उनसे मिलने का ।
जिनकी इनायतो[5] से जी और उदास हो गया ॥

◇ ◇ ◇

१. धूल २ काल-चक्र की रीति ३. कृपा-दृष्टि ४. सम्बंध, लगाव
५. कृपाओ

हम से क्या हो सका मुहब्बत में ?
तुमने तो खैर बेवफाई की ॥

◇ ◇ ◇

कौन ये ले रहा है अंगडाई ।
आसमानो को नीद आती है ॥

◇ ◇ ◇

मैं पा के भी तुझे कुछ मुन्तज़िर सा हू तेरा ।
है दिल का कौल[1] कि तू आप अपनी आहट है ॥

◇ ◇ ◇

सिमट सिमट सी गई है फज़ा-ए-बेपाया[2] ।
बदन चुराये वो जिस दम इधर से गुज़रे हैं ॥

◇ ◇ ◇

यकलख्त[3] चौंक उठा हूं मैं जिस दम पडी है आँख ।
आये तुम आज भूली हुई याद की तरह ॥

◇ ◇ ◇

कहा वो खलवतें[4] दिन-रात की और अब ये आलम[5] है ।
कि जब मिलते हैं दिल कहता है कोई तीसरा होगा ॥

◇ ◇ ◇

मै देर तक तुझे खुद ही न रोकता लेकिन ।
तू जिस अदा से उठा है उसी का रोना है ॥

◇ ◇ ◇

मेहरबानी को मुहब्बत नही कहते ऐ दोस्त ।
आह अब मुझसे तेरी रंजिशे-बेजा[6] भी नही ॥

◇ ◇ ◇

कू-ए-जानां[7] के भी इक मुद्दत से हैं आहट पे कान ।
अहले-ग़म[8] के कारवा, किन वादियो में खो गये ॥

---

१ कथन २ असीम शून्य ३ एकाएक ४. एकात की मुलाकातें
५. हालत ६ व्यर्थ की अप्रसन्नता ७ यार की गली ८ शोक-ग्रस्त प्रेमियो

थी यूं तो शामे-हिज्र[1] मगर पिछली रात को।
वो दर्द उठा 'फिराक' कि मैं मुस्करा दिया॥

◇ ◇ ◇

वजा है ज़ब्त भी, लेकिन मुहब्बत में कभी रोले।
दवाने के लिए हर दर्द, ऐ नादां नहीं होता॥

◇ ◇ ◇

हमे भी देख जो इस दर्द से कुछ होश मे आये।
अरे दीवाना हो जाना मुहब्बत मे तो आसा है॥

◇ ◇ ◇

शाम भी थी धुआ-धुआं, हुस्न भी था उदास-उदास।
दिल को कई कहानियां, याद-सी आके रह गईं॥

◇ ◇ ◇

जिन्दगी को भी मुह दिखाना है।
रो चुके तेरे वेकरार वहुत॥

◇ ◇ ◇

मुहब्बत मे मेरी तनहाइयों के हैं कई उनवां[2]।
तेरा आना, तेरा मिलना, तेरा उठना, तेरा जाना॥

◇ ◇ ◇

हुस्न को इक हुस्न ही समझे नही और ऐ 'फिराक'।
मेहरवां, नामेहरवां क्या-क्या समझ वैठे थे हम॥

◇ ◇ ◇

'फिराक़' तू ही मुसाफिर है तू ही मंज़िल भी।
किधर चला है मुहब्बत की चोट खाये हुए॥

◇ ◇ ◇

न रहज़नों से[3] रुके रास्ते मुहब्बत के।
वो काफ़ले नज़र आये लुटे-लुटाये हुए॥

◇ ◇ ◇

---

१. विछोह की रात २. शीर्षक ३. लुटेरो से

देखिये कब इस निज़ामे-ज़िन्दगी की[1] सुबह हो।
आसमानो को भी जैसे आ रही है नीद सी॥

◇ ◇ ◇

मुद्दतें गुज़री तेरी याद भी आई न हमें।
और हम भूल गये हो तुझे, ऐसा भी नही॥

◇ ◇ ◇

कहा का वस्ल[2] तनहाई ने शायद भेस बदला है।
तेरे दम भर के आ जाने को हम भी क्या समझते हैं॥

◇ ◇ ◇

न कोई वादा, न कोई यकी, न कोई उमीद।
मगर हमे तो तेरा इन्तजार करना था॥

◇ ◇ ◇

उस रहगुज़ार पर है रवा कारवाने-इश्क।
कोसो जहां किसी को खुद अपना पता नही॥

◇ ◇

ज़िन्दगी क्या है आज इसे ऐ दोस्त।
सोच लें और उदास हो जायें॥

◇ ◇ ◇

---

१ जीवन के विधान २ मिलाप



'हफ़ीज़' जालंधरी

तशकीलो-तकमीले-फ़न में जो भी 'हफ़ीज़' का हिस्सा है
निस्फ़ सदी का क़िस्सा है दो-चार बरस की बात नहीं

भूमिका

आपने अपनी आयु मे इस प्रकार की कथायें अवश्य सुनी होगी कि एक वार जब मारे गर्मी के चील अडा छोड रही थी और मनुष्य, पशु सब की ज़बानें वाहर निकल आई थी तो वैजूवावरा ने मल्हार गा दिया और देखते-देखते मूसलाधार वर्षा होने लगी। या तानसैन ने आधी रात को दीपक-राग छेड दिया और शहर भर के बुझे हुए दीपक आप ही आप जल उठे।

ऐसी कथाओ को आप मनघडत और कल्पित बातें कह सकते हैं लेकिन इन कथाओ मे काव्य-विषय और उसके रूप (सगीत धर्म) के परस्पर सम्बन्ध की ओर जो स्पष्ट सकेत मिलता है, उसकी किसी प्रकार अवहेलना नही की जा सकती और यही कारण है कि किसी महान् कवि की किसी रचना के वारे मे कभी इस प्रकार की वातें सुनने मे नही आई कि कविता का विषय तो शृ गाररस का है और शब्द भक्तिरस के प्रयुक्त किये गये हैं।

मोहम्मद हफीज़ 'हफीज़' जालधरी की शायरी का अध्ययन करने से जो वात सवसे पहले हमे अपनी ओर खीचती है, वह यही विषय और रूप का परस्पर सम्बन्ध है। उसके यहाँ एक शब्द पर दूसरा शब्द, एक पक्ति पर दूसरी पक्ति और एक शेर पर दूसरा शेर इस प्रकार ठीक बैठा हुआ और उसे आगे वढाता हुआ मिलता है, मानो किसी चित्र पर पडा हुआ पर्दा सरक रहा हो। और फिर जब पूरा चित्र हमारे सामने आता है तो जाना-पहचाना होने पर भी हमे उसमे कुछ ऐसा नया अर्थ, नया प्रसग और नया सौंदर्य नज़र आने लगता है कि हम उस पर से नज़रें हटाना पसद नही करते। नये और पुरानेपन के इस

समावेश से 'हफीज़' ने अपने यहाँ जो निरालापन उत्पन्न किया है, वह आधारित है उसके छोटे-छोटे सगीतधर्मी छन्दो के चुनाव पर (जिसके लिए उसने हिन्दी पिंगल का भी आश्रय लिया है), विचारो की एकाग्रता पर, चित्र-चित्रण के लिए चित्र से मेल खाती हुई उपमाओ पर। अतएव जब हम उसकी कविता 'वसंत' या 'अभी तो मैं जवान हूँ' पढते है (या उसके मुँह से सुनते हैं) तो हम पर एक विचित्र प्रकार की मस्ती और उन्माद सा छा जाता है। 'जलवा-ए-सहर' के विषय-वस्तु की ओर ध्यान दिये बिना केवल शब्दो के उतार-चढाव से ही ऐसा मालूम होता है, जैसे नीद मे डूबा हुआ पूरा ससार जाग उठा हो और एक अंतिम अगडाई के साथ सारी शिथिलता को परे झटक कर दिनचर्या के लिये तैयार हो रहा हो। 'तारो भरी रात' सुनते समय न केवल पूरे विश्व के सो जाने का विश्वास हो जाता है, बल्कि स्वय सुनने वाले पर निद्रा आक्रमण करने लगती है, और जब हम 'बरसात' सुनते हैं तो लगता है, वर्षा ऋतु मे हम किसी बाग की सैर कर रहे हैं, झूला झूलने वाली मल्हार गा रही हैं और उनके अरमानों भरे गीत हमारे दिल मे हूक-सी उत्पन्न कर रहे हैं।

'उसके मुँह से सुनते हैं' लिखने की आवश्यकता मुझे इसलिए हुई कि एक बड़ा शायर होने के साथ-साथ 'हफ़ीज़' एक बड़ा अभिनेता भी है। आज तक कोई ऐसा मुशायरा (कवि-सम्मेलन) दूसरे शायरो के लिये 'शुभ' सिद्ध नही हुआ जिसमें 'हफ़ीज़' मौजूद हो। अपनी एक-दो तानो से ही वह पूरे मुशायरे पर छा जाता है और लोग-बाग बार-बार उसी के शेर सुनने की फर्माइश करने लगते हैं। लेकिन इसका मतलब यह भी नही है कि वह केवल मुशायरो का शायर है और उसकी सफलता का भेद उसकी गलेबाजी या उसकी विभिन्न शारीरिक हरकतो मे निहित है और इसलिये उसे गायक या मसखरा कहकर टाला जा सकता है। (शुरू-शुरू मे ऐसी कोशिशें जरूर की गई थीं) नही, गायक या मसखरे की बजाय मौलिक रूप से वह न केवल एक बड़ा शायर है बल्कि उर्दू शायरी मे वह एक कड़ी का सा महत्त्व रखता है और मेरे इस कथन मे शायद सदेह की कम गुंजाइश होगी कि 'इक़बाल' के तुरन्त बाद जिन उर्दू-शायरो ने शायरी को जीवन के निकटतर लाने, विषय से लगा खाते हुए छन्दो का 'आविष्कार' करने और खूब सोच-समझ कर भाषा तथा शैली को सरल बनाने के सफल प्रयास किये हैं और इस प्रकार नये शायरो के लिये नई राहे खोली है, उनमे 'अख्तर' शीरानी और 'हफ़ीज़' जालंधरी का नाम सबसे ऊपर आता है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक और प्राचीन घटनाओं को 'शाहनामा

इस्लाम' (चार सस्करण) के नाम से काव्य का रूप देने और शुष्कता तथा गद्य से स्वच्छ रखने मे 'हफीज़' ने जिस कलात्मक निपुणता का प्रमाण दिया है, नि सदेह वह उसी का काम था। फिर्दौसी (प्रसिद्ध ईरानी कवि) ने महमूद ग़ज़नवी के कहने पर 'शाहनामा' लिख कर ईरान के बादशाहो की महानताओ को फिर से जीवित करने का जो अद्वितीय काम किया था, ठीक उसी प्रकार 'हफीज़' ने अपनी धार्मिक भावनाओ से प्रभावित होकर इस्लामी इतिहास और इस्लाम की आन-बान को जिन्दा करने की कोशिश की है।

'शाहनामा इस्लाम' के अतिरिक्त उसकी कविताओं के कई और सग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'नगमा-ए-ज़ार', 'सोज़ो-साज़' और 'तलखाबा-ए-शीरीं' उल्लेखनीय हैं। इन सग्रहो की नज्मो, गज़लो और गीतो की विशेषता वही असाधारण प्रभाव है, जिसमे पाठक आप ही आप बहता चला जाता है।

१६२१ मे जब उसने पहले-पहल परम्परागत शायरी से हटकर नया रग अपनाया तो, जैसा कि सदैव होता है, रूढिवादियो ने उस पर अपने छुरी-काँटे तेज किये। इस बारे मे हफीज़ एक स्थान पर स्वय लिखता है ·

"मुझे ऐसे लोगो की भीड-भाड मे से राह निकालनी पडी है जिनका बोध अभी दबोच लेने, तिक्का-बोटी कर डालने और खा जाने से आगे नहीं बढा। साहित्य-वाटिका उनकी शिकारगाह है। मुझे उनके इक्के-दुक्के से भी वास्ता पडा और उनकी टोलियाँ भी मुझ पर लपकीं—झपटी। पहले ये भभकी देते हैं, कोई डर जाये या उलझ पडे तो उसकी खैर नही। उनसे बचने के लिए केवल एक शस्त्र उपयोगी है—बेपरवा मुस्कराहट।"

अतएव उसने अपने इसी शस्त्र का प्रयोग किया और कान लपेटकर, मुस्कराता हुआ, अपनी डगर पर चलता रहा और अब तक चल रहा है।

उर्दू शायरी के इस निराले पथिक का जन्म १४ जनवरी १६०० को जालधर (पजाब) मे हुआ। इस प्रसग से यह शताब्दि और वह साथ-साथ चल रहे हैं। स्वय उसके कथनानुसार कोई अन्य होता तो एक इसी आधार पर शायर से कही उच्च पदवी की माग कर बैठता—"यह मेरा अहसान है कि मैं शायर होने का ज़िक्र भी दबी ज़बान से करता हूँ।"

वह अभी बहुत छोटा था जब उसे मोहल्ले की मस्जिद में बिठा दिया गया, जहां ६ वर्ष की आयु मे ही उसने क़ुरान शरीफ पढ लिया, बहुत से सूरे (कुरान शरीफ़ के खड) कठस्थ कर लिए और करीमा और मामकीमा (शेख सादी (ईरानी कवि) की बच्चो की नज्मे) रट ली। लेकिन इससे आगे वह मस्जिद

मे न चल सका, जिसका कारण उसके कथनानुसार नैतिक भी था और भौतिक भी। फिर उसे मिशन स्कूल मे भरती कराया गया, लेकिन वहाँ से वह दूसरी कक्षा ही से भाग निकला। सरकारी पाठशाला मे प्रविष्ट हुआ, चौथी कक्षा मे था कि वहा से भी भाग लिया। आर्य पाठशाला मे और फिर मिशन हाई स्कूल में ले जाया गया लेकिन 'गणित' से उसकी जान जाती थी और 'गणित' के घंटे मे वह प्रतिदिन भाग निकलता था, अत दूसरे दिन उसकी खूब पिटाई होती थी। भागने और पिटने के इस सघर्ष मे आखिर भागने की विजय हुई और वह सातवी कक्षा से ऐसा भागा कि फिर कभी पाठशाला का मुँह न देखा।

यह बात सचमुच आश्चर्यजनक है कि इतनी कम शिक्षा और घर के अत्यत असाहित्यिक वातावरण के होते हुए उसने सात वर्ष की छोटी-सी आयु मे तुकबन्दी शुरू कर दी और फिर ग्यारह वर्ष की आयु मे बाकाय्दा शेर कहने लगा। अपने उन दिनो के बारे मे स्वय उसका बयान देखिये :

"मेरे घराने पर मौत झपट रही थी। मेरे भाइयो को प्लेग और हैजा लिये जा रहे थे और मुझे काफिये और गजल।"

काफिये और ग़ज़ल के लिए नियमानुसार उसे किसी 'उस्ताद' की ज़रूरत पडी। अतएव उसने करीबी बस्ती के एक शायर सरफराज़ खा 'सरफराज़' (जो उसके कथनानुसार उस ज़माने मे जैसे शेर कहते थे आज बुढापे मे भी वैसे ही कहते हैं) की शरण ली। लेकिन 'सौभाग्यवश' उन्होंने कोई विशेष परामर्श न दिया। फिर फार्सी के एक महा पंडित और कवि मौलाना गुलाम कादिर 'गिरामी' को कुछ ग़ज़ले दिखाईं, जिस पर 'गिरामी' साहब ने मश्वरा दिया कि किसी का शिष्य बनने की बजाय उसे स्वय ही अपनी रचनाओ पर बार-बार आलोचनात्मक दृष्टि डालनी चाहिये। अतः इस मश्वरे पर अमल करते हुए उसने फिर किसी 'उस्ताद' के आगे घुटने नही टेके और अन्त मे इस दावे का हक़दार हो गया कि :

अहले-ज़बा तो है बहुत, कोई नही है अहले-दिल।
कौन तेरी तरह 'हफीज' दर्द के गीत गा सका ?

और

'हफीज' अहले-जबा कब मानते थे।
बड़े ज़ोरो से मनवाया गया हूँ॥

आज 'हफीज' जालंधरी जिसे 'अब्बुलअसर' (प्रभावशालियो का पिता) कहा जाता है, जिसकी कविता सम्बन्धी सेवाओं के आधार पर (कदाचित् युद्ध के पक्ष

मे, 'मैं तो छोरा को भरती कराये ग्राई रे'—ऐसी प्रचारात्मक कवितायें लिखने के कारण) अग्रेजी सरकार ने उसे 'खान वहादुर' का खिताव दिया था और जिसे पाकिस्तान सरकार अपना सबसे वडा राष्ट्रीय-कवि मानती है और हर वर्ष एक वडी रक़म वृत्ति-स्वरूप प्रदान करती है, किसी ज़माने मे अत्यन्त निर्धन और निराश्रय रह चुका है। उसने रेलवे लाइन पर मेटी की है, इत्र वेचा है, ताले वनाने और कपडे सीने का घधा किया है। डाकघर के वाहर बैठकर लोगो के पत्र लिखे हैं, रेलवे स्टेशनो पर मज़दूरी और सेना की ठेकेदारी की है। नये कवियो को कवितायें लिख-लिखकर देना और सिंगर मशीन कम्पनी की नौकरी इत्यादि सैकडो पापड वेले हैं। जीवन के साथ इन तरह-तरह की समझौता-वाज़ियो की तरह काव्य-रूप से तो नही लेकिन काव्य-विषय के साथ उसने काफी समझौतावाज़ियां की हैं। इसके अतिरिक्त (विशेषकर आजकल) वह 'धर्म' की छत्र-छाया मे इस हद तक सिमटा हुआ है कि उसकी कलात्मक योग्यताओ को देखते हुए यह कहने की इच्छा होती है—'काश ! वह सुधारक वनने की कोशिश न करता !'

अभी तो मैं जवान हूँ

(१)

अभी तो मैं जवान हूँ !

हवा भी खुशगवार है गुलो पे भी निखार है,
तरन्नुम[१] हज़ार है वहार पुरवहार है,
कहां चला है साकिया ?
इधर तो लौट इधर तो आ,
अरे ये देखता है क्या ?
उठा सबू[२], सबू उठा,
सबू उठा, प्याला भर प्याला भर के दे इधर,
चमन को सिम्त कर नज़र समां[४] तो देख, बेखबर,
वो काली-काली वदलियां,
उफ़क[५] पे हो गई अयां[६],
वो इक हुजूमे-मैकशां[७],
है सू-ए-मैकदा रवां[८],
ये क्या गुमां है बदगुमा समझ न मुझ को नातवां[९],
खयाले-जुहद[१०] अभी कहां ?
अभी तो मै जवान हूँ !

---

१. संगीत २. सुराही ३. ओर ४. समय ५. क्षितिज ६. प्रकट ७. मद्यपों का समूह ८. मधुशाला की ओर जा रहा है ९. दुर्बल १०. उपासना का विचार

(२)

इबादतो का ज़िक्र है निजात[1] की भी फ़िक्र है,
जनून है सवाब[2] का खयाल है अज़ाब[3] का,

मगर सुनो तो शैख जी!
अजीब शै हैं आप भी!
भला शबाबो - आशिकी,
अलग हुए भी है कभी?

हसीन जलवारेज़ हो[4] अदायें फितनाखेज़[5] हो,
हवाये इत्रबेज़[6] हो तो शौक क्यो न तेज़ हो,

निगार-हाये फितनागर[7],
कोई इधर कोई उधर,
उभारते हैं ऐश पर,
तो क्या करे कोई बशर[8]?

चलो जी किस्सा मुख्तसर तुम्हारा नुक्ता-ए-नजर[9],

दुरुस्त है तो हो, मगर,
अभी तो मै जवान हूँ!

---

१. मुक्ति २ पुण्य ३ पापो का दण्ड ४. जलवे दिखा रहे हो ५. फितने खडे करने वाली ६ सुगधिया बिखेर रही हो ७ फितने उठाने वालो (माशूको) के मुखडे ८ प्राणी ९ दृष्टिकोण (विचार)

(३)

ये गश्त[1] कोहसार[2] की   ये सैर जूएबार[3] की,
ये बुलबुलों के चहचहे   ये गुलरुखो के[4] क़हक़हे,

किसी से मेल हो गया,
तो रंजो-फिक्र खोगया,
कभी जो बख़्त[5] सो गया,
ये हँस गया वो रोगया,

ये इश्क की कहानियाँ   ये रस भरी जवानिया,
उधर से मेहरबानियां   इधर से लनतरानियां[6],

ये आस्मान ये जमीं,
नज्जाराहाये दिलनशी[7],
इन्हे हयात - आफरी[8],
भला मैं छोड़ दूं यही!

है मौत इस कदर क़री[9]   मुझे न आयेगा यक़ी,

नही-नही, अभी नही,
अभी तो मै जवान हूं!

---

१. सैर २. पहाड़ी स्थान ३ नदी किनारा ४. फूलो जैसे चेहरे वालों के ५ भाग्य ६ डींगें ७ सुन्दर दृश्य ८ जीवन-वर्धक ९. निकट

(४)

न गम कशूदो-बस्त[१] का बुलंद का न पस्त का,
न बूद[२] का न हस्त[३] का न वादा-ए- अलस्त[४] का,

उमीद और यास गुम,
हवास गुम कयास गुम,
नज़र से आस पास गुम,
हमा[५], बजुज़[६] गिलास गुम,

न मै मे कुछ कमी रहे कदह[७] से हमदमी रहे,
नशिस्त[८] ये जमी रहे यही हमाहमी रहे,

वो राग छेड मुतरिबा[९] ,
तरबफज़ा[१०], अलमरुबा[११],
असर सदा-ए-साज़ का[१२],
जिगर में आग दे लगा,

हर एक लब[१३] पे हो सदा न हाथ रोक साकिया,

पिलाये जा पिलाये जा,
अभी तो मैं जवान हू।

---

१ खोलने-बाधने का २ अतीत ३ वर्तमान ४ आदि काल का प्रण (क़ुरान मे एक स्थान पर आता है कि जब खुदा इन्सान को बना चुका तो उसने उससे पूछा कि क्या मैं तेरा खुदा हूं ? इन्सान ने उत्तर दिया कि हा तू मेरा खुदा है। उसी की ओर सकेत है) ५ सभी कुछ ६ सिवाय ७ प्याला ८ महफिल ९ गायिका १० आनन्दवर्धक ११ शोक को उडा देने वाला १२ साज की आवाज का असर १३ होठ

ईद का चांद

जीती रहो, मगर मुझे आता नही नज़र।
बेटी कहां है चांद ? मुझे भी बता, किधर ?

अफसोस, अब निगाह भी कमज़ोर हो गई।
नेमत[1] ख़ुदा ने दी थी बुढ़ापे में खो गई॥

मीनारे - ख़ानकाह के ऊपर[2] ? कहां ? कहां ?
कुछ भी नही, कोई भी नही है वहां कहां ?

हां, डालियो के बीच मे होगा वही कही।
वो है जहां पे अब्र[3] की सुर्ख़ी कही-कही॥

अब हो चुकी है उम्र भी नौ और आठ साल।
गुज़रे तेरे ख़ुसर[4] को भी गुज़रे हैं आठ साल॥

तेरी तरह से मैं भी कभी हां जवान थी।
वो दिन भले थे और भली उनकी शान थी॥

हर इक से पहले देखती थी मैं हिलाले-ईद[5]।
दस-बीस दिन से रहता था हरदम ख़याले-ईद॥

अब दिन तुम्हारे, वक़्त तुम्हारा, तुम्हारी ईद।
बेटी ! तुम्हारी ईद से है अब हमारी ईद॥

---

१. सुख-सामग्री २. एक प्रकार की मस्जिद के मीनार के ऊपर ३ बादल ४ ससुर ५. ईद का चांद

गीत

जाग सोज़े-इश्क[1] जाग !
जाग सोज़े-इश्क जाग !!

जाग काम देवता फितना - हाए नौ[2] जगा ।
बुझ गया है दिल मेरा फिर कोई लगन लगा ।।
सर्द हो गई है आग !
जाग सोज़े-इश्क जाग ।।

पड गई दिलो में फूंट क्या विजोग पड गया ।
पृथ्वी पे चार खूंट एक सोग पड गया ।।
सर नगू[3] है शेशनाग !
जाग सोज़े - इश्क जाग ।।

तूने आख बद की कायनात[4] सोगई ।
हुस्ने - खुदपसद[5] की दिन से रात हो गई ।।
ज़र्द पड गया सुहाग !
जाग सोज़े-इश्क जाग ।।

अब न वो सफर न सैर रहबरी न रहज़नी ।
कुछ नही तेरे 'वगैर दोस्ती न दुश्मनी ।।
अब लगाव है न लाग !
जाग सोज़े-इश्क जाग ।।

---

१ प्रेम-ज्वाला २ नये फितने ३ सिर झुकाये हुए ४ ब्रह्माड
५ आत्मप्रशसक सौंदर्य

ऐ मुगन्नी - ए - शबाब[1] जाग ख़्वाबे - नाज़ से ।
दिल-शिकस्ता है रबाब अर्सा - ए - दराज़ से[2] ॥

मर गये क़दीम[3] राग ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

तू जो चश्म वा करे[4] हर उमंग जाग उठे ।
आहो - नाला जाग उठे राग रंग जाग उठे ॥

जोग से मिले बिहाग ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

फिर उसी उठान से तीर उठे कमां उठे ।
सब्र की जबान से शोर अलग्रमां[5] उठे ।

जाग उठे दिलो के भाग ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

जाग ऐ नज़र फिरोज़[6] जाग ऐ नज़र नवाज़[7] ।
जाग ऐ ज़माना सोज़[8] जाग ऐ ज़माना साज़ ॥

जाग नींद को तियाग[9] ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

---

१. यौवन के गायक २. बहुत समय से ३. प्राचीन ४. आँख खोले ५ हे भगवान! ६,७. नजर को रौनक प्रदान करने वाला ८. जमाने को जला देने वाला ९. त्याग

गज़लें

हम में ही थी न कोई बात याद न तुमको आ सके।
तुमने हमे भुला दिया हम न तुम्हे भुला सके ॥
तुम ही न सुन सके अगर, किस्सा-ए-गम सुनेगा कौन ?
किस की ज़बा खुलेगी फिर, हम न अगर सुना सके ॥
होश मे आ चुके थे हम, जोश मे आ चुके थे हम।
बज्म का रग देख कर सर न मगर उठा सके ॥
रौनके-बज्म बन गये, लब पे हिकायतें[1] रही।
दिल मे शिकायतें रही, लब न मगर हिला सके ॥
शौके-विसाल[2] है यहा, लब पे सवाल है यहा।
किस की मजाल है यहा, हम से नज़र मिला सके ॥
ऐसा भी कोई नामाबर, बात पे कान धर सके।
सुन के यकीन कर सके, जा के उन्हे सुना सके ॥
अज्ज़ से[3] और बढ गई बरहमी-ए-मिज़ाजे-दोस्त[4]।
अब वो करे इलाजे-दोस्त जिसकी समझ मे आ सके ॥
अहले-ज़बा[5] तो हैं बहुत, कोई नही है अहले-दिल।
कौन तेरी तरह 'हफीज़' दर्द के गीत गा सके ॥

---

१. कथाए २ मिलने की उत्सुकता ३ नम्रता प्रकट करने से
४. महबूब के स्वभाव की कटुता ५ भाषाविज्ञ

ओ दिल तोड़ के जाने वाले दिल की बात बताता जा।
अब मैं दिल को क्या समझाऊँ मुझको भी समझाता जा॥
हां मेरे मजरूह तबस्सुम[1] खुश्क लबों तक आता जा।
फूल की हस्तो-बूद[2] यही है खिलता जा मुरझाता जा॥
मेरी चुप रहने की आदत जिस कारन बदनाम हुई।
अब वो हिकायत[3] आम हुई है, सुनता जा शरमाता जा॥
जीने का अरमान करूं या मरने का सामान करूं।
इश्क मे क्या होता है नासह[4], अक्ल की बात सुझाता जा॥
दोनों सगे-राहे-तलब[5] है राहनुमा भी मंजिल भी।
जौके-तलब! हर एक कदम पर दोनो को ठुकराता जा॥
आखिर तुझको भी मौत आई, खैर 'हफीज' खुदा हाफिज।
लेकिन मरते-मरते प्यारे वजहे-मर्ग[6] बताता जा॥

क्यो हिज्र[7] के शिकवे करता है क्यो दर्द के रोने रोता है।
अब इश्क किया है सब्र भी कर, इस मे तो यही कुछ होता है॥
आगाजे-मुसीबत[8] होता है, अपने ही दिल की शरारत से।
आँखो मे फूल खिलाता है, तलवो मे कांटे बोता है॥
अहबाब का[9] शिकवा क्या कीजे खुद जाहिरो-बातिन[10] एक नही।
लब ऊपर-ऊपर हंसते हैं, दिल अन्दर-अन्दर रोता है॥
मल्लाहो को इलज़ाम न दो, तुम साहिल वाले क्या जानो।
ये तूफां कौन उठाता है, ये कश्ती कौन डबोता है॥
क्या जानिये ये क्या खोयेगा, क्या जानिये ये क्या पायेगा?
मन्दिर का पुजारी जागता है, मस्जिद का नमाजी सोता है॥

---

१. घायल मुस्कान २. जीना-मरना ३. कहानी ४. उपदेशक
५. तलाश के मार्ग के पत्थर (बाधायें) ६. मृत्यु का कारण ७. विछोह
८ मुसीबत का आरम्भ ९. मित्रो का १०. भीतर बाहर

हुस्न पाबदे-रज़ा[1] हो, मुझे मन्जूर नही।
मैं कहू, तुम मुझे चाहो, मुझे मन्जूर नही॥
फिर कभी खब्ते-वफा[2] हो, मुझे मन्जूर नही।
फिर कोई दोस्त खफा हो, मुझे मन्जूर नही॥
जिस ने इस दौर के इन्सान किये हैं पैदा।
वही मेरा भी खुदा हो मुझे मन्जूर नही॥
हश्र के दिन मुझे सच कहने की तौफीक न दे।
कोई हगामा बपा हो, मुझे मन्जूर नही॥
हुस्न वाले मेरे कातिल है ये दावा है मेरा।
हुस्न वालो को सजा हो, मुझे मन्जूर नही॥
दोस्तो को भी मिले दर्द की दौलत या रब!
मेरा अपना ही भला हो मुझे मन्जूर नही॥
ऐ बुतो तुम पे अधाधुद मरे खल्के-खुदा[3]।
और खुदा देख रहा हो मुझे मन्जूर नहीं॥

---

१ इच्छा से आबद्ध २ वफा करने का उन्माद ३ दुनिया

फुटकर शेर

दीवानगी-ए-इश्क[1] के बाद, आ ही गया होश।
और होश भी वो होश कि दीवाना बना दे॥
हम खूने-जिगर पी के चले जायेगे साकी।
ले शीशा-ए-दिल[2] तोड दे पैमाना बना दे॥

◇ ◇ ◇

इश्क न हो तो दिल्लगी, मौत न हो तो खुदकुशी।
ये न करे तो आदमी आखिरे-कार क्या करे?

◇ ◇ ◇

हाय किस दर्द से की जब्त की तलकीन[3] मुझे।
हँस पड़े दोस्त जो मैंने कभी रोना चाहा।
आने वाले किसी तूफान का रोना रोकर।
नाखुदा[4] ने मुझे साहिल पे डवोना चाहा॥

◇ ◇ ◇

फ़रिश्ते को न मै शैतान समझा।
नतीजा ये कि बहकाया गया हूं॥
मुझे तो इस खबर ने खो दिया है।
सुना है मै कही पाया गया हूं॥

◇ ◇ ◇

हो गया जब इश्क हम-आगोशे-तूफाने-शबाब[5]।
अक़्ल बैठी रह गई साहिल पे शरमाई हुई॥

◇ ◇ ◇

अब इब्तिदा-ए-इश्क का आलम[6] कहां 'हफ़ीज'।
कश्ती मेरी डवो के वो दरिया उतर गया॥

◇ ◇ ◇

---

१. इश्क़ का दीवानापन २. दिल-रूपी शीशा ३. हिदायत ४. मांझी ५. यौवन के तूफान से बगलगीर ६. इश्क़ के प्रारंभ की स्थिति

ये खूब[1] क्या है, ये ज़िश्त[2] क्या है, बशर[3] की असली सरिश्त क्या है ?
वड़ा मज़ा हो तमाम चेहरे अगर कोई बेनकाब कर दे ।।
तेरे करम[4] के मुआमले को तेरे करम ही पे छोडता हू ।
मेरी खतायें शुमार कर ले मेरी सज़ा का हिसाब कर दे ।।

◇ ◇ ◇

मेरी ज़िंदगी पर तअज्जुब नही था ।
मेरी मौत पर उनको हैरानिया हैं ।।
नदामत हुई हश्र मे जिनके बदले ।
जवानी की दो-चार नादानिया हैं ।।
मेरा तजरुवा है कि इस ज़िन्दगी मे ।
परेशानिया ही परेशानिया है ।।

◇ ◇ ◇

है अज़ल की[5] इस गलत-बख्शी[6] पे हैरानी मुझे ।
इश्क लाफानी[7] मिला है ज़िन्न्दगी फानी[8] मुझे ।।

◇ ◇ ◇

मेरे डूब जाने का बाइस[9] तो पूछो ।
किनारे से टकरा गया था सफीना[10]।।

◇ ◇ ◇

क्या नाखुदा[11] बगैर कोई डूबता नही ।
मुझको मेरे खुदा से पशेमा[12] न कीजिये ।।

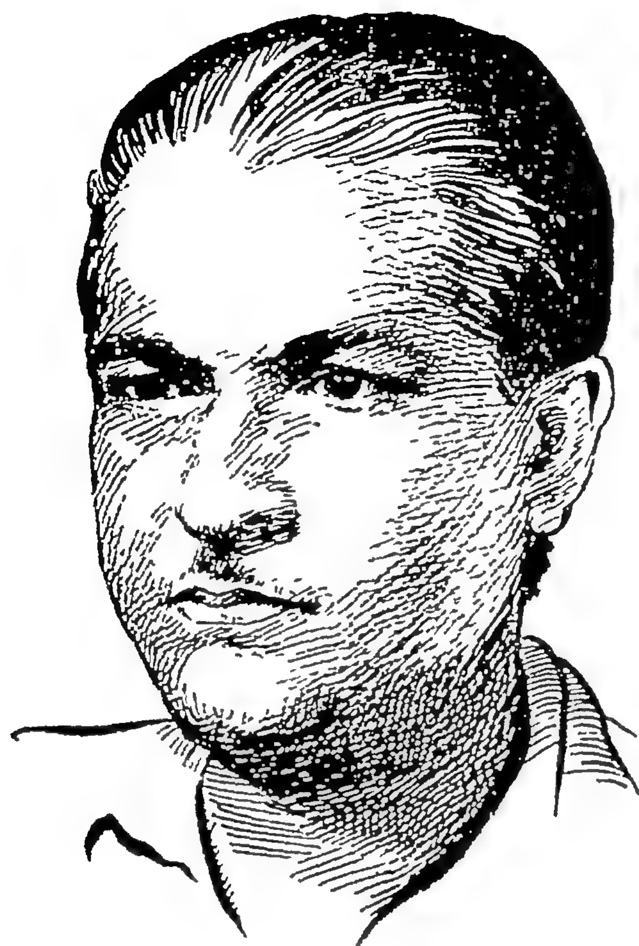
◇ ◇ ◇

गुज़रे हुए ज़माने का अब तज़करा[13] ही क्या ।
अच्छा गुज़र गया, वहुत अच्छा गुजर गया ।।

◇ ◇ ◇

---

१ अच्छा २ बुरा ३ आदमी ४ कृपा ५ सृष्टि के पहले दिन की ६ अनुपयुक्त दान ७ अमर ८ नश्वर ९ कारण १० नाव ११ माझी १२ लज्जित १३ ज़िक्र



'अख्तर' शीरानी

मेरा हर शेर है 'अख़्तर' मेरी ज़िन्दा तस्वीर
देखने वालों ने हर लफ़्ज़ मे देखा है मुझे

परिचय

'अख्तर' शीरानी का नाम जबान पर आते ही 'गेटे' का वह कथन याद जाता है जिसमे इस जर्मन दार्शनिक ने प्रेम तथा वेदना की भावना का क्र करते हुए कहा था कि प्रेम और वेदना की भावना विश्व की प्रत्येक वस्तु विद्यमान है, लेकिन इसका सजीव रूप नारी है।

जहाँ तक नारी को और उसके कारण प्रेम तथा वेदना को अपना काव्य-श्रय बनाने का प्रश्न है, गेटे के इस 'सजीव रूप' को हम वर्डज़वर्थ के यहा सी' के रूप मे देखते हैं, कीट्स की कविता मे वह 'फैनी ब्रौनी' बनकर ारे सामने आता है और उर्दू का सब से बडा रोमासवादी शायर 'अख्तर' ..रानी उसे 'सलमा' कहकर पुकारता है।

उर्दू के कुछ समालोचको की दृष्टि मे 'अख्तर' की 'सलमा' भी वर्डज़वर्थ की 'लूसी' और कीट्स की 'फैनी' की तरह कवि की कल्पित प्रेयसी है—एक पवित्र परछाईं, एक अलौकिक सुन्दरी—क्योकि 'सलमा' के अतिरिक्त 'अख्तर' के यहाँ 'रेहाना', 'अज़रा,' 'शीरी', 'शमसा' इत्यादि कई नायिकाओ का उल्लेख मिलता है और समान मधुरता और भावुकता के साथ मिलता है।

'अख्तर' अपनी 'सलमा' की प्रशसा करते हुए कहता है

> बहारे-हुस्न[1] का तू गुन्चा-ए-शादाब[2] है सलमा,
> तुझे फ़ितरत ने अपने दस्ते-रगी से[3] सवारा है,
> बहिश्ते-रगो-बू का[4] तू सरापा इक नज़ारा है,

१. सौन्दर्य के वसन्त २. पल्लवित कलि ३ रगीन हाथो से ४. रग और सुगधि के स्वर्ग का

तेरी सूरत सरासर पैकरे-महताब[1] है सलमा,
तेरा जिस्म इक हुजूमे-रेशमो-कमख्वाब[2] है सलमा,
शबिस्ताने-जवानी[3] का तू इक जिन्दा सितारा है,
तू इस दुनिया मे बहरे-हुस्ने-फितरत[4] का किनारा है,
तू इस ससार मे इक आसमानी ख्वाब है सलमा।

और 'अजरा' के सम्बन्ध मे वह कहता है :

परी-ओ-हूर की तस्वीरे-नाजनी 'अजरा'।
शहीदे-जलवा-ए-दीदार[5] कर दिया तू ने।
नजर को महशरे-अनवार[6] कर दिया तू ने॥
बहारो-ख्वाब की तनवीरे-मरमरी[7] 'अजरा'।
शराबो-शेर की तफसीरे-दिलनशी[8] 'अजरा'।

और 'रेहाना' के बारे मे लिखता है .

उसे फूलो ने मेरी याद मे बेताब देखा है।
सितारो की नजर ने रात भर बेख्वाब देखा है॥
वो शम्मए-हुस्न[9] थी, पर सूरते-परवाना[10] रहती थी।
यही वादी है वो हमदम[11] जहाँ 'रेहाना' रहती थी॥

लेकिन 'अख्तर' के एक परम मित्र हकीम नय्यर वास्ती ने अभी हाल मे 'अख्तर व सलमा' नामक एक पुस्तक मे बडे विस्तार से बताया है कि 'सलमा' शायर की कोई कल्पित प्रेयसी नही बल्कि इसी ससार की एक जीवित सुन्दरी थी जो लाहौर मे रहती थी और जिससे शायर को असीम प्रेम था और जो स्वय भी उसे जी-जान से चाहती थी। दोनो मे बराबर पत्र-व्यवहार होता था, लेकिन सामाजिक प्रतिबन्धो के कारण वे जीवन मे केवल दो-तीन बार ही एक दूसरे से मिल पाये; और जब 'सलमा' का विवाह हो गया और वह लाहौर से गुजरात चली गई तो शायर के लिए उसका विछोह असह्य हो उठा। वह दिन-रात शराब के नशे मे गर्क रहने लगा और उसके दिल के तारो से ऐसे नगमे फूट निकले जो उर्दू की रोमासवादी शायरी के लिए अन्तिम शब्द बन गये।

वास्तविकता जो भी हो, इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि 'सलमा'

---

१. चांद की मूर्ति २. रेशम का ढेर ३. जवानी के शयनागार ४ प्रकृति के सौन्दर्य के सागर का ५. दर्शन के जलवे का शहीद ६. प्रलयक्षेत्र की ज्योति ७. मरमरी आलोक ८. हृदय-स्पर्शी व्याख्या ९. सौन्दर्य का दीपक १०. पतगे की तरह ११. साथी

परिचय

'अख्तर' शीरानी का नाम जबान पर आते ही 'गेटे' का वह कथन याद आ जाता है जिसमे इस जर्मन दार्शनिक ने प्रेम तथा वेदना की भावना का जिक्र करते हुए कहा था कि प्रेम और वेदना की भावना विश्व की प्रत्येक वस्तु मे विद्यमान है, लेकिन इसका सजीव रूप नारी है।

जहाँ तक नारी को और उसके कारण प्रेम तथा वेदना को अपना काव्य-विषय बनाने का प्रश्न है, गेटे के इस 'सजीव रूप' को हम वर्ड्सवर्थ के यहा 'लूसी' के रूप मे देखते हैं, कीट्स की कविता मे वह 'फैनी ब्रौनी' बनकर हमारे सामने आता है और उर्दू का सब से बडा रोमासवादी शायर 'अख्तर' शीरानी उसे 'सलमा' कहकर पुकारता है।

उर्दू के कुछ समालोचकों की दृष्टि मे 'अख्तर' की 'सलमा' भी वर्ड्सवर्थ की 'लूसी' और कीट्स की 'फैनी' की तरह कवि की कल्पित प्रेयसी है—एक पवित्र परछाई, एक अलौकिक सुन्दरी—क्योकि 'सलमा' के अतिरिक्त 'अख्तर' के यहाँ 'रेहाना', 'अजरा,' 'शीरी', 'शमसा' इत्यादि कई नायिकाओ का उल्लेख मिलता है और समान मधुरता और भावुकता के साथ मिलता है।

'अख्तर' अपनी 'सलमा' की प्रशसा करते हुए कहता है

बहारे-हुस्न[1] का तू गुन्चा-ए-शादाब[2] है सलमा,
तुझे फितरत ने अपने दस्ते-रगी से[3] सवारा है,
बहिश्ते-रगो-बू का[4] तू सरापा इक नजारा है,

१ सौन्दर्य के वसन्त २. पल्लवित कलि ३ रगीन हाथो से ४. रग और सुगधि के स्वर्ग का

तेरी सूरत सरासर पैकरे-महताब[1] है सलमा,
तेरा जिस्म इक हुजूमे-रेशमो-कमख्वाब[2] है सलमा,
शबिस्ताने-जवानी[3] का तू इक ज़िन्दा सितारा है,
तू इस दुनिया मे बहरे-हुस्ने-फितरत[4] का किनारा है,
तू इस संसार मे इक आसमानी ख्वाब है सलमा।

और 'अज़रा' के सम्बन्ध मे वह कहता है:

परी-ओ-हूर की तस्वीरे-नाज़नी 'अज़रा'!
शहीदे-जलवा-ए-दीदार[5] कर दिया तू ने।
नज़र को महशरे-अनवार[6] कर दिया तू ने॥
बहारो-ख्वाब की तनवीरे-मरमरी[7] 'अज़रा'।
शराबो-शेर की तफसीरे-दिलनशी[8] 'अज़रा'!

और 'रेहाना' के बारे मे लिखता है.

उसे फूलो ने मेरी याद मे बेताब देखा है।
सितारो की नज़र ने रात भर बेख्वाब देखा है॥
वो शम्मए-हुस्न[9] थी, पर सूरते-परवाना[10] रहती थी।
यही वादी है वो हमदम[11] जहाँ 'रेहाना' रहती थी॥

लेकिन 'अख्तर' के एक परम मित्र हकीम नय्यर वास्ती ने अभी हाल मे 'अख्तर व सलमा' नामक एक पुस्तक मे बडे विस्तार से बताया है कि 'सलमा' शायर की कोई कल्पित प्रेयसी नही बल्कि इसी ससार की एक जीवित सुन्दरी थी जो लाहौर मे रहती थी और जिससे शायर को असीम प्रेम था और जो स्वयं भी उसे जी-जान से चाहती थी। दोनो मे बराबर पत्र-व्यवहार होता था, लेकिन सामाजिक प्रतिबन्धो के कारण वे जीवन मे केवल दो-तीन बार ही एक दूसरे से मिल पाये; और जब 'सलमा' का विवाह हो गया और वह लाहौर से गुजरात चली गई तो शायर के लिए उसका विछोह असह्य हो उठा। वह दिन-रात शराब के नशे मे ग़र्क रहने लगा और उसके दिल के तारो से ऐसे नग़मे फूट निकले जो उर्दू की रोमांसवादी शायरी के लिए अन्तिम शब्द बन गये।

वास्तविकता जो भी हो, इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि 'सलमा'

---

१. चाँद की मूर्ति २. रेशम का ढेर ३. जवानी के शयनागार ४ प्रकृति के सौन्दर्य के सागर का ५. दर्शन के जलवे का शहीद ६ प्रलयक्षेत्र की ज्योति ७. मरमरी आलोक ८ हृदय-स्पर्शी व्याख्या ९ सौन्दर्य का दीपक १०. पतंगे की तरह ११ साथी

'अख्तर' की शायरी का कलेवर भी है और आत्मा भी। वह प्राचीन शायरो की रहस्यमय प्रेमिकाओ के विपरीत इसी ससार की नारी है। उसकी छाती मे पत्थर की वजाय दिल है, दिल मे कोमल भावनायें हैं, जिसे शायर से प्रेम है और जो अपना प्रेम प्रकट भी करती है। लेकिन कभी-कभी समाज उसे आज्ञा नही देता कि वह शायर के प्रेम का उत्तर प्रेम से दे सके। वात विल्कुल सीधी-सादी मालूम होती है और प्राचीन तथा आधुनिक काल के अनगिनत उर्दू शायर इस विषय पर वहुत कुछ लिख चुके हैं, लेकिन जिस भावावेग, प्रवाह और रमणीय ढग से 'अख्तर' ने इन अनुभवो एव अनुभूतियो को शायरी के साँचे मे ढाला है, उर्दू का प्राचीन अथवा नवीन कोई शायर उस तक नही पहुँच पाता।

मैंने जो 'अख्तर' को उर्दू का सबसे वडा रोमासवादी शायर कहा है तो मैं समझता हूँ इस सम्वन्ध मे मैंने किसी अतिशयोक्ति से काम नही लिया। रोमास-वाद एक वहुत विशाल तथा उलझी हुई धारणा है और प्रत्येक रोमास-वादी कवि रोमास के क्षेत्र मे रहते हुए भी एक दूसरे से अलग हो जाता है। कोई प्रेमिका की कल्पना-भर से ही आनन्दित हो लेता है, कोई उसके शरीर को छूना वल्कि उसे इस प्रकार अपने साथ सटाना चाहता है कि दोनो एक दूसरे मे विलीन होकर रह जायें। कोई रोमास के नाम पर प्रकृति पर आसक्त हो जाता है। यही भेद किसी को 'शैले' वनाता है, किसी को 'वर्डज़वर्थ', किसी को 'कीट्स' और किसी को 'वायरन', लेकिन विभिन्न सामाजिक स्थितियो तथा विभिन्न व्यक्तिगत प्रवृत्तियो के होते हुए भी समस्त रोमासवादी कवियो मे वहुत से अश समान होते है, और एक सीमा तक वे एक-सी वातें करते नज़र आते है। 'अख्तर' शीरानी के रोमासवाद को 'दाग', 'शाद' अज़ीमावादी और अज़मत उल्ला 'अज़मत' के रोमासवाद से घनिष्ट सम्वन्ध है। इन शायरो ने भी अपने-अपने समय मे, अपने विशेष ढग से रोमास की वाँसुरी वजाई। विशे-पत. अज़मत अल्ला 'अज़मत' ने जिस प्रकार परम्परागत गज़ल से विद्रोह किया और वहुत से हिन्दी छन्दो मे गीत और रोमान्टिक कविताए लिखी और उर्दू शायरी को पहली वार (Sonnet) से परिचित कराया, उर्दू शायरी उसके इस उपकार को कभी नही भूल सकती। 'अख्तर' ने अपने इन पूर्वगामियो की इन परम्पराओ को न केवल आगे वढ़ाया है वल्कि उन्हे नई शैली और नया अर्थ पहनाया है, और वह जिस निडरता और अचूकता के साथ खुलकर सामने आया है उर्दू शायरी मे उसका उदाहरण मिलना कठिन है। 'हाली' ने अपने 'मुक़द्दमा शेरो-शायरी' मे (जिसकी तुलना हम अग्रेजी साहित्य के 'Lyrical Ballads'

के Preface से कर सकते हैं। प्राचीन परम्परागत शायरी के विरुद्ध यथार्थवाद के लिए बहुत-सी गिरहे खोली। महबूब के लिए पुल्लिग [फारसी ग़ज़ल के प्रभाव के कारण उर्दू शायरी मे महबूब (प्रेयसी) के लिए पुल्लिग का प्रयोग होता था] को अस्वाभाविक कहकर उसका खडन किया। लेकिन स्वय उन्होंने भी इसका कोई उदाहरण प्रस्तुत नही किया। (सभव है इसका कारण यह हो कि प्रेम तथा रोमास उनकी शायरी का क्षेत्र नही था।) अख्तर' शीरानी उर्दू का सब से पहला शायर है जिसने प्रेयसी को प्रेयसी के रूप मे देखा अर्थात् उस के लिए स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग किया। इतना भर ही नही, उसने बडे साहस के साथ बार-बार उसका नाम भी लिया।

रूढियो के प्रति इस विद्रोह द्वारा न केवल उर्दू शायरो के दिलो की झिझक दूर हुई और उर्दू शायरी के लिए नई राहे खुली, उर्दू शायरी को एक नई शैली और नया कोण भी मिला। उर्दू की रोती-बिसूरती शायरी मे ताज़गी और रगीनी आई। और मैं 'अख्तर' को उर्दू का सब से बडा रोमासवादी शायर इस-लिए भी कहता हूँ कि सभवत आने वाले युग मे भी कभी उस जैसा रोमास-वादी शायर उत्पन्न नही होगा। 'उन जैसा' से मेरा भाव केवल रोमासवादी शायर से है।

'अख्तर' की शायरी केवल यौवन के सौंदर्य और उसके लालित्य की शायरी है। सुन्दर रगो और सुन्दर सपनो की शायरी। वह पूरे संसार को अपने विचारो तथा भावनाओ मे रगा हुआ देखता है। प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन करते हुए उसे अनुभव होता है कि प्रकृति के दृश्य उसकी आत्मगत् (Subjective) भावनाओ से प्रभावित हैं। यदि वह उदास है तो ओस मे नहाई हुई कलियाँ उसे उदास नजर आती है और यदि वह प्रसन्न है तो अधखिले पुष्प उसे मुस्कराते हुए दिखाई देते हैं। सामाजिक परिस्थितियो से अलग-थलग उसकी शायरी एक ऐसे निश्चिन्त तरुण का भावावेग प्रस्तुत करती है जो अधे कामदेव के नेतृत्व मे केवल सौन्दर्य और प्रेम के राग अलापता है। वह नारी की सुन्दरता पर केवल आसक्त ही नही, उसका पुजारी भी है और उस पर मर-मिटने को अपना सौभाग्य समझता है।

और इसीलिए मैं 'अख्तर' शीरानी को उर्दू का सब से बड़ा रोमानवादी शायर कहता हूँ क्योंकि नारी को और उसके कारण प्रेम और रोमास को

अपना काव्य-विषय बनाने वाले आधुनिक उर्दू शायर,आत्मगत् (Subjective) अनुभूतियो के साथ-साथ परगत् (Objective) प्रेरणाओं को भी अपने सम्मुख रखते हैं। सामाजिक प्रतिबन्धो से घबराकर ससार से निकल भागने की अपेक्षा वे सामाजिक प्रतिबन्धो को तोडने पर उतारू हैं, और इस सिलसिले मे अंधे कामदेव तक को आखें प्रदान कर रहे हैं।

'अख्तर' शीरानी जिसका असल नाम मुहम्मद दाऊदखा था, ४ मई १६०५ को टोक राज्य मे पैदा हुआ। वही कुरान की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। बाद मे उर्दू की प्रारम्भिक पुस्तकें अपनी चची से पढ़ी और फिर मौलवी अहमद जमा और साविर अली 'शाकिर' से फारसी की शिक्षा प्राप्त की। 'अख्तर' के कथनानुसार जब वह 'शाकिर' साहब का शिष्य था तो उन्ही दिनो उसमे काव्य-प्रवृत्ति उत्पन्न हुई थी।

सन् १६२० मे जब 'अख्तर' के पिता हाफिज महमूद खा शीरानी, जो अपने समय के एक विख्यात बुद्धिजीवी थे, ओरियटल कालेज लाहौर मे फारसी के प्रोफैसर नियुक्त हुए तो 'अख्तर' भी उनके साथ लाहौर चला आया। अपनी एकमात्र और लाडली सतान होने के कारण हाफिज साहब 'अख्तर' को उच्च शिक्षा दिलाने के इच्छुक थे और इसके लिए अपनी ओर से उन्होंने भरसक प्रयत्न भी किया, परन्तु लाहौर की साहित्यिक बैठको और काव्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति ने 'अख्तर' को 'मुन्शी फाजिल' से आगे नही बढ़ने दिया, और अपनी उस छोटी सी आयु मे ही 'अख्तर' को अपनी नज्मो पर इतनी प्रशसा मिली कि भविष्य का यह महान रोमासवादी शायर घर वालो के कडे विरोध के बावजूद शिक्षा से विमुख हो शायरी के मैदान मे कूद पडा।

उन्ही दिनो कुछ समय तक उसने उर्दू की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'हुमायूँ' के सम्पादन का काम किया। फिर १६२५ मे 'इन्तखाब' का सम्पादन किया। १६२८ मे 'खयालिस्तान' निकाला और १६३१ मे 'रोमान' जारी किया और उसके बाद कुछ समय तक मौलाना ताजवर नजीबाबादी (जिनसे शुरू-शुरु मे 'अख्तर' ने अपनी कविताओ पर सशोधन भी लिया था) की मासिक पत्रिका 'शाहकार' का सम्पादन किया।

इन पत्रिकाओ के अतिरिक्त 'अख्तर' ने अपनी कई पुस्तके, उदाहरणत गद्य मे 'जुहाक', 'आईना-खाने मे' और 'धडकते दिल' और पद्य मे 'फूलो के

गीत', 'नगमा-ए-हरम', 'सुवहे-वहार', 'अखतरिस्तान', 'लाला-ए-तयूर', 'तयूरे-आवारा', 'शहनाज़' और 'शहरूद' यादगार छोड़ी ।

यादगार छोडी—इसलिए कि आज 'अख्तर' हमारे बीच नही है और अपनी रचनाओ के साथ-साथ वह स्वय भी हमारे लिए स्मृतिमात्र रह गया है। ६ सितम्बर १९४८ को उर्दू के इस महान रोमासवादी शायर ने वडी दयनीय स्थिति मे कुछ समय तक एक भयकर रोग मे ग्रस्त रहने के वाद लाहौर के एक अस्पताल मे दम तोड दिया ।

ऐ इश्क हमें बर्बाद न कर !

ऐ इश्क न छेड आ-आके हमें, हम भूले हुओ को याद न कर,
पहले ही वहुत नाशाद[1] हैं हम, तू और हमे नाशाद न कर,
किस्मत का सितम ही कम तो नही ये ताज़ा सितम ईजाद न कर,
यूं जुल्म न कर बेदाद न कर,
ऐ इश्क हमे बर्बाद न कर !

जिस दिन से मिले हैं दोनो का सब चैन गया आराम गया,
चेहरो से वहारे-सुवह गई आखो से फरोगे-शाम[2] गया,
हाथो से खुशी का जाम छुटा होटो से हसी का नाम गया,
गमगी न बना नाशाद न कर,
ऐ इश्क हमे वर्वाद न कर !

रातो को उठ-उठ रोते हैं, रो-रो के दुआयें करते हैं,
आखो में तसव्वुर[3] दिल में खलिश[4] सर धुनते आहें भरते हैं,
ऐ इश्क, ये कैसा रोग लगा जीते हैं न ज़ालिम मरते हैं,
ये जुल्म तू ऐ जल्लाद न कर,
ऐ इश्क हमे वर्वाद न कर !

ये रोग लगा है जव से हमे, रजीदा हू मैं बीमार है वो,
हर वक्त तपिश, हर वक्त खलिश वेख्वाव[5] हू मै वेदार[6] है वो,
जीने से इधर वेज़ार हू मैं मरने पे उधर तैयार है वो,
और ज़ब्त कहे फर्य्याद न कर,
ऐ इश्क हमें वर्वाद न कर !

---

१. दुखी २. सध्या की चमक-दमक ३. कल्पना ४. पीडा ५-६ नीद-रहित

बेदर्द ज़रा इन्साफ तो कर इस उम्र मे और मगमूम है वो,
फूलों की तरह नाज़ुक है अभी तारो की तरह मासूम है वो,
ये हुस्न सितम, ये रंज गज़ब, मजबूर हूं मैं मज़लूम है वो,
मज़लूम पे यूं बेदाद न कर,
ऐ इश्क़ हमे बर्बाद न कर !

ऐ इश्क खुदा-रा[1] देख कही वो शोखे-हज़ी[2] बदनाम न हो,
वो माहे-लका[3] बदनाम न हो, वो ज़ोहरा-जबी[4] बदनाम न हो,
नामूस[5] का उसके पास[6] रहे, वो पर्दानशी बदनाम न हो,
उस पर्दानशी को याद न कर,
ऐ इश्क हमे बर्बाद न कर !

वो राज़ है ये गम आह जिसे पा जाये कोई तो खैर नही,
आंखो से जब आंसू बहते है, आ जाये कोई तो खैर नही,
ज़ालिम है ये दुनिया दिल को यहां भा जाये कोई तो खैर नही,
है जुल्म मगर फ़र्य्याद न कर,
ऐ इश्क हमे बर्बाद न कर !

दुनिया का तमाशा देख लिया, गमगीन सी है बेताब सी है,
उम्मीद यहां इक वहम सी है, तसकीन यहां इक ख्वाब सी है,
दुनिया में खुशी का नाम नही, दुनिया मे खुशी नायाब सी है,
दुनिया मे खुशी को याद न कर,
ऐ इश्क हमे बर्बाद न कर !

---

१ भगवान के लिए २. यौवन-मस्त चपल युवती ३. चाद सी सुन्दरी
४. सितारो सी सुन्दरी ५. शोक-नाज ६. खयाल

नन्हा क़ासिद

तेरा नन्हा सा कासिद, जो तेरे खत लेके आता था।
न था मालूम उसे किस तरह के पैग़ाम लाता था॥
समझ सकता न था वो खत मे कैसे राज़ पिनहा हैं।
हुरूफे - सादा में[1] किस हश्र[2] के अदाज़ पिनहा हैं॥
उसे क्या इल्म इन रगी लिफाफो मे छुपा क्या है?
किसी महवश[3] का इनको भेजने से मुद्दआ क्या है?
मगर मुझको खयाल आता है अक्सर उस ज़माने मे,
कि उसकी हैरते-तिफ्ली[4] है क्यो गुम इस फसाने मे?
वो बा-ईं-कमसिनी[5] क्या ये न दिल मे सोचता होगा?
कि बाजी ने हमारी अपने खत मे क्या लिखा होगा?
और आखिर वो उसी को नामा[6] लिखकर भेजती क्यो है?
"कभी भेजा तो भेजा लेकिन अक्सर भेजती क्यो हैं?"
वो पहले से ज़ियादा भाई को क्यो प्यार करती हैं?
"लिफाफा देके लुत्फे-खास[7] का इज़हार करती हैं॥"
फिर ऐसे 'अजनबी' पर उसकी बाजी 'मेहरबा' क्यो हैं?
अगर हैं भी तो घर वालो से ये बातें निहा[8] क्यो हैं?
और उसके शुबा की इससे भी तो ताईद[9] होती है।
छुपाकर खत को ले जाने की क्यो ताकीद होती है?
ये नौखेज़[10] अजनबी जाने कहा से अक्सर आता है?
जब आता है तो बाजी की तरह खत लिखके लाता है॥

---

१ सादा अक्षरो मे २ कयामत ३ चाद जैसी अनुपम सुन्दरी ४ वाल्य-आश्चर्य ५ वाल्यावस्था के वावजूद ६ पत्र ७. विशेप स्नेह ८ गुप्त ९. समर्थन १०. नौजवान

अज़ीज़ों की तरह ये क्यों मकां मे आ नही सकता ?
जब उससे पूछता है वो, उसे समझा नही सकता ॥
खिलौने देके उसको मुस्करा देता है वो अक्सर ।
और एक हल्का सा थप्पड़ भी लगा देता है वो अक्सर ॥
तेरे क़ासिद के ये अफ्कार[1] दिल को गुदगुदाते थे ।
और अपने भोलेपन से मेरे जज़्बों को हँसाते थे ॥
नही मौक़ूफ़[2] उन्ही अय्याम पर[3] जब भी खयाल आया ।
तसव्वुर[4], तेरे बाद उसका भी नक़्शा सामने लाया ॥
मगर आज इस तरह देखा है वो नक़्शे-हसी मैंने ।
कि रख दी खाके-हैरत पर[5] मुहब्बत की जबी[6] मैने ॥
वही नन्हा-सा क़ासिद नौजवां होकर मिला मुझको ।
ज़माने के तगय्युर[7] ने परीशां कर दिया मुझको ॥
जुनूने-इब्तिदा - ए - इश्क ने[8] करवट सी ली दिल मे ।
पस-अज़-मुद्दत[9] ये लैला आगई फिर अपने महमिल[10] मे ॥
तेरे क़ासिद से मिलते वक़्त मुझको शर्म आती थी ।
मगर उसकी निगाहों में शरारत मुस्कराती थी ॥
शरारत का ये नज़्ज़ारा मेरी हैरत का सामां[11] था ।
कि इस पर्दे के अन्दर तेरा राज़े-इश्क़ उरियां[12] था ॥

---

१. विचार २. सीमित ३. दिनो पर ४. कल्पना ५ आश्चर्य की खाक (आश्चर्य के पैरो) पर ६. माथा ७ परिवर्तन ८. प्रेम की शुरुआत के उन्माद ने ९. बहुत समय के बाद १०. कजावा (ऊट की काठी) ११. सामान १२. नग्न (स्पष्ट)

आज की रात

कितनी शादाब[१] है दुनिया की फज़ा[२] आज की रात !
कितनी सरशार[३] है गुलशन को हवा आज की रात !
कितनी फ़य्याज़[४] है रहमत[५] की घटा आज की रात !
किस कदर खुश है खुदाई से खुदा आज की रात !
कि नज़र आयेगी वो माहलका[६] आज की रात !

आज क्या बात है दुनिया के नज्ज़ारे खुश है ?
बाग के फूल, सरे-चर्ख़[७] सितारे खुश है।
एक बेनाम सी सरमस्ती के मारे खुश है।
एक मे खुश नही जितने भी हैं सारे खुश हैं।
है खुशी चार तरफ नग्मासरा[८] आज की रात !

गायबाना जो हमे नामे[९] लिखा करती थी।
दूर से हम पे जो दिल अपना फिदा करती थी।
दादे-अशआर[१०] जो गुमनाम दिया करती थी।
होके बेपर्दा जो पर्दे मे रहा करती थी।
सामने होगी वही शोख़-अदा[११] आज की रात !

दास्ताने - दिले - बेताब[१२] सुनायेंगे उन्हे।
आज रोयेंगे गले मिलके रुलायेंगे उन्हे।
खुद ही फिर रोने पे हस देंगे, हसायेंगे उन्हें।
और जुरंत की तो सीने से लगायेंगे उन्हें।
नित नये जज्बो की है नश्वोनुमा[१३] आज की रात !

दिल की रग-रग मे है बेताब मुहब्बत उसकी।
आंख के पर्दे पे लहराती है सूरत उसकी।

---

१ पल्लवित २ वातावरण ३ उन्मत्त ४ उदार ५ अनुकम्पा ६ चाद जैसी अनुपम सुन्दरी ७ आकाश पर ८ गीत गा रही है ९ पत्र १० शेरो पर दाद ११ चचल अदाओ वाली (सुन्दरी) १२ बेचैन दिल का वृत्तात १३ बढोतरी

खलवते - रूह मे[1] आबाद है उल्फत उसकी।
मेरे जज्बात पे तारी[2] है लताफ़त[3] उसकी।
और कुछ याद नही इसके सिवा आज की रात !
लेकिन इज़हारे - खयालात[4] करेंगे क्योंकर ?
शर्म आती है मुलाकात करेंगे क्योकर ?
बात करनी है मगर बात करेंगे क्योकर ?
ख़त्म ये ख्वाब की सी रात करेंगे क्योंकर ?
आह ये आज की ये ख्वाबनुमा[5] आज की रात !
ऐ दिल ऐसा न हो कुछ बात बनाये न बने।
हाले - दिल जो भी सुनाना है सुनाये न बने।
पास आयें तो मगर पास बिठाये न बने।
शर्म के मारे उन्हे हाथ लगाये न बने।
कि तसव्वुर[6] से भी आती है हया[7] आज की रात !
यूं तो हर तरह अदब[8] मद्दे - नज़र रखना है।
हसरते - दिल का[9] लिहाज़ आज मगर रखना है।
बेखुदी ! देख, तुझे मेरी ख़बर रखना है।
नाजनीं क़दमो पे[10] यूं नाज़ से सर रखना है।
कि तड़प उट्ठे दिले-अर्ज़ो-समां[11] आज की रात !
हम मे कुछ जुर्रते-गोयाई[12] भी होगी कि नही ?
हिम्मते - नासियाफ़र्साई[13] भी होगी कि नही ?
शर्म से दूर शिकेबाई[14] भी होगी कि नहीं ?
यूसुफे-दिल जुलेखाई भी होगी कि नही[15] ?
आज की रात उफ़, ओ मेरे खुदा आज की रात !

---

१. आत्मा के एकान्त मे २. छाई हुई ३. लालित्य, माधुर्य ४. विचारों का प्रकटीकरण ५. स्वप्निल रूपी ६. कल्पना ७ लज्जा ८. शिष्टाचार ९. दिल की हसरत का १०. (प्रेयसी के) सुकोमल पैरों पर ११. धरती तथा आकाश का हृदय १२. बोलने का साहस १३. माथा टेकने का साहस १४. जिक्र १५. जुलेखा के प्रेमी यूसुफ़ की ओर संकेत है कि तू प्यार कर सकेगा या नहीं ?

फुटकर शेर

मिट चले मेरी उमीदो की तरह हर्फ़[1] मगर।
आज तक तेरे ख़तो से तेरी ख़ुशबू न गई॥

◇ ◇ ◇

आज किस्मत से आई है बरसात की रात।
क्या बिगड जायेगा रह जाओ यही रात की रात॥

◇ ◇ ◇

वो इश्क-पेशा[2] हू मैं जिसके जवान नग्मे।
गाता है चान्दनी मे हर नौजवाने-सहरा[3]॥

◇ ◇ ◇

दर है न आस्ता[4] न हरम है न बुतकदा।
या रब मचल पडी है हमारी जबी[5] कहा?

◇ ◇ ◇

मुहब्बत इस तरह मालूम हो जाती है दुनिया को।
कि ये मालूम होता है, नही मालूम होती है॥

◇ ◇

तुम अपना आस्ता अच्छी तरह पहचान सकते हो।
हमे तो ये हमारी ही जबी मालूम होती है॥

◇ ◇ ◇

दो चाद हैं पहलू मे अब चाद कहे किस को?
साक़ी को अगर कह दें, पैमाने को क्या कहिये?

◇ ◇ ◇

एक मुहब्बत थी मिट गई या रब!
तेरी दुनिया मे अब धरा क्या है?

---

१ अक्षर २. प्रेमी ३ मरुस्थलो मे भटकने वाले नौजवान (प्रेमी) ४ दहलीज ५. माथा

दुनिया की सैर करने को ठहरे नही है हम ।
दम ले लिया है मज़िले-दुशवार[1] देखकर ॥

◇ ◇ ◇

उसके अहदे-शबाब[2] मे जीना ।
जीने वालो तुम्हे हुआ क्या है ?

◇ ◇ ◇

ज़िदगी की हकीकत, आह न पूछ ।
मौत की वादियों मे इक आवाज ॥

◇ ◇ ◇

उनकी सोहबत[3] का तसव्वुर[4] और हम ।
ज़िदगी धोखा थी कुछ दिन के लिए ॥

◇ ◇ ◇

मर गये हम आखिर को इस तरह भी क्या जीते ?
ज़िदगी का हर लम्हा मौत का फसाना था ॥

---

१. कठिन मज़िल २. यौवन-काल ३. संगत ४ कल्पना



अब्दुलहमीद 'अदम'

मैं मैकदे की राह से होकर गुज़र गया
वरना सफ़र हयात का काफ़ी तवील था



अबदुलहमीद 'अदम'

मैं मैकदे की राह से होकर गुज़र गया
वरना सफ़र हयात का काफ़ी तवील था

'अदम'

मेरी तलाश से मायूस लौटने वाले।
तेरी हुदूद मे[1] आकर तुझे पुकारूँगा ॥

'अदम' का यह शेर उन समालोचको के लिए एक चैलेंज है जो शायर की सीमाओ को जाने विना कुछ वधे-टिके नियमो की टोपी उसके सिर पर रखकर देखते हैं कि ठीक बैठती है या नही। उदाहरणत स्वय 'अदम' के सम्बन्ध मे यदि समालोचक को यह मालूम न हो कि वह बुरी तरह शराब पीता है और आठो पहर इस कोशिश मे रहता है कि उसका नशा उतरने न पाये तो प्रत्यक्ष है कि वह उसके .

कौन कौसर[2] तक मुसाफत[3] तै करे।
मैकदा[4] फ़िर्दौस[5] से नजदीक है ॥

इस प्रकार के शेरो को उस नखशिख के साथ नही देख सकता, जिन्हे शायर ने सवारने और जिलाने ही का नही अपनी आत्मा की आवाज बनाने का प्रयत्न किया है। इस 'मैकदे' के प्रेम ने 'अदम' को कही का नही रखा। उसकी पत्नी जिसे दूसरे महायुद्ध के दिनों मे वह तेहरान से व्याह कर लाया था उसके इसी 'मैकदे' के प्रेम के हाथो तग आकर उसे छोड गई। आपने विशेप रूप से उसी से मिलाने और उसके शेर सुनवाने के लिए अपने यहाँ कुछ मित्रो को निमत्रित

---

१. सीमाओ मे २. जन्नत मे बहने वाली शराब की एक नहर ३ सफ़र ४. शराबखाना ५ जन्नत

किया है। उसने आप से वायदा किया है कि वह ठीक सात बजे आपके यहाँ पहुँच जायेगा लेकिन सात के साढे सात, फिर आठ और फिर नौ बज गये लेकिन आपके माननीय अतिथि का कोई पता नही। आप परेशान हैं, आपके मित्र परेशान है, महफिल बर्खास्त हुआ चाहती है कि एक दोहरे बदन का व्यक्ति लड़खडाता-सभलता कमरे मे प्रवेश करता है और महफिल के वातावरण मे चारो ओर 'प्रश्नचिह्न' लटकता देखकर बडी उदासीनता से केवल इतना कहता है .

"आखिर पीना तो शराब ही थी। यहाँ क्या और वहाँ क्या ? मेरे कुछ दोस्त मिल गये थे और रास्ते मे शराबखाना था ·· ··"

यह 'मैकदा' या शराबखाना, जो हर स्थान पर उसके रास्ते की बाधा बन जाता है, उसका पूरा जीवन और पूरी शायरी है। यही से शुरू होती है और यहीं खत्म हो जाती है। और यही कारण है कि उसकी शायरी मे विविध विषयो का लगभग अभाव है और उसकी कुछ एक गजले तो एक-दूसरी की प्रतिध्वनि-सी मालूम होती है। वही शराब और साकी की स्तुति, ससार की प्रत्येक वस्तु के प्रति उदासीनता और शराब के प्याले को ससार की प्रत्येक वस्तु पर प्रधानता देने के सुन्दर बहाने। शब्द "सुन्दर बहाने" का प्रयोग मैंने किसी प्रकार के व्यग्य के लिये नही किया क्योकि उसके बहाने सचमुच बहुत सुन्दर हैं। आज का शायर यदि चाहे भी तो इस सामाजिक वास्तविकता से इन्कार नही कर सकता कि 'ग़मे-रोज़गार' (जीविका आदि जुटाने की सासारिक चिंताओ) के आगे ससार की समस्त चिन्तायें हथियार डाल देती है, लेकिन जरा 'अदम' के तेवर देखिये कि मदिरा-पान मे शरण लेने के लिये वह ग़मे-रोज़गार ही को दोषी ठहराता है ·

दी जिसने अहले-होश को[1] तरग़ीबे-मैकशी[2]।
मेरा ख़याल है कि ग़मे-रोज़गार था॥

यही नही, वह तो उसकी यहाँ तक लाज रखता है .

ग़रूरे-मैकशी[3] की कौन-सी मज़िल है ये साकी ?
खनक सागर[4] की आवाज़े-ख़ुदा[5] मालूम होती है॥

आधुनिक काल के इस मस्त-अलस्त शायर का जन्म जून १९०९ मे तलवडी

---

१. होश वालो को २. मदिरा-पान की प्रेरणा ३. मदिरा-पान के अभिमान ४. प्याला ५. ख़ुदा की आवाज़

मूसाखा (सरहद प्रान्त, पाकिस्तान) मे हुआ। बचपन, शिक्षा आदि के जानने की बहुत कोशिश करने पर भी मुझे केवल इतना मालूम हो सका है कि उसकी शिक्षा बी० ए० तक की है। पिछले दिनो एक इडो-पाकिस्तान मुशायरे के सिलसिले मे वह दिल्ली आया था और मेरा इरादा था कि उससे जी खोलकर बातें करूँगा और वह सब कुछ पूछ लूँगा जिसकी मुझे इस पुस्तक के लिए आवश्यकता थी, लेकिन जब मुशायरे मे तो क्या लाख ढूढ़ने पर वह पूरी दिल्ली मे भी कही नज़र न आया और केवल उस समय उसकी खबर मिली जब वह वापस कराची पहुँच चुका था तो प्रत्यक्ष है कि मुझे सुनी-सुनाई बातो का सहारा लेना पड़ा। इस प्रसग मे मुझे उसके एक मित्र और उर्दू के तरुण शायर नरेशकुमार 'शाद' से पर्याप्त सहायता मिली क्योकि दिल्ली मे एक 'शाद' ही था जिसे मालूम था कि 'अदम' सचमुच दिल्ली मे है। 'शाद' से मुझे मालूम हुआ कि अपनी नौकरी के बारे मे ('अदम' पाकिस्तान सरकार के आडिट एण्ड अकाउँट्स विभाग मे गजेटिड आफीसर है) बहुत होशियार और जिम्मेदार है। हाँ, यह अलग बात है कि किसी दिन यदि उसका दफ्तर जाने को जी न चाहे तो दफ्तर के अन्य कर्मचारी श्रद्धावश या न जाने किस कारण से उसका सारा काम स्वय ही कर देते हैं। कराची मे नियुक्त होने से पहले वह काफी समय तक रावलपिण्डी और लाहौर मे भी रह चुका है और स्वर्गीय 'अख्तर' शीरानी से उसकी गाढी छनती थी (शायद मदिरापान की साँझ के कारण)। अस्तु, उस 'अदम' मे जो अपनी शायरी मे नज़र आता है और उस 'अदम', मे जिसे उसके घनिष्ट मित्र जानते हैं, रत्ती बराबर फर्क नही है। अत उसके व्यक्तित्व और शायरी की इस प्रवृत्ति का यह समन्वय अपनी समस्त त्रुटियो और हीनताओ के बावजूद उस विशेष लक्षण का साधन बना जिसे आम परिभाषा मे "कवि की शुद्धहृदयता अथवा निर्मलता" कहा जाता है—अर्थात् कवि का वही बात कहना जो माँगे तागे की न होकर उसकी अपनी अनुभूतियों में से उत्पन्न होती है और सैद्धांतिक मतभेद के बावजूद अपने मे अपनी महानता मनवाने की क्षमता रखती है। एक शेर देखिये :—

साकी मेरे खुलूस[1] की शिद्दत[2] को देखना।
फिर आगया हूँ गर्दिशे-दौरा[3] को टालकर॥

---

१. शुद्धहृदयता २ आधिक्य ३ ससारचक्र।

लेकिन शुद्धहृदयता-मात्र से भी बात नहीं बनती। शायरी में बात बनाने के लिए शुद्धहृदयता के साथ-साथ और भी बहुत कुछ आवश्यक है। इस बोध की आवश्यकता होती है कि 'गर्दिशे-दौरां' को टालना उतना ही कठिन है जितना शायर ने उसे इस शेर में सहल बताया है। अतएव क्रियात्मक जीवन के प्रति अवहेलना तथा चिन्तन की कमी ने उसे अवसन्नतावादी शायर बना दिया और उसने अपने इर्द-गिर्द एक चारदीवारी खड़ी कर ली जिससे न वह स्वयं बाहर निकलना चाहता है और न यह चाहता है कि बाहर की गर्म हवा उसे लगे। लेकिन यहां फिर किसी व्यक्ति के चाहने या न चाहने का प्रश्न आ खड़ा होता है। और चूंकि कोई चाहे कितना ही बड़ा अवसन्नतावादी क्यों न हो आखिर को मनुष्य होता है और मनुष्य चाहे अपने गिर्द कितनी ऊँची और मज़बूत दीवारें खड़ी कर ले बाहर की गर्मी-सर्दी उसे ढूंढ ही लेती है, अत. जब 'अदम' ढूंढ लिया जाता है तो बेबसी के साथ ही नहीं, चौंकने पर वह अवश्य विवश हो जाता है :

कभी-कभी तो मुझे भी ख़याल आता है।
कि अपनी सूरते-हालात[1] पर निगाह करूं॥

और इस प्रकार जब वह उसी शुद्धहृदयता के साथ 'सूरते-हालात पर निगाह' करता है तो उसके कलम से :

ये अक़्ल के सहमे हुए बीमार इरादे।
क्या चारा-ए-नासाज़िये-हालात करेंगे[2] ?

ऐसे शेर निकलने लगते हैं और कभी-कभी तो वह 'सूरते-हालात' और 'नासाज़िये-हालात' पर सोचते-सोचते मदिरा-स्तुति की सीमा से निकलकर एक दम विचारक और दार्शनिक बन जाता है :

दूसरों से बहुत आसान है मिलना साक़ी।
अपनी हस्ती से मुलाकात बड़ी मुश्किल है॥

और

ज़ह्ने-फ़ितरत में थीं जितनी नाकशूदा उलझनें[3]।
एक मरकज़[4] पर सिमट आईं तो इन्सां बन गईं॥

---

१. स्थिति २. दुःखपूर्ण परिस्थितियों का उपाय ३ प्रकृति के मस्तिष्क में कभी न सुलझने वाली जितनी उलझनें थीं ४ केन्द्र

लेकिन ऐसे शेरों की उसके यहाँ अधिक सख्या नही है। अधिक सख्या उन्हीं शेरो की है जिनमे शायर को 'सूरते-हालात' पर सोचने से भय लगता है और यदि वह सोचता भी है तो यह कहकर चुप हो जाता है

अभी हवादिसे-दौरा[1] पे कौन ग़ौर करे ?
अभी तो महफिले-हस्ती[2] शराबखाना है॥

और यों आधुनिक उर्दू शायरी का यह मद्यप शायर उसी मार्ग का पथिक है जिस मार्ग को शताब्दियो पहले फारसी के अमर शायर, उमर ख़य्याम ने तराशा था और जिसे पार करके आज के शायर कही से कही पहुँच चुके हैं।

---

१ ससार-चक्र २ समार

ग़ज़लें

मैकदा[1] था चांदनी थी मैं न था।
इक मुजस्सिम[2] बेखुदी[3] थी मैं न था॥
इश्क जब दम तोडता था तुम न थे।
मौत जब सर धुन रही थी मैं न था॥
तूर[4] पर छेड़ा था जिस ने आप को।
वो मेरी दीवानगी थी मैं न था॥
वो हसीं बैठा था जब मेरे करीब।
लज़्ज़ते - हमसायगी[5] थी मैं न था॥
मैकदे के मोड़ पर रुकती हुई।
मुद्दतों की तिश्नगी[6] थी मैं न था॥
मैं और उस गुंचादहन की[7] आरज़ू।
आरज़ू की सादगी थी मैं न था॥
गेसुओं के[8] साये मे आराम - कश[9]।
सर-बरहना[10] ज़िन्दगी थी मैं न था॥
दैरो-काबा[11] मे 'अदम' हैरत-फरोश[12]।
दो जहां की बदज़नी[13] थी मैं न था॥

० ० ०

१. मधुशाला २ मूर्तिमान ३. आत्म-विस्मृति ४. एक पहाड का नाम जिस पर हज़रत मूसा ने खुदा से बातें की थी। ५. सामीप्य का आनन्द ६. प्यास ७. अधखिले फूल ऐसा सुन्दर मुंह रखने वाली की ८ केशो के ९. विश्रामकर्ता १०. नंगे सिर ११. मन्दिर और काबा १२. आश्चर्य फैलाने वाला १३ दुर्भावना (स्व)

सर रह गया है दोश पर औ दिल नहीं रहा।
क्या इस जहान मे कोई कातिल नही रहा?
ऐ चश्मे - यार[1] अब न तग़ाफुल[2] न इल्तफात[3]।
क्या मैं किसी सलूक के काबिल नही रहा?
ऐ नाख़ुदा[4]! सफ़ीने[5] का अब कोई ग़म न कर।
हम फर्ज़ कर चुके हैं कि साहिल नही रहा॥
पर्दा उठा कि अब मेरी मस्ती है मै नही।
जिस से तुझे हया[6] थी वो हायल[7] नहीं रहा॥
कुछ तो तेरे ख़ुलूस की ताज़ीम[8] थी 'अदम'।
वरना वो जान - बूझ कर ग़ाफिल नही रहा॥

◇ ◇ ◇

दिल है बडी ख़ुशी से इसे पायमाल कर।
लेकिन तेरे निसार[9] ज़रा देख-भाल कर॥
इतना तो दिलफरेब न था दामे-ज़िन्दगी[10]।
ले आए एतबार के साचे मे ढाल कर॥
साकी मेरे खुलूस की शिद्दत[11] को देखना।
फिर आगया हूं गर्दिशे-दौरा[12] को टाल कर॥
ऐ दोस्त तेरी ज़ुल्फे-परीशा[13] की खैर हो।
मेरी तवाहियो का न इतना ख़याल कर॥
लाया हूँ यूं बचा के हवादिस से[14] ज़ीस्त[15] को।
लाते हैं जैसे कोह[16] से चश्मा निकाल कर॥
थोडे से फासले में भी हायल[17] हैं लगज़िशें[18]।
साक़ी सभाल कर, मेरे साकी सभाल कर॥
हम से 'अदम' छुपाओ तो खुद भी न पी सको।
रक्खा है तुमने कुछ तो सुराही मे डालकर॥

---

१ मित्र की दृष्टि २ वेपरवाही ३ कृपादृष्टि (प्रेम) ४ मांझी ५ नाव ६ लाज ७ बाधक ८ आदर, सम्मान ९ वलिहारी १० जीवन का जाल ११ आधिक्य १२ ससार-चक्र १३ बिखरे केश १४ दुर्घटनाओ मे १५ जीवन १६ पहाड १७ बाधक १८ लडखडाहटें

जो लोग जान-बूझकर नादान बन गये ।
मेरा खयाल है कि वो इन्सान बन गये ॥
हम हश्र[1] मे गए थे मगर कुछ न पूछिये ।
वो जान-बूझकर वहां अनजान बन गये ॥
हसते हैं हमको देखकर अरबावे-आगही[2] ।
हम आपके मिज़ाज[3] की पहचान बन गये ॥
मंझधार तक पहुंचना तो हिम्मत की बात थी ।
साहिल के आस-पास ही तूफान बन गये ॥
इन्सानियत की बात तो इतनी है शेख़ जी !
बदक़िस्मती से आप भी इन्सान बन गये ॥
काटे थे चद दामने-फितरत मे[4] ऐ 'अदम' ।
कुछ फूल और कुछ मेरे अरमान बन गये ॥

मैखाना-ए-हस्ती मे अक्सर हम अपना ठिकाना भूल गये ।
या होश से जाना भूल गये या होश मे आना भूल गये ॥
असबाब[5] तो बन हो जाते हैं तक़दीर की ज़िद को क्या कहिये ?
इक जाम तो पहुचा था हम तक, हम जाम उठाना भूल गये ॥
आये थे बिखेरे जुल्फो को इक रोज हमारे मरकद[6] पर ।
दो अश्क[7] तो टपके आखो से, दो फूल चढ़ाना भूल गये ॥
चाहा था कि उनकी आखो से कुछ रगे-बहारा[8] ले लीजे ।
तकरीब[9] तो अच्छी थी लेकिन, वो आख मिलाना भूल गये ॥
मालूम नही आईने मे चुपके से हंसा था कौन 'अदम' ?
हम जाम उठाना भूल गये, वो साज़ बजाना भूल गये ॥

१. वह स्थान जहा प्रलय के बाद मनुष्य भगवान को अपने कर्मों का उत्तर देगा । २. होश वाले (बुद्धिमान्) ३. स्वभाव ४. प्रकृति की गोदी मे ५. कारण ६. क़ब्र ७. आंसू ८. बहारो का रग ९. शुभ अवसर

फुटकर शेर

महशर[1] मे इत्तफाक से आया न ज़हन में ।
वरना तमाम उम्र तेरा नाम याद था ।।

◇ ◇ ◇

जब तक तेरी निगाह ने तौफीक[2] दी मुझे ।
मैं तेरी जुल्फ बन के सवरता चला गया ।।

◇ ◇ ◇

दिल अभी पूरी तरह टूटा नही ।
दोस्तो की मेहरबानी चाहिए ।।

◇ ◇ ◇

शायद मुझे निकाल के पछता रहे हो आप ।
महफिल मे इस खयाल से फिर आ गया हू मैं ।।

◇ ◇ ◇

आये थे मुझ से मिलने मगर मै न जब मिला ।
वो मेरी बेखुदी से मुलाकात कर गये ।।
मै उम्र भर 'अदम' न कोई दे सका जवाब ।
वो इक नज़र मे इतने सवालात कर गये ।।

◇ ◇ ◇

दिल खुश हुआ है मस्जिदे-वीरान देखकर ।
मेरी तरह खुदा का भी खाना खराब है ।।

◇ ◇ ◇

---

१ प्रलय-क्षेत्र २ सामर्थ्य

इजाज़त हो तो मै तसदीक[१] कर लूं तेरी ज़ुल्फों से।
सुना है जिन्दगी एक ख़ूबसूरत दाम[२] है साक़ी ॥

◇ ◇ ◇

मै[३] सी हसीन चीज हो और वाकई हराम।
मै कसरते-शकूक[४] से घबरा के पी गया ॥

◇ ◇ ◇

ज़ुल्मतो से[५] न डर कि रस्ते मे।
रोशनी है शराबख़ाने की ॥

◇ ◇ ◇

खाली है अभी जाम मे कुछ सोच रहा हूं।
ऐ गर्दिशे - अय्याम[६] मै कुछ सोच रहा हूं ॥
साकी तुझे एक थोड़ी सी तकलीफ तो होगी।
सागर को ज़रा थाम मैं कुछ सोच रहा हूं ॥
पहले बड़ी रगबत[७] थी तेरे नाम से मुझको।
अब सुन के तेरा नाम मै कुछ सोच रहा हूं ॥
हल कुछ तो निकल आयेगा हालात की ज़िद का।
ऐ कसरते-आलाम[८] मैं कुछ सोच रहा हूं ॥

◇ ◇ ◇

हमको फ़ुर्सत नही मूसा[९] को कहो सुन आये।
क्यो बुलाते हैं, क्या काम है, क्या कहते हैं ?

◇ ◇ ◇

तौबा को तोड़ने की तो नीयत न थी मगर।
मौसम का एहतराम[१०] न करते तो ज़ुल्म था ॥

◇ ◇ ◇

---

१. पुष्टि २ जाल (फंदा—केशों की जाल से उपमा दी गई है) ३. शराब ४. सन्देहों के आधिक्य ५. अन्धेरों से ६ काल-चक्र ७ लगाव ८. दुखों की भरमार ९ हजरत मूसा जिनसे एक किवदन्ती के अनुसार तूर पर खुदा ने बातें की थी (इस शेर की दूसरी पंक्ति मे खुदा की ओर संकेत है) १०. सम्मान

इक सितारा, इक कली, इक मै का क़तरा, एक ज़ुल्फ ।
जब इकट्ठे हो गये तामीरे-जन्नत[1] हो गई ।।

◇ ◇ ◇

फ़ुर्सत का वक़्त ढूंढ के मिलना कभी अजल[2] ।
मुझको भी काम है, अभी तुझको भी काम है ।।

◇ ◇ ◇

महशर का ख़ैर कुछ भी नतीजा हो ऐ 'अदम' ।
कुछ गुफ़्तगू तो हम भी करेंगे ख़ुदा के साथ ।।

◇ ◇ ◇

इश्क ने सौंपा है काम अपना, अब तो निभाना ही होगा ।
मैं भी कुछ कोशिश करता हू, आप भी कुछ इमदाद करें ।।

◇ ◇ ◇

तख़लीके-कायनात[3] के दिलचस्प जुर्म पर ।
हँसता तो होगा आप भी यज़दां[4] कभी-कभी ।।

◇ ◇ ◇

पहुंच सका न मैं बरवक्त अपनी मंज़िल पर ।
कि रास्ते में मुझे रहबरो ने घेर लिया ।।

◇ ◇ ◇

सिर्फ इक कदम उठा था गलत राहे-शौक[5] मे ।
मंज़िल तमाम उम्र मुझे ढूंढती रही ।।

---

१ स्वर्ग का निर्माण २ मृत्यु ३ विश्व-निर्माण ४ भगवान
५ प्रेम-मार्ग



'साग़र' निज़ामी

आसान नहीं इस दुनिया में ख़्वाबों के सहारे जी सकना
संगीन हक़ीक़त है दुनिया ये कोई सुनहरी ख़्वाब नहीं

'साग़र'

'साग़र' की शायरी और उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे यदि केवल एक वाक्य ही पर्याप्त समझना हो तो यह कहकर चुप हुआ जा सकता है कि 'साग़र' हर मुशायरा लूट लेता है। लेकिन यहां चू कि उसके सम्बन्ध मे एक से अधिक वाक्यो की आवश्यकता है, इसलिए अपने अनुभव के आधार पर मैं यह कहूंगा कि मुशायरे के अतिरिक्त वह अपने प्रत्येक मित्र और परिचित का दिल भी लूट लेता है। सुकण्ठ और सुभाषी तो वह है ही, आयु के लिहाज़ से आधी सदी पार कर चुकने के बावजूद अभी तक वह सजीला भी है। इसके अतिरिक्त पहली मुलाक़ात मे ही जिस तरह वह आप से बेतकल्लुफ हो जाएगा, जिस तरह अपने व्यक्तिगत जीवन की प्रिय, अप्रिय घटनाओ की सविस्तार चर्चा करेगा और अनुरोध-पूर्वक आपसे आपकी आत्मकथा सुनेगा, अपनी डिबिया से पान निकाल कर आप को पेश करेगा और बडी बेतकल्लुफी से आप का पेश किया हुआ सिगरेट क़बूल करेगा, उससे उसके व्यक्तित्व से तो आप प्रभावित होंगे ही, उसे अपना घनिष्ट मित्र भी समझने लगेंगे।

'साग़र' से यो तो मैं एक समय से परिचित था और एक राष्ट्रवादी शायर के नाते कौन उससे परिचित नही है ? सरोजनी नायडू और 'जोश' मलीहाबादी की तरह स्वतन्त्रता-आंदोलन के दिनो मे उसके नग्मे भी घर-घर गूंज चुके हैं और बहुत कम मुशायरे ऐसे होंगे जिनमे उसका योग अनिवार्य न समझा गया हो, लेकिन व्यक्तिगत रूप से पहली बार उससे मेरा परिचय १९४९ मे 'जोश'

साहब के यहा हुआ था जब काश्मीर के एक मुशायरे मे भाग लेने वह बम्बई से आया था और उसकी आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय थी। उन परिस्थितियो मे भी, जबकि उसके कथनानुसार कई बार उसकी जेब मे ट्राम का टिकट खरीदने के लिए एक इकन्नी न होती थी कि वह काम ढूढने के लिए घर से निकल सके, मैंने उसके होंटो पर वही मधुर मुस्कराहट देखी जो आजकल देखता हूँ—आजकल, जबकि वह आल-इडिया रेडियो दिल्ली मे छ' सौ से ऊपर वेतन पा रहा है।

"आदमी को हर हाल मे हालात का मुकाबला करना चाहिये।" अपनी उन दिनो की दुरवस्था का ज़िक्र करने के बाद उसने कहा, "हालात के आगे हथियार डाल देना बुज़दिली है। इन्सान अगर खुद-एतमादी और खुद्दारी (आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान) को हाथ से न जाने दे और बराबर हालात का मुकाबला करता रहे तो एक दिन हालात उनके आगे हथियार डाल देते हैं।"

हालात ने उसके आगे हथियार डाल दिये हो, यह बात नहीं, और वह अपनी इस नौकरी से सन्तुष्ट होकर बैठ गया हो, यह बात भी नही। हालात की टेढी-मेढी सड़क पर, जिसकी शायद कोई मजिल नहीं, वह बराबर आगे बढ रहा है। यह नौकरी और इस प्रकार की दूसरी नौकरिया जो उसने जीवन मे अपनाई, उसके लिए एक पड़ाव-मात्र है, क्योकि कभी-कभी मनुष्य को विश्राम की भी आवश्यकता होती है।

उर्दू शायरी का यह मुसाफ़िर जो मुशायरो और जीविका जुटाने के सम्बंध मे नगरी-नगरी घूम चुका है, सन् १९०५ मे अपने ननिहाल अलीगढ मे पैदा हुआ। वही प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की और वही शायर के रूप में अपने पर-पुर्ज़े निकाले। मामा आबिद 'रज़ा' स्वयं शायर थे, इसलिए जब भी अलीगढ में कोई मुशायरा होता था, बाहर से आने वाले शायर अधिकतर उन्ही के यहा ठहरते थे। शाम को मुशायरे मे पढने के लिए दिन भर पढने का (गलेबाज़ी का) अभ्यास होता था, अतएव जिस तरह बच्चे बड़ो की नकल करते हैं, तेरह वर्ष के नन्हे 'सागर' ने भी देखा-देखी तुकबंदी और गलेबाज़ी शुरू कर दी। उस समय उसकी आयु सोलह वर्ष की थी जब अलीगढ मे एक अखिल भारतीय मुशायरा हुआ और किसी तरह 'सागर' को भी उसमे पढने का अवसर मिल गया और वहा उसने बड़े सुरीले तरन्नुम के साथ ये शेर पढ़े :

मोरिचाँय

'सागर' की शायरी और उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे यदि केवल एक वाक्य ही पर्याप्त समझना हो तो यह कहकर चुप हुआ जा सकता है कि 'सागर' हर मुशायरा लूट लेता है। लेकिन यहाँ चूंकि उसके सम्बन्ध मे एक से अधिक वाक्यो की आवश्यकता है, इसलिए अपने अनुभव के आधार पर मैं यह कहूँगा कि मुशायरे के अतिरिक्त वह अपने प्रत्येक मित्र और परिचित का दिल भी लूट लेता है। सुकण्ठ और सुभाषी तो वह है ही, आयु के लिहाज से आधी सदी पार कर चुकने के बावजूद अभी तक वह सजीला भी है। इसके अतिरिक्त पहली मुलाकात मे ही जिस तरह वह आप से बेतकल्लुफ हो जाएगा, जिस तरह अपने व्यक्तिगत जीवन की प्रिय, अप्रिय घटनाओ की सविस्तार चर्चा करेगा और अनुरोध-पूर्वक आपसे आपकी आत्मकथा सुनेगा, अपनी डिबिया से पान निकाल कर आप को पेश करेगा और बडी बेतकल्लुफी से आप का पेश किया हुआ सिगरेट कबूल करेगा, उससे उसके व्यक्तित्व से तो आप प्रभावित होंगे ही, उसे अपना घनिष्ट मित्र भी समझने लगेंगे।

'साग़र' से यो तो मैं एक समय से परिचित था और एक राष्ट्रवादी शायर के नाते कौन उससे परिचित नही है ? सरोजनी नायडू और 'जोश' मलीहाबादी की तरह स्वतन्त्रता-आदोलन के दिनो मे उसके नग्मे भी घर-घर गूंज चुके हैं और बहुत कम मुशायरे ऐसे होंगे जिनमे उसका योग अनिवार्य न समझा गया हो, लेकिन व्यक्तिगत रूप से पहली बार उससे मेरा परिचय १९४९ मे 'जोश'

साहब के यहा हुआ था जब काश्मीर के एक मुशायरे मे भाग लेने वह बम्बई से आया था और उसकी आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय थी। उन परिस्थितियो मे भी, जबकि उसके कथनानुसार कई बार उसकी जेब मे ट्राम का टिकट खरीदने के लिए एक इकन्नी न होती थी कि वह काम ढूढने के लिए घर से निकल सके, मैने उसके होंटो पर वही मधुर मुस्कराहट देखी जो आजकल देखता हूँ—आजकल, जबकि वह आल-इडिया रेडियो दिल्ली मे छ सौ से ऊपर वेतन पा रहा है।

"आदमी को हर हाल मे हालात का मुकाबला करना चाहिये।" अपनी उन दिनो की दुरवस्था का जिक्र करने के बाद उसने कहा, "हालात के आगे हथियार डाल देना बुज़दिली है। इन्सान अगर खुद-एतमादी और खुद्दारी (आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान) को हाथ से न जाने दे और बराबर हालात का मुकाबला करता रहे तो एक दिन हालात उसके आगे हथियार डाल देते है।"

हालात ने उसके आगे हथियार डाल दिये हों, यह बात नही, और वह अपनी इस नौकरी से सन्तुष्ट होकर बैठ गया हो, यह बात भी नही। हालात की टेढी-मेढी सडक पर, जिसकी शायद कोई मजिल नही, वह बराबर आगे बढ रहा है। यह नौकरी और इस प्रकार की दूसरी नौकरिया जो उसने जीवन मे अपनाई, उसके लिए एक पडाव-मात्र है, क्योकि कभी-कभी मनुष्य को विश्राम की भी आवश्यकता होती है।

उर्दू शायरी का यह मुसाफिर जो मुशायरो और जीविका जुटाने के सम्बध मे नगरी-नगरी घूम चुका है, सन् १६०५ मे अपने नहिाल अलीगढ मे पैदा हुआ। वही प्रारभिक शिक्षा प्राप्त की और वही शायर के रूप मे अपने पर-पुर्जे निकाले। मामा आबिद 'रजा' स्वय शायर थे, इसलिए जब भी अलीगढ मे कोई मुशायरा होता था, बाहर से आने वाले शायर अधिकतर उन्ही के यहा ठहरते थे। शाम को मुशायरे मे पढने के लिए दिन भर पढने का (गलेबाजी का) अभ्यास होता था, अतएव जिस तरह बच्चे बडो की नकल करते है, तेरह वर्ष के नन्हे 'सागर' ने भी देखा-देखी तुक-बदी और गलेबाजी शुरू कर दी। उस समय उसकी आयु सोलह वर्ष की थी जब अलीगढ में एक अखिल भारतीय मुशायरा हुआ और किसी तरह 'सागर' को भी उसमे पढने का अवसर मिल गया और वहा उसने बडे सुरीले तरन्नुम के साथ ये शेर पढे :

बचपन ही मे किया मुझे गम ने शिकस्तापा[1]।
तै होगी कैसे मजिलें या रब शबाब की[2] ?
गर्दिश रही नसीब मे या रब तमाम उम्र।
'साग़र' बना के क्यो मेरी मिट्टी खराब की ॥

उस मुशायरे मे तो 'सागर' की मिट्टी खराब होने की बजाय उसे खूब-खूब दाद मिली, अलबत्ता घर पहुँचने पर उसकी मिट्टी जरूर खराब हुई। पिता डाक्टर थे और उन्हें बेटे की शायरी सुनने का नही, शायरी के कारण बेटे को पीटने का शौक था, अतएव 'सागर' की खूब पिटाई हुई। लेकिन ज्यो-ज्यो 'सागर' की पिटाई होने लगी त्यो-त्यो शायरी से 'साग़र' का सम्बन्ध और भी गहरा होता गया और उसके बाद कुछ वर्षो मे ही अलीगढ़ से निकलकर उसका नाम पूरे भारत में फैल गया और हर मुशायरे के लिए बुलावे आने लगे।

स्वभाव मे उद्दण्डता का तत्व तो बचपन ही से था, अतएव होश सम्भालने पर जब अपने कुल का इतिहास* सामने आया तो खून के आँसू रुला गया। अंग्रेज़ी शासन और देश की परतन्त्रता के प्रति घृणा-भाव तीव्रतर हो उठा और न केवल उसकी कलम ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विष उगलना शुरू किया बल्कि शिक्षा को नमस्कार कर वह क्रियात्मक रूप से स्वतन्त्रता-आदोलन मे शामिल हो गया। देश की स्वतन्त्रता और देश-प्रेम के सम्बन्ध मे उसका यह फैसला '

"जहाँ तक हिन्दोस्तान की आज़ादी, हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद (ऐक्य) और एक मुत्तहद (अखड) आज़ाद मुल्क का सवाल है, मैं इनके मुकाबले मे दुनिया की बादशाहत को ठुकरा दूंगा। मुझे हिन्दोस्तान और उसकी आज़ादी, अपने माँ-बाप, अपने भाई, अपनी बीवी और अपनी जान से भी ज्यादा अज़ीज़ (प्रिय) हैं। मैं मर जाना पसद करूँगा लेकिन उन तबको (वर्गो) का साथ न दूंगा जो हिन्दोस्तान की आज़ादी के दुश्मन है। यह मेरा महफ़ूज़ (सुरक्षित) और मज़बूत (सुदृढ) ईमान है, जो कभी मुतज़लज़ल (प्रकम्पित) नही हुआ और कभी नही होगा।"

उस समय भी अटल रहा जब उसके कथनानुसार उसके 'बुरे दिन' थे और

---

१ पाव तोड डाले (थका दिया)। २ जवानी की।

* परदादा सरदार शहबाज़ खा 'झज्झर के नवाब की सेना में सेनापति थे और चूंकि मुग़ल बादशाह के पक्ष मे अंग्रेजो से लडे थे इसलिए उनके पूरे खानदान को सूली पर लटका दिया गया था। उनके केवल एक पुत्र जो उन दिनो बहुत छोटे थे किसी प्रकार बच गये और उन्ही से यह कुल आगे चला।

यदि वह चाहता तो पलक झपकने की देर मे 'बुरे दिन' बहुत अच्छे दिनो मे परिवर्तित हो सकते थे। लेकिन उसने ऐसा नही किया और विभिन्न स्थानो से विभिन्न पत्र-पत्रिकायें निकालकर (जिनमे 'एशिया' सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ), कभी किसी प्रेस मे नौकरी करके, कभी फिल्म जगत मे जाकर और कभी केवल मुशायरो की थोड़ी-सी आय पर निर्वाह करते हुए उन बुरे दिनो को धक्के दिये और हर कदम और हर मोड़ पर इस प्रतिज्ञा को छाती से लगाता रहा कि

जब तिलाई[1] रग सिक्को को नचाया जायेगा।
जब मेरी गैरत[2] को दौलत से लटाया जायेगा॥
जब रगे-इफलास[3] को मेरी दबाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक्त भी मैं तेरे नग्मे गाऊँगा॥
और अपने पाव से अबारे-ज़र[4] ठुकराऊँगा॥
जब मुझे पेड़ो से उरिया[5] करके बाधा जायेगा।
गर्म आहन[6] से मिरे होटो को दागा जायेगा॥
जब दहकती आग पर मुझको लिटाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक्त भी मैं तेरे नग्मे गाऊँगा॥
तेरे नग्मे गाऊँगा और आग पर सो जाऊँगा॥
हुक्म आखिर क़त्लगह[7] में जब सुनाया जायेगा।
जब मुझे फासी के तख़्ते पर चढाया जायेगा॥
जब यकायक तख़्ता-ए-ख़ूनी[8] हटाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक्त भी मैं तेरे नग्मे गाऊँगा॥
अहद[9] करता हूँ कि मैं तुझ पर फिदा[10] हो जाऊँगा॥

आज देश स्वतन्त्र है। आज उसकी यह प्रतिज्ञा इतिहास का अग बन चुकी है। मुशायरो मे भी आज गलेबाजी का वह पहले जैसा ज़ोर-शोर नही रहा, लेकिन 'सागर' को अपनी इस प्रतिज्ञा और इस प्रकार की अन्य प्रतिज्ञाओ पर आज भी गौरव है और यथोचित गौरव है। अतएव पिछले दिनो जब दिल्ली के एक मुशायरे मे वह भाग लेने आया तो उपस्थित जनो मे से किसी मसखरे ने उस पर यह वाक्य कसा कि "लीजिये एक भाड भी तशरीफ़ ला रहे हैं" तो लज्जित होने की बजाय 'सागर' ने तुरन्त इसका उत्तर यो दिया, "हा, मैं भाड हूँ और मुझे फख्र है कि मैं कौम का भाट हूँ।"

---

१. सुनहरी २. स्वाभिमान ३. दरिद्रता की नस ४ धन का ढेर ५. नग्न ६. लोहे ७ वध-स्थान ८ फाँसी का तख्ता ९ प्रतिज्ञा १०. न्यौछावर

वचपन ही मे किया मुझे ग़म ने शिकस्तापा[१]।
तै होगी कैसे मजिलें या रव शबाव की[२] ?
गर्दिश रही नसीव मे या रव तमाम उम्र।
'साग़र' बना के क्यो मेरी मिट्टी खराब की ॥

उस मुशायरे मे तो 'सागर' की मिट्टी खराव होने की वजाय उसे खूब-खूब दाद मिली, अलवत्ता घर पहुँचने पर उसकी मिट्टी जरूर खराब हुई। पिता डाक्टर थे और उन्हे वेटे की शायरी सुनने का नही, शायरी के कारण वेटे को पीटने का शौक था, अतएव 'सागर' की खूव पिटाई हुई। लेकिन ज्यो-ज्यो 'सागर' की पिटाई होने लगी त्यो-त्यो शायरी से 'सागर' का सम्वन्ध और भी गहरा होता गया और उसके वाद कुछ वर्षो मे ही अलीगढ से निकलकर उसका नाम पूरे भारत मे फैल गया और हर मुशायरे के लिए वुलावे आने लगे।

स्वभाव मे उद्दण्डता का तत्व तो वचपन ही से था, अतएव होश सम्भालने पर जव अपने कुल का इतिहास* सामने आया तो खून के आँसू रुला गया। अंग्रेज़ी शासन और देश की परतन्त्रता के प्रति घृणा-भाव तीव्रतर हो उठा और न केवल उसकी कलम ने अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विष उगलना शुरू किया वल्कि शिक्षा को नमस्कार कर वह क्रियात्मक रूप से स्वतन्त्रता-आदोलन मे शामिल हो गया। देश की स्वतन्त्रता और देश-प्रेम के सम्वन्ध मे उसका यह फैसला

"जहाँ तक हिन्दोस्तान की आज़ादी, हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद (ऐक्य) और एक मुत्तहद (अखड) आज़ाद मुल्क का सवाल है, मैं इनके मुकावले मे दुनिया की वादशाहत को ठुकरा दूंगा। मुझे हिन्दोस्तान और उसकी आज़ादी, अपने माँ-वाप, अपने भाई, अपनी वीवी और अपनी जान से भी ज़्यादा अज़ीज़ (प्रिय) हैं। मैं मर जाना पसद करूँगा लेकिन उन तवको (वर्गो) का साथ न दूंगा जो हिन्दोस्तान की आज़ादी के दुश्मन हैं। यह मेरा महफ़ूज़ (सुरक्षित) और मज़वूत (सुदृढ) ईमान है, जो कभी मुतज़लज़ल (प्रकम्पित) नही हुआ और कभी नही होगा।"

उस समय भी अटल रहा जव उसके कथनानुसार उसके 'वुरे दिन' थे और

---

१ पाव तोड डाले (थका दिया)। २ जवानी की।

* परदादा सरदार शहवाज खा 'झज्झर के नवाव की सेना मे सेनापति थे और चूंकि मुगल वादशाह के पक्ष मे अंग्रेजो से लडे थे इसलिए उनके पूरे खानदान को सूली पर लटका दिया गया था। उनके केवल एक पुत्र जो उन दिनो वहुत छोटे थे किसी प्रकार वच गये और उन्ही से यह कुल आगे चला।

यदि वह चाहता तो पलक झपकने की देर मे 'बुरे दिन' बहुत अच्छे दिनो मे परिवर्तित हो सकते थे। लेकिन उसने ऐसा नही किया और विभिन्न स्थानो से विभिन्न पत्र-पत्रिकाये निकालकर (जिनमे 'एशिया' सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ), कभी किसी प्रेस मे नौकरी करके, कभी फिल्म जगत मे जाकर और कभी केवल मुशायरो की थोडी-सी आय पर निर्वाह करते हुए उन बुरे दिनो को धक्के दिये और हर कदम और हर मोड पर इस प्रतिज्ञा को छाती से लगाता रहा कि :

जब तिलाई[1] रग सिक्कों को नचाया जायेगा।
जब मेरी गैरत[2] को दौलत से लडाया जायेगा॥
जब रगे-इफलास[3] को मेरी दबाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक्त भी मैं तेरे नग्मे गाऊँगा॥
और अपने पाव से अबारे-ज़र[4] ठुकराऊँगा॥
जब मुझे पेडो से उरिया[5] करके बाधा जायेगा।
गर्म आहन[6] से मिरे होंटो को दागा जायेगा॥
जब दहकती आग पर मुझको लिटाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक्त भी मैं तेरे नग्मे गाऊँगा॥
तेरे नग्मे गाऊँगा और आग पर सो जाऊँगा॥
हुक्म आखिर कत्लगह[7] मे जब सुनाया जायेगा।
जब मुझे फासी के तख्ते पर चढाया जायेगा॥
जब यकायक तख्ता-ए-खूनी[8] हटाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक्त भी मैं तेरे नग्मे गाऊँगा॥
अहद[9] करता हूँ कि मैं तुझ पर फिदा[10] हो जाऊँगा॥

आज देश स्वतन्त्र है। आज उसकी यह प्रतिज्ञा इतिहास का अग बन चुकी है। मुशायरो मे भी आज गलेबाजी का वह पहले ऐसा जोर-शोर नही रहा, लेकिन 'सागर' को अपनी इस प्रतिज्ञा और इस प्रकार की अन्य प्रतिज्ञाओ पर आज भी गौरव है और यथोचित गौरव है। अतएव पिछले दिनो जब दिल्ली के एक मुशायरे मे वह भाग लेने आया तो उपस्थित जनो मे से किसी मसखरे ने उस पर यह वाक्य कसा कि "लीजिये एक भाड भी तशरीफ ला रहे हैं" तो लज्जित होने की बजाय 'सागर' ने तुरन्त इसका उत्तर यो दिया, "हा, मैं भाड हूँ और मुझे फख्र है कि मैं कौम का भाट हूँ।"

---

१. सुनहरी २. स्वाभिमान ३. दरिद्रता की नस ४ धन का ढेर ५. नग्न ६. लोहे ७ वध-स्थान ८. फांसी का तख्ता ९ प्रतिज्ञा १०. न्योछावर

नया पुजारी

कोई है बहारे - चमन का[1] पुजारी
कोई है गुलो-यासमन[2] का पुजारी,
बुते - मौलवी को[3] कोई पूजता है
कोई कशका-ए-बरह्मन का[4] पुजारी,
गुलामे-गुलामाने-ज़मज़म[5] है कोई
कोई मौजे-गगो-जमन का[6] पुजारी,
मगर मेरा ज़ौके-परस्तिश[7] जुदा है।
मै 'सागर' हू अपने वतन का पुजारी ।।

ऋषिकेश में कोई बैठा हुआ है
कोई हर की पौडी के गुन गा रहा है,
बनारस की गलियो मे फिरता है कोई
मज़ारो पे जाकर कोई नाचता है,
कलीसा[8] में है महवे-तसलीम[9] कोई
कोई दैर[10] में मूर्ती पूजता है,
मगर मेरा ज़ौके-परस्तिश जुदा है।
मै 'सागर' हू अपने वतन का पुजारी ।।

हर इक कैदे-फर्ज़ी[11] से आज़ाद हू मै
तरक्की दहे - बज़्मे - ईजाद[12] हू मैं,
अकीदे[13] मेरे सामने कापते हैं
उसूले-मुहव्वत की बुनियाद हू मैं,
न जुन्नार[14] का ग़म न तसवीह[15] का ग़म।
दिमागी गुलामी से आज़ाद हू मैं ।।

१. बाग़ की वहार का २ फूलो ३ मौलवी के बुत को ४ ब्रह्मन के तिलक का ५ जमजम (कावे का एक कुआं) के गुलामो का गुलाम ६ गगा, जमना की लहरो का ७ उपासना की अभिरुचि ८ गिरजाघर ९ उपासना मे निमग्न १० मन्दिर ११ मनघड त क़ैद १२ ससार को उन्नत करने वाला १३ मान्यतायें १४ जनेऊ १५ माला

नाग

मस्ती का लहराता पैकर[1] सर से पा तक[2] काले।
मौत की वादी के रखवाले, ऐ कहरों[3] के पाले ॥
अब्रे-सियाह[4] उतरा है ज़मी पर ताजा शबनम पीने।
हब्शी कोई लूट रहा है या मोती के खज़ीने[5] ॥
मै भी इक मोती को उठा लूँ ?
ऐ बाम्बी के वासी !
आओ मै तन मन मे बसा लू, ऐ बाम्बी के वासी ॥
अपनी ही मस्ती की धुन मे झूम रहे हो ऐसे।
जैसे कोई दखनी कंवारी मदिरा पीकर झूमे ॥
अंधियारी दर्पन है तुम्हारा नूर[6] तुम्हारा हाला[7]।
रात की देवी क्या जंगल मे भूल गई है माला ?
अपने गले मे तुमको डालू ?
ऐ बाम्बी के वासी !
आओ मै तन मन मे बसा लूँ, ऐ बाम्बी के वासी ॥
कुसुम की टहनी पर भौंरे ने या डाला है डेरा।
बिन पत्तो की शाख पे या कोयल ने रैन-बसेरा ॥
बिजली से मामूर[8] घटायें उमड रही हो जैसे।
या सावन की काली राते सिमट गई हो जैसे ॥
आओ तुमको बीन बना लूँ !
ऐ बाम्बी के वासी !
आओ मै तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के वासी ॥
या कोई मगरूर जवानी झूम रही हो पीकर।
या तूफानों मे लहराये जैसे काला सागर ॥

---

१. शरीर (मूर्ति) २. सिर से पैरों तक ३. आफतों ४. काला बादल
५ खज़ाने ६. प्रकाश ७ कुण्डल ८ परिपूर्ण

पाप की मीठी अधियारी हो या मस्ती का सवेरा।
मौत की रौशन-तारीकी[1] हो या जीवन का अधेरा॥
उम्मीदो का दीप जला लू !
ऐ बाम्बी के बासी !
आओ मैं तन मन मे बसा लू, ऐ बाम्बी के बासी॥
ऐ बाम्बी के बसने वाले तुम क्या हो जहरीले।
लाखो नाग हैं इन्सानो मे गोरे, काले, पीले॥
मुल्ला, नेता, पीर और पण्डित, राजे, पाडे, लाले।
बस्ते हैं दुनिया मे तुमसे बढकर डसने वाले॥
तुमसे मैं क्या मन को डसा लू ?
ऐ बाम्बो के बासी !
आओ मैं तन मन मे बसा लू, ऐ बाम्बी के वासी॥
बिष है तुम्हारा बूंद बराबर, इनका ज़हर समन्दर।
डंक तुम्हारा वीरानो तक, इनका डसना घर-घर॥
तेरा काटा एक दिन जीवे, इनका काटा पल भर।
सहर[2] तुम्हारा सर पर बोले, इनका जादू मन पर॥
मन से इनका ज़हर हटा लू !
ऐ वाम्बी के वासी !
आओ मै तन मन मे बसा लू, ऐ वाम्बी के वासी॥
इन्सानी नागो के वया[3] हो क्या ज़हरी अफसाने।
तेरा डसना छुप-छुपकर है, इनका खुले-खज़ाने॥
डसते हैं और फिर कहते हैं मौत न आने पाये।
तेरा विष तो रखता है हर ज़ख्मी दिल पर फाये॥
दारु-ए-आलाम[4] चुरा लूं !
ऐ वाम्बी के वासी !
आओ मैं तन मन मे वसा लूँ, ऐ वाम्बो के वासी॥

---

१ प्रकाशमान अन्धकार २ जादू ३ वर्णन ४ दुखनाशक औषधि

बुझा हुआ दीपक

जीवन की कुटिया मे हूँ मैं बुझा हुआ सा दीपक ।
आशा के मन्दिर मे हूं मैं बुझा हुआ सा दीपक ।।
बुझा हुआ सा दीपक हू मै, बुझा हुआ सा दीपक ।

कजराये - दीवट पे धरा हू यूं कुटिया मे हाए ।
जैसे कोयल सीस नवाकर अम्वुआ पर सो जाए ।।
जैसे श्यामा गाते - गाते कुहरे मे खो जाए ।
जैसे दीपक आग मे अपनी आप भस्म हो जाए ।।
विरह मे जैसे आस किसी क्वारी की पथरा जाए ।
बुझा हुआ सा दीपक हूँ मै, बुझा हुआ सा दीपक ।।

आतम, हिरदय, जीवन, मृत्यु, सतयुग, कलियुग, माया ।
हर रिश्ते पर मैने अपने नूर[1] का जाल विछाया ।।
चारों ओर चमक कर अपनी किरनो को दौडाया ।
जितना ढूंडा उतना खोया, खोकर खाक न पाया ।।
वीत गये जुग लेकिन 'सागर' मुझ तक कोई न आया ।
बुझा हुआ सा दीनक हूँ मे, बुझा हुआ सा दीपक ।।

आखिर विल्कुल बुझ जाने को हो ली जब तैयारी ।
आकर मेरे कान में वोली इक शब[2] यूं अंधियारी ।।
जग मे जिसको कोई न पूछे वो क़िस्मत की मारी ।
मन-मन्दिर मे मुझ को विठा लो ऐ ज्योति के रसिया ।।

---

१. प्रकाश २. रात

बुझे हुए से दीपक तुम, मैं थकी हुई अँधियारी।
बुझा हुआ सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ सा दीपक ॥

अँधियारी की बातें सुनकर मन बोला—उठ जाग।
यही तेरी मज़िल है दीपक ! यही हैं तेरे भाग ॥
भडक उठी सीने मे बिरह की दबी हुई सी आग।
आशा के मन्दिर मे गूँजा इक तूफानी राग ॥
आखो मे जलते आसू थे, होटो पर थी आहे।
डाल दी अँधियारी के गले मे रोकर मैने बाँहे ॥
बुझा हुआ सा दीपक हू मै, बुझा हुआ सा दीपक ॥

फुटकर शेर

सब्र नही है जिन्दगी जब्र नही है आशिकी।
दिल पे नही है अख्तियार, उन पे हो अख्तियार क्यो ?
अपना ही बुतकदा[1] सजा, अपने ही बुत पे लोट जा।
तेरे दिमागो-दिल पे हो, दैरो-हरम[2] का वार क्यो ?

◇ ◇ ◇

उसी लम्हे को शायर यास[3] की तकमील[4] कहते हैं।
मुहब्बत जब मिजाजे-आशिकी पर बार[5] हो जाये ॥

◇ ◇ ◇

मेरी खाक[6] पर साजे-यकतार[7] लेकर।
उमीद अब भी इक गीत सा गा रही है ॥

◇ ◇ ◇

समझना तेरा कोई आसां है ज़ालिम !
ये क्या कम है खुदआश्ना[8] हो गये हम ॥
भटक कर पड़े रहज़नो[9] के जो हाथों।
लुटे इस कदर रहनुमा[10] हो गये हम ॥
जुनूने-खुदी[11] का ये ऐजाज़[12] देखो।
कि जब मौज आई खुदा हो गये हम ॥
मुहब्बत ने उम्रे-अबद[13] हम को बख्शी।
मगर सब ये समझे फना हो गये हम ॥

◇ ◇ ◇

---

१. मन्दिर २. मन्दिर-मस्जिद ३. निराशा ४ पूर्णता ५. भार ६. मिट्टी (कब्र) ७. इकतारा ८ आत्म-परिचित ९. लुटेरो के १०. पथ-प्रदर्शक ११ अहम्मन्यता १२. चमत्कार १३. अमरत्व

रोकती ही रह गई मासूम दूर-अदेशिया[1]।
उन के लब[2] पर मेरा ज़िक्रे-नातमाम[3] आ ही गया॥
है जहां इश्को-हविस[4] को एतराफे-बेकसी[5]।
तलखी-ए-हस्ती के[6] कुर्बां वो मुकाम आ ही गया॥
जैसे सागर से छलक जाये मचलती मौजे-मै[7]।
कांपते होटो पे उनके मेरा नाम आ ही गया॥

◇ ◇ ◇

ये तेरा तसव्वुर है या मेरी तमन्नाए।
दिल में कोई रह-रह के दीपक से जलाये है॥
जिस सिम्त[8] न दुनिया है, ऐ दोस्त न उकबा[9] है।
उस सिम्त मुझे कोई खीचे लिए जाये है॥

◇ ◇ ◇

तेरे सर की कसम गर तू न हो मेरे तसव्वुर[10] में।
मेरी नाज़ुक तबीयत पर ये दुनिया बार[11] हो जाये॥

◇ ◇ ◇

खिरद[12] को ये ज़िद भी न लुटती ये दौलत।
इसी ज़िद पे हमने जवानी लुटा दी॥

◇ ◇ ◇

कैफे-खुदी[13] ने मौज को कश्ती बना दिया।
फिक्रे-खुदा है अब न ग़मे-नाखुदा[14] मुझे॥

---

१ दूरदर्शितायें २ होठ ३ समाप्त न होने वाली चर्चा ४ प्रेम तथा कामवासना ५ विवशता का स्वीकरण ६ जीवन की कटुता के ७ शराब की लहर ८ ओर ९ परलोक १०. कल्पना ११ भार १२ ज्ञान १३ अहम्मन्यता के उन्माद १४ मल्लाह की चिंता



'मजाज़' लखनवी

ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

परिचय

"एक ऐसा वक्त भी गुज़रा है जब 'मजाज़' के नाम पर गर्ल्स कालेज, अलीगढ मे लाट्रिया डाली जाती थी कि 'मजाज़' किस के हिस्से मे पडता है और उस की नज्मे तकियो के नीचे छुपा कर आसुओ से सीची जाती थी और जब कवारिया अपने भावी बेटो के नाम उसके नाम पर रखने की कसमे खाती थी और अपने कहकहो, चूडियो की खनखनाहट और उडते हुए दोपट्टो की लहरों मे 'मजाज़' के शेर गुनगुनाती थी' "

'मजाज़' के सम्बन्ध मे इस्मत चुग़ताई (प्रसिद्ध उर्दू लेखिका) के ये शब्द पढने के बाद जब मैं आज के मजाज़ की ओर देखता हूं, विशेष रूप से इस समय जबकि मैं उसके जीवन और उसकी शायरी के सम्बन्ध मे कुछ पक्तियाँ लिखने जा रहा हूँ और मैंने नये सिरे से उसकी समूची शायरी का अध्ययन किया है और मुझे उससे अपनी तमाम मुलाकातें याद आ रही हैं तो मुझे बडे दुख से कहना पडता है कि आज नौजवान और सुन्दर से सुन्दर लडकियो के इतने प्रिय शायर के जीवन की सबसे बडी रिक्तता औरत है।

खाइयेगा इक निगाहे-लुत्फ का कब तक फरेब ?
कोई अफ़साना बनाकर बदगुमा हो जाइये[1]।

यह शेर 'मजाज़' ही का है। सोचता हूँ, किस भावना के वशीभूत 'मजाज़' ने यह शेर कहा होगा ! 'मजाज़' के नाम पर लाट्रिया डालने वाली लडकियों ने

---

१. प्रेमिका की एकमात्र कृपा-दृष्टि (लगाव) का कब तक धोखा खायें ?
कोई प्रेम-कथा गढ कर क्यो न मन बहला लिया जाए ?

'मजाज़' को बदगुमानी तो नहीं हाँ खुशफ़हमी (आत्मप्रवंचना) ने जकड़ डाले रखा और यह उसके जीवन की ट्रेजिडी है कि वह सब कुछ समझते हुए भी इस आत्मप्रवंचना में मस्त रहा।

मुझको अहसासे-फ़रेबे-रंगो-बू[1] होता रहा।
मैं मगर फिर भी फ़रेबे-रंगो-बू खाता रहा॥

जान-बूझकर 'रंगो-बू' का फ़रेब खाने का परिणाम यह हुआ कि 'मजाज़' ने अपनी कल्पित नायिकाओं की परछाइयां शराब के प्याले में तलाश करनी शुरू कर दीं और अपनी 'कुशीलता' के सहारे शराब को शिकस्त देते स्वयं शराब का शिकार हो गया और फिर शराब ने उसको बुरी तरह दबा लिया। उसने गिर-गिरकर सँभलने की लाख कोशिश की, लेकिन हुआ यही कि उसके दिल का लोच और उसकी चिन्तनशीलता शराब से हार गई और उसे अपनी पराजय का अनुभव भी हो गया :

क्या सुनोगी मेरी मजरूह[2] जवानी की पुकार,
मेरी फ़रियादे-जिगरदोज़,[3] मेरा नाला-ए-ज़ार[4],
शिद्दते-कर्ब[5] में डूबी हुई मेरी गुफ़्तार[6],
मैं कि खुद अपने मज़ाक़े-तरब-आगीं[7] का शिकार,
वो गुदाज़े-दिले-मरहूम[8] कहाँ से लाऊँ?
अब मैं वो जज़्बा-ए-मासूम[9] कहाँ से लाऊँ?

और

मेरी बर्बादियों का, हमनशीनो[10],
तुम्हें क्या, खुद मुझे भी ग़म नहीं है।

लेकिन यह केवल शायर के स्वाभिमान की बात है। अन्यथा 'मजाज़' को अपनी बर्बादियों का ग़म है और बहुत अधिक ग़म है। जानने वाले जानते हैं कि हर तूफ़ान के बाद मजाज़ की भावुकता और तीव्र भावुकता कितनी सार्थक होकर सामने आती रही है और हर 'पाप' के बाद वह किस प्रकार उसका 'प्रायश्चित' करता रहा है। जब अपने प्रेम में विफल होने के बाद उसे देहली छोड़नी पड़ी

---

१. रंग तथा सुगंधि (सौन्दर्य) के धोखे की अनुभूति २. घायल ३. दिल दुखाने वाली फ़रियाद ४. आर्तनाद ५. तीव्र वेदना में ६. बातचीत ७. प्रसन्न स्वभाव ८. मरे हुए (बुझे हुए) दिल का लोच ९. अबोध भावना १०. साथियो

तो उसकी क्या हालत हुई ? जब शराब की अधिकता के कारण पहली बार उसका मानसिक सतुलन बिगडा तो स्वस्थ होने के वाद उसकी क्या हालत थी ? जब उसे आल-इडिया रेडियो उर्दू मासिक-पत्रिका 'आवाज़' (यह नाम 'मजाज़' ही का दिया हुआ है) का सम्पादन छोडना पड़ा तो उसकी क्या हालत थी ? और दोबारा शराब की अधिकता के कारण राँची मैंटल हस्पताल मे रहने के वाद, जब पिछले दिनो वह बाहर निकला है तो इन दिनो उसकी क्या हालत है ?—जानने वाले जानते हैं कि उसको अपनी वर्बादी का कितना ग़म है और यही गम प्रकाश की वह हल्की-सी किरन है जो हम से कहती है कि "इन्तज़ार करो, 'मजाज़' अब भी सँभल सकता है।"

'मजाज़' से मेरी पहली मुलाकात वडे नाटकीय ढँग से हुई। यह १९४८ की एक रात के दस-ग्यारह बजे की वात है कि महीनो की दौडधूप के वाद किसी प्रकार मैंने और 'साहिर' लुध्यानवी ने नया मोहल्ला, पुल बगश (दिल्ली) मे एक खाली मकान ढूंढ निकाला था। मोहल्ला मुसलमानों का था और उन दिनो शहर का वातावरण मुसलमानो के पक्ष मे अच्छा न था। अर्थात् एक चीज़ 'साहिर' के पक्ष मे थी और दूसरी मेरे, अतएव हम दोनों विचित्र प्रकार का डर तथा झिझक महसूस कर रहे थे और चाहते थे कि हमारे मकान मे प्रवेश करने की किसी को कानो-कान खबर न हो। 'साहिर' सामान ढो रहा था और मैं गली के बाहर सामान की रखवाली कर रहा था कि एक ओर से एक दुवला-पतला, तीखे नैन-नक्श का व्यक्ति बुरी तरह लडखडाता और बुडबुडाता हुआ मेरे निकट आ खडा हुआ।

" 'अख्तर' शीरानी मर गया—"

"—हाय 'अख्तर' शीरानी तू उर्दू का वहुत वडा शायर था—वहुत वडा।"

वह वार-वार यही वाक्य दोहरा रहा था और हाथो से शून्य मे टेढी-मेढ़ी रेखायें वना रहा था और न जाने किसे कोसने दे रहा था कि मैं घवरा गया और अपनी उस समय की घवराहट मे मैं न जाने उससे क्या कुछ कह डालता कि ठीक उसी समय कही से 'जोश' मलीहावादी निकल आये (उन दिनो वे उसी मोहल्ले मे रहते थे) और मुझे पहचान कर वोले "इन्हें सभालो प्रकाश ! ये 'मजाज़' हैं।"

'मजाज़' की शायरी का प्रशसक और उससे मिलने का इच्छुक होने पर भी उस समय 'मजाज़' को सभालने की वजाय अपने-आपको सभालना अधिक आवश्यक था। फिर भी 'साहिर' के लौटने तक मैं 'मजाज़' के अनुरोध पर उसी की

तरह शून्य मे टेढी-मेढी रेखायें खीचता रहा और उसके उस मेज़वान को उसी तरह बुरा-भला कहता रहा, जिसने घर मे शराव होने पर भी उसे और शराव न पीने दी थी और अपनी मोटर मे विठा कर रेलवे पुल के पास छोड़ दिया था।

[ये पक्तियाँ लिखते समय मुझे 'मजाज़' की वह क्रुद्धता याद आ रही है जिसका उल्लेख उसने 'साहिर' लुध्यानवी के नाम अपने एक पत्र मे किया था और अपनी निष्कपटता के वावजूद मैं डरता हूँ कि कही 'मजाज़' पर मेरे इस लेख की प्रतिक्रिया भी वही न हो। 'सवेरा' (लाहौर) के सम्पादन काल मे 'साहिर' ने 'मजाज़' का परिचय कराते हुए यह लिख दिया था कि 'मजाज़' पर दो वार दीवानगी का दौरा पड चुका है और वह दिन-रात शराव पीता है और गली-कूचो मे मारा-मारा फिरता है—'मजाज़' ने इस परिचय के उत्तर मे गिला किया था कि :

कुछ तो होते है मुहव्वत मे जनूं[1] के आसार[2]।
और कुछ लोग भी दीवाना वना देते है॥

मेरी अभिलाषा है कि 'मजाज़' को मेरे इस लेख से इस प्रकार का आभास न हो।]

'मजाज़' से अपनी इस मुलाकात का ज़िक्र करने की आवश्यकता मुझे इस लिए हुई क्योंकि इससे मुझे उसकी शायरी की पृष्ठभूमि को समझने मे वडी सहायता मिली है। उसके वाद भी मैं प्राय मजाज़ से मिलता रहा हूँ और मुझे दो-तीन मास तक उसका मेज़वान होने का सौभाग्य भी प्राप्त हो चुका है और होश मे भी और नशे मे भी मैं उसकी ज़वान से तरह-तरह की वातें सुन चुका हूँ, लेकिन उसकी वह पहली मुलाकात मुझे कभी नही भूलती जव वह नशे मे धुत होने पर भी 'अख्तर शीरानी', 'अख्तर शीरानी' पुकार रहा था और उसे उर्दू का वहुत वड़ा शायर कह रहा था।

वास्तविकता यह है कि 'अख्तर' शीरानी और 'मजाज़' की शायरी की पृष्ठ-भूमि एक है अर्थात् मौलिक रूप से दोनो रोमाटिक शायर हैं। वहाँ भी वेकार जीवन की उदासी का निखार है और यहाँ भी। वहाँ भी शराव है और यहाँ भी। वहाँ भी कोई न कोई 'सलमा' और 'अज़रा' है (अख्तर शीरानी की काल्पनिक प्रियतमाए) और यहाँ भी कोई 'ज़ोहरा जवी'। वहाँ भी ग़ालिव,

---

१. उन्माद २. लक्षण

मोमिन, हाफ़िज़ और ख़्याम का नखशिख है और यहाँ भी। लेकिन आगे चल कर जो चीज़ 'मजाज़' को 'अख़्तर' शीरानी से अलग करती है, वह है 'मजाज़' की प्रगतिशील प्रवृत्ति। खालिस रूप-रस की शायरी करते हुए भी वह अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के प्रभावो तथा परिवर्तनो से पहलू नही बचाता। हुस्न और इश्क का एक अलग ससार बसाने की इच्छा के प्रतिकूल वह हुस्न और इश्क पर लगे प्रतिबन्धो तथा समाज के अन्यायो के विरुद्ध अपना दुख तथा क्रोध प्रकट करता है।

दैवीय अप्सराओ की ओर देखने की बजाय उसकी नज़र रास्ते के गन्दे लेकिन ललित सौदर्य पर पडती है और इन दृश्यो के निरीक्षण के बाद वह जन-साधारण की तरह जीवन के दुख-दर्द के बारे मे सोचता है और फिर अपनी सोच को जिस कविता मे ढालता है उसमे किसी 'ज़ोहरा जबी' से प्रेम-मात्र ही नही होता, एक विद्रोह की भावना भी होती है। यह विद्रोह वह कभी जीवन-व्यवस्था के विरुद्ध करता है, कभी साम्राज्य के विरुद्ध और कभी जीवन की निराशाओ और असफलताओ के वशीभूत इतना कठोर तथा उत्तेजित हो जाता है कि अपनी 'ज़ोहरा जबीनो' के 'सुन्दर महल' तक फूक डालना चाहता है।

कदाचित् इसीलिए 'मज़ाज़' की शायरी पर आलोचना करते हुए उर्दू के एक बुज़ुर्ग शायर तथा आलोचक ने एक बार लिखा था कि "उर्दू मे एक कीट्स (Keats) पैदा हुआ था लेकिन इन्क़लाबी भेडिये उसे उठा ले गये।"

'मजाज़' को इन्क़लाबी भेडिये उठा ले गये या वह स्वय भोली-भाली भेडो के रेवड से निकल आया, इस लम्बे तर्क की यहाँ गुजाइश नही है, हाँ इस वास्तविकता से उर्दू का कोई पाठक इन्कार नही कर सकता कि 'मजाज़' ने जिस प्रकार व्यक्तिगत दुखो को सामाजिक पृष्ठभूमि मे जाँचा है और यथार्थवाद तथा रोमासवाद का सगम तलाश किया है और उसके यहाँ जो लोच तथा विमलता, प्रेम तथा राजनीति, शृगार तथा चिन्तन का सुन्दर समन्वय मिलता है, वह उस की कला-सम्पन्नता के अतिरिक्त इस बात का सूचक भी है कि कोई लेखक या कवि केवल शून्य मे जीवन व्यतीत नहीं कर सकता और न ही अपनी कल्पना के पखो पर उडकर अधिक देर तक किसी कृत्रिम स्वर्ग मे जीवित रह सकता है।

सन् १९३५ मे, जब 'मजाज़' को शायरी करते अभी केवल पाँच वर्ष ही हुए थे और भारत मे अभी प्रगतिशील लेखक-सघ की नीव भी नही पडी थी, 'मजाज़' ने अपना परिचय इन शब्दों में कराया था :

खूब पहचान लो असरार[1] हूँ मैं।
जिन्से-उल्फत[2] का तलवगार हूँ मैं॥
ख्वावे-इशरत मे हैं अरवावे-खिरद[3]।
और इक शायरे-बेदार[4] हूँ मैं॥
ऐव जो हाफिज़ो-खय्याम मे था।
हा कुछ उसका भी गुनहगार हूँ मैं॥
हूरो-ग़िलमा का यहाँ ज़िक्र नही।
नौ-ए-इन्सा का परस्तार हूँ मैं॥

वेशक वह 'हाफिज़' और 'खय्याम' (प्रसिद्ध फारसी कवि जो रूप और मदिरा के उपासक थे) के 'ऐव' का गुनहगार है लेकिन नौ-ए-इन्साँ (मानव) की परस्तिश (उपासना) की यही भावना हर अवसर पर उसकी सहायता करती रही है। यह कोई साधारण वात नही है कि अपनी मस्ती तथा सौंदर्य-प्रेम मे डूबे रहने तथा मौलिक रूप से रोमांसवादी शायर होते हुए भी यदि हर कदम पर नही तो हर मोड़ पर वह प्रगतिशील आन्दोलन के साथ रहा है। मेरे इस दावे के प्रमाण मे 'मजाज़' के निम्नलिखित शेर देखिये जिन्हे मैं तिथिवार प्रस्तुत कर रहा हूँ :

हदें वो खैंच रक्खी है हरम[5] के पासवानों ने।
कि विन मुजरिम वने पैग़ाम भी पहुँचा नही सकता॥ (१६३६)

जवानी की अँधेरी रात है, ज़ुलमत[6] का तूफ़ां है।
मेरी राहो मे नूरे-माहो-अञ्जुम[7] तक गुरेज़ा[8] है॥
खुदा सोया हुआ है अहरमन[9] महशर-वदामा[10] है।
मगर मैं अपनी मञ्ज़िल की तरफ़ वढता ही जाता हूँ॥ (१६३७)

मुफ़लिसी और ये मजाहिर[11] है नज़र के सामने।
सैंकड़ों सुलताने-जाविर[12] है नज़र के सामने॥

---

१. मजाज़ का असल नाम असरारुलहक़ है २. वह वस्तु जिसे प्रेम कहते हैं ३. बुद्धिजीवी ऐश की नींद मे डूबे हुए हैं ४. जागरूक कवि ५. कावे की चारदीवारी ६. अंधकार ७. चाँद-सितारो का प्रकाश ८ कन्नी कतराये हुए ९. शैतान १०. प्रलय मचा रहा है ११. दृश्य १२. अत्याचारी वादशाह

सैकड़ों चंगेज़ो-नादिर[1] हैं नज़र के सामने।
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ[2] ? (१६३७)

ज़हने-इन्सानी[3] ने अब औहाम[4] की ज़ुलमात[5] मे,
ज़िन्दगी की सख्त, तूफानी, अंधेरी रात मे,
कुछ नही तो कम से कम ख्वाबे-सहर[6] देखा तो है,
जिस तरफ देखा न था अब तक, उधर देखा तो है। (१६३६)

बोल री ओ धरती बोल।
राज सिंहासन डावाडोल॥ (१६४५)
ये इकलाब का मुज़दा[7] है इकलाब नही।
ये आफताब[8] का परतौ[9] है आफताब नही॥ (१६४७)

सब्ज़ा-ओ-बर्गो-लाला-ओ-सर्वो-समन[10] को क्या हुआ ?
सारा चमन उदास है हाए चमन को क्या हुआ ?
कोई बताए अज़मते-खाके-वतन[11] को क्या हुआ ?
कोई बताए गैरते-अहले-वतन को[12] को क्या हुआ ? (१६५०)

इन शेरो मे आपको जन-चेतना, स्वतन्त्रता-आन्दोलन, जन-आन्दोलन मे कलाकारो की ज़िम्मेदारी, स्वतन्त्रता तथा स्वतन्त्रता की प्रतिक्रिया इत्यादि हर चीज़ की झलकिया मिल जाएँगी। 'झलकिया' मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योकि 'मजाज़' कितना ही वडा और कैसा ही सामयिक विषय क्यो न प्रस्तुत कर रहा हो कविता के मूल्यो को कभी हाथ से नही जाने देता, और चूंकि उसका दृष्टिकोण मूलरूप से रोमासवादी है, और इसलिए उसकी सौंदर्य-प्रियता हर समय उसके साथ रहती है और उसने क्लासिकल शायरी से विमुख होने की वजाय पुरानी उपमाओ, सकेतो तथा शब्दो को नये अर्थ पहनाना ही उचित समझा है, इसलिए कुछ-एक स्थानो को छोडकर, जहाँ सामाजिक तथा राजनीतिक त्रुटियो के प्रति उत्तेजित हो वह कुछ भावुक तथा ध्वसात्मक हो गया है, सामूहिक रूप

---

१ आक्रमणकारी वादशाह जिन्होंने भारत मे लूट-मार मचाई थी
२. ऐ मेरे हृदय की व्यथा तथा ऐ मेरे हृदय के उन्माद ! मैं क्या करूँ ?
३. मानव-मस्तिष्क ४ भ्रम ५ अंधकार ६ सुवह होने का सपना
७ शुभ समाचार ८ सूरज ९ प्रतिविम्ब १० हरियाली, फूल, पत्ते, सर्व तथा चमेली ११ देश की मिट्टी की महानता १२ देशवासियो के आत्म-गौरव को

से वह सामाजिक तथा राजनीतिक क्रांति के लिए गरजता नहीं, गाता है। और मेरे लिए यही उसकी शायरी का सबसे बड़ा गुण है।

'मजाज़' के कविता-संग्रह 'आहंग' की भूमिका मे फैज अहमद 'फैज' ने भी उसे क्रांति के ढढोरची की बजाय क्रांति के गायक की उपाधि देते हुए बिल्कुल ठीक लिखा था कि :

" 'मजाज़' की इंकिलाबियत आम इंकिलाबी शायरो से मुख्तलिफ है। आम इंक़िलाबी शायर इंकिलाब के बारे मे गरजते हैं, ललकारते है, सीना कूटते हैं, इंकिलाब के मुतअल्लिक गा नही सकते... वे सिर्फ इंकिलाब की हौलनाकी (भयानकता) देखते हैं, उसके हुस्न को नही पहचानते। यह इंकिलाब का तरक्की-पसंद (प्रगतिशील) नही रजअत-पसंद (प्रतिक्रियावादी) तसव्वुर (दृष्टिकोण) है।"

" 'मजाज़' उर्दू शायरी का कीट्स (Keats) है।"

" 'मजाज़' सही अर्थों मे प्रगतिशील शायर है।"

" 'मजाज़' शृंगार रस तथा मदिरा का शायर है।"

" 'मजाज़' नीम-पागल लेकिन निष्कपट व्यक्ति है।"

" 'मजाज़' बड़ा हाज़िरजवाब और लतीफागो है।"

" 'मजाज़' शराबी है।"

" 'मजाज़' केवल शायर है।"

'मजाज़' को पढने वाले, 'मजाज़' से मिलने वाले, 'मजाज़' को जानने वाले घूम-फिरकर 'मजाज़' के सम्बन्ध मे इन्हीं बिन्दुओ पर पहुँचते है, लेकिन यही बिन्दु मिल-जुलकर एक ऐसे उज्ज्वल केन्द्र पर अवश्य मिल जाते हैं जहाँ 'मजाज़' और केवल 'मजाज़' लिखा हुआ है।

अपनी शायरी तथा व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे विभिन्न मतो का मालिक यह शायर २ फरवरी १९०९ के दिन लखनऊ मे पैदा हुआ। बी० ए० तक की शिक्षा लखनऊ, आगरा और अलीगढ़ मे प्राप्त की और आगरा निवास के दिनो मे उसने उर्दू के प्रसिद्ध शायर स्वर्गीय 'फ़ानी' बदायूनी के नेतृत्व मे अपनी उस प्रकाशमान शायरी का प्रारम्भ किया जिसकी चमक आगरा, अलीगढ, दिल्ली और फिर पूरे भारत मे फैल गई।

आज 'मजाज़' चुप है। काश कि उसकी यह चुप्पी तूफ़ान से पहले का उमस सिद्ध हो और वह एक बार फिर नये रंग-रूप के साथ हमारी महफिल पर छाने के लिए इधर आ निकले।

◇ ◇ ◇

रास्ते में रुक के दम ले लूं मेरी आदत नही,
लौटकर वापस चला जाऊ मेरी फितरत नही,
और कोई हम-नवा[1] मिल जाये ये किस्मत नही,
ऐ गमे-दिल क्या करू, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

मुन्तज़िर है एक तूफाने-बला[2] मेरे लिए,
अब भी जाने कितने दरवाजे हैं वा[3] मेरे लिए,
पर मुसीबत है, मेरा अहदे-वफा[4] मेरे लिए,
ऐ गमे-दिल क्या करू, ऐ वहशते-दिल क्या करू ?

जी मे आता है कि अब अहदे-वफा भी तोड दू,
उनको पा सकता हूँ मैं, ये आसरा भी तोड़ दू,
हां मुनासिब है, ये ज़ंजीरे-हवा[5] भी तोड़ दूं,
ऐ गमे-दिल क्या करू, ऐ वहशते-दिल क्या करू ?

इक महल की आड़ से निकला वो पीला माहताब[6],
जैसे मुल्ला का अमामा[7], जैसे बनिये की किताब,
जैसे मुफलिस की जवानी, जैसे बेवा का शबाब[8],
ऐ गमे-दिल क्या करू, ऐ वहशते-दिल क्या करू ?

दिल मे एक शोला भड़क उट्ठा है, आखिर क्या करूँ ?
मेरा पैमाना छलक उट्ठा है, आखिर क्या करू ?
ज़ख्म सीने का महक उट्ठा है, आखिर क्या करू ?
ऐ गमे-दिल क्या करू, ऐ वहशते-दिल क्या करू ?

---

१ साथी २ विपत्तियो का तूफ़ान ३ खुले ४ प्रेम निभाने की प्रतिज्ञा ५ हवा की ज़ंजीर (कभी न निभने वाली वात) ६ चाँद ७ पगडी ८ विधवा का यौवन। इस पद्य मे चाँद की तुलना सभी ऐसी चीज़ो से की गई है, जो जर्जर तथा बुझी-बुझी-सी हैं क्योंकि कवि की मन स्थिति इस समय ऐसी है कि उसे चाँद तक अप्रिय लग रहा है।

जी में आता है ये मुर्दा चाँद तारे नोच लूं,
इस किनारे नोच लूं और उस किनारे नोच लूं,
एक दो का जिक्र क्या, सारे के सारे नोच लूं,
ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

मुफलिसी और ये मज़ाहिर[1] हैं नजर के सामने,
सैकडों सुलताने-जाबिर[2] हैं नज़र के सामने,
सैकडो चगेजो-नादिर हैं नजर के सामने,
ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

ले के इक चंगेज के हाथो से खंजर तोड़ दूं,
ताज पर उसके दमकता है जो पत्थर तोड़ दूं,
कोई तोडे या न तोड़े मै ही बढकर तोड़ दूं,
ऐ गमे-दिल क्या करू, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

बढ़ के इस इन्दरसभा का साजो-सामा फूंक दूं,
इसका गुलशन[3] फूंक दू उसका शबिस्तां[4] फूंक दूं,
तख्ते-सुल्तां[5] क्या, मै सारा कसरे-सुलतां[6] फूंक दूं,
ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

Shivram Lov

---

१ दृश्य २. अत्याचारी बादशाह ३. फुलवाड़ी ४. शयनागार
५. बादशाह का तख्त ६. बादशाह का महल

ग़ज़ल

ख़ातिरे-अह्ले-नज़र[1] हुस्न को मन्ज़ूर नही ।
इसमें कुछ तेरी ख़ता दीदा-ए-महजूर[2] नही ॥

लाख छुपते हो मगर छुप के भी मसहूर[3] नहीं ।
तुम अजब चीज़ हो नज़दीक नही, दूर नही ॥

जुर्रते-अर्ज़ पे[4] वो कुछ नही कहते लेकिन ।
हर अदा से ये टपकता है कि मन्ज़ूर नही ॥

दिल धड़क उठता है ख़ुद अपनी ही हर आहट पर ।
अब क़दम मंज़िले-जाना से[5] बहुत दूर नही ।

हाय वो वक्त कि जब बे-पिये मदहोशी थी ।
हाय ये वक्त कि अब पी के भी मख़मूर नही ॥

देख सकता हूं जो आखो से वो काफी है 'मजाज़'।
अह्ले-इरफा की[6] नवाज़िश मुझे मन्ज़ूर नही ॥

१. नज़र रखने वालो (प्रेमियो) की ख़ातिर २ विछोह की मारी हुई आंखें ३ छुपे हुए ४ निवेदन के दुःसाहस पर ५ प्रेमिका के निवास-स्थान मे ६. महात्मा लोगो की ।

कुछ तुझको खबर है हम क्या क्या, ऐ शोरिशे-दौरां[1] भूल गये।
वो जुल्फ़े-परीशां[2] भूल गये, वो दीदा-ए-गिरया[3] भूल गये॥

ऐ शौके-नज़ारा क्या कहिये, नज़रो मे कोई सूरत ही नही।
ऐ ज़ौके-तसव्वुर[4] क्या कीजे, हम सूरते-जानां भूल गये॥

अब गुल से नजर मिलती ही नही, अब दिल की कली खिलती ही नही।
ऐ फ़सले-बहारां[5] रुखसत हो, हम लुत्फे-बहारां भूल गये॥

सब का तो मुदावा[6] कर डाला, अपना ही मुदावा कर न सके।
सब के तो गरेबां सी डाले, अपना ही गरेबा भूल गये॥

ये अपनी वफ़ा का आलम[7] है, अब उनकी जफा को क्या कहिये।
इक नश्तरे-जहर-आगी[8] रख कर नजदीके-रगे-जां[9] भूल गये॥

---

१. कालचक्र २. बिखरे केश ३. आंसू बहाने वाली आंखें ४. कल्पना करने की अभिरुचि ५. वसन्त ऋतु ६. इलाज ७. हालत ८. विष मे बुझा हुआ एक नश्तर ९ गले के निकट है।



फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज'

मुक़ाम 'फ़ैज़' कोई राह में जँचा ही नहीं
जो कू-ए-यार से निकले तो सू-ए-दार चले

फ़ैज़ अहमद

"शेर लिखना जुर्म न सही लेकिन बिना सबब शेर लिखते रहना कुछ ऐसी अक्लमदी भी नही है।" फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' के पहले कविता-सग्रह 'नक्शे-फर्य्यादी' मे उसके इस कथन को पढकर मुझे 'ग़ालिब' का वह वाक्य याद आता है जिसमे उर्दू के उस महान शायर ने कहा था कि "जब से मेरे सीने का नासूर बन्द हो गया है, मैंने शेर कहना छोड दिया है।"

'सीने का नासूर' चाहे प्रेम की भावना हो चाहे स्वतन्त्रता, देश और जन-मित्रता की, शेर (कविता) ही के लिए नही, समस्त ललित कलाओ के लिए अनिवार्य है। अध्ययन, परिश्रम तथा तपस्या से हमे बात कहने का ढग तो आ सकता है लेकिन अपनी बात को सार्थक बनाने और दूसरे के दिल मे उतारने के लिए हमे स्वय अपने दिल मे उतरना पडता है। ससार भर के साहित्य मे हमे ऐसे कई उदाहरण मिल जाएँगे कि किसी कवि या लेखक ने कुछ-एक बहुत अच्छी कवितायें, एक बहुत अच्छा उपन्यास और दस-पन्द्रह बहुत अच्छी कहानियाँ लिखने के बाद लिखने से तौबा कर ली और फिर समालोचको और पाठको के अनुरोध पर जब उसने नये सिरे से अपना क़लम उठाया तो वह बात पैदा न हो सकी जो उसके 'कच्चेपन' के ज़माने मे आप ही आप पैदा हो गई थी। कदाचित् इसी बात के वशीभूत 'नक्शे-फर्यादी' की भूमिका मे 'फ़ैज़' ने अपनी दो-चार कविताओ को 'क़ाबिले-बर्दाशत' कहते हुए लिखा था कि "आज से कुछ वर्ष पहले एक विशेष भावना के मातहत शेर आप ही आप दिल से निकलते थे लेकिन अब विषयो की तलाश करनी पडती है" हम मे से अक्सर

कवियो की कविता किसी आत्मगत् या परगत् प्रेरणा पर आश्रित होती है और यदि उन प्रेरणाओ के वेग मे कमी आजाय या उनके प्रकटीकरण के लिए कोई सहल रास्ता सुझाई न दे तो या तो भावनाओ की तोड-फोड़ करनी पडती है या कहने के ढग की "ऐसी हालत पैदा होने से पहले कवि का कर्तव्य है कि जो कुछ उसे कहना हो कह ले, महफिल का शुक्रिया अदा करे और आज्ञा चाहे।"

'फ़ैज़' की आत्मगत् तथा परगत् प्रेरणाओ मे सब से उग्र प्रेरणा 'सौन्दर्य' है (थी), बल्कि उसने तो यहाँ तक कह दिया था कि

लेकिन उस शोख़ के आहिस्ता से खुलते हुए होट।
हाय उस जिस्म के कम्बख़्त दिलावेज़[1] ख़तूत[2]॥
आप ही कहिये कही ऐसे भी अफ़्सूँ[3] होगे?
अपना मौज़ू-ए-सुख़न[4] इनके सिवा और नही।
तबअए-शायर[5] का वतन इनके सिवा और नही॥

लेकिन इस बन्द के शुरू के 'लेकिन' से पहले उसने जिन चीज़ो को अपना 'मौज़ू-ए-सुख़न' बनाना पसद नही किया था और .

इन दमकते हुए शहरो की फरावा[6] मख़लूक़[7]।
क्यो फक़त मरने की हसरत मे जिया करती है?
ये हसी खेत फटा पड़ता हे जोबन जिनका।
किस लिए इनमे फक़त भूख उगा करती है?

ऐसे प्रश्न उत्तर दिये बिना छोड दिये थे वही 'साधारण और महत्वहीन' प्रश्न बाद मे उसकी आत्मगत् और परगत् प्रेरणाओ का स्रोत बने और इन्ही प्रश्नो ने उसे महफिल का शुक्रिया अदा करके उठ आने से रोका और उर्दू शायरी को एक बडा शायर प्रदान किया।

फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' उर्दू के उन गिनती के बडे शायरो मे से है जिन्होंने काव्य-कला मे नये प्रयोग तो किये लेकिन उनकी नीव पुराने प्रयोगो पर रक्खी, और इस अटल सच्चाई को कभी विस्मृत नही किया कि हर नई चीज़ पुरानी कोख से जन्म लेती है। यही कारण है कि उसकी शायरी का अध्ययन करते हुए हमे किसी प्रकार की अपरिचितता का अनुभव नही होता। अस्पष्ट और मस्तिष्क की पहुँच से परे की उपमाओ से वह हमे उलझन मे नहीं डालता बल्कि

---

१. मनमोहक २ रेखायें ३ जादू ४ काव्य-विषय ५ कवि की प्रकृति का ६. असख्य ७. जनता

हम परवरिशे-लौहो-कलम[1] करते रहेंगे।
जो दिल पे गुज़रती है रकम करते रहेंगे[2] ॥

इन उदाहरणो से मेरा अभिप्राय 'फ़ैज़' और 'गालिब' की शायरी के समान मूल्यो को दिखाना नही है और मेरा मन्तव्य यह भी नही है कि हमे समस्त प्रचीन परम्पराओ को ज्यो का त्यो स्वीकार कर लेना चाहिये। कुछ परम्पराएँ, चाहे वे साहित्य की हो, सस्कृति की या अन्य सामाजिक बातो की, अपना ऐतिहासिक कर्तव्य पूरा करने के बाद अपनी मौत आप मर जाती हैं। उन्हे नये सिरे से जिलाने का मतलब गडे मुर्दे उखाड़ना और ऐतिहासिक विकास से अपनी अनभिज्ञता का प्रमाण देना है। लेकिन इससे भी खतरनाक क्रम यह है कि नयेपन की दौड मे पुरानी चीजो को केवल इसलिये घृणित समझ लिया जाए कि वे पुरानी हैं। धरती, आकाश, चाँद-सितारे, सूरज, समुद्र, पहाड सब पुराने हैं लेकिन ये सब हमे पसन्द है और इसलिये पसन्द हैं क्योकि प्रतिक्षण हम इन्हे बदलते रहते है अर्थात् इनके बारे मे हमारा दृष्टिकोण बदलता रहता है। हम इनके बारे मे नई बातें मालूम कर लेते हैं और इस प्रकार ये समस्त चीज़ें सदैव नई बनी रहती हैं।

यह एक बडी विचित्र लेकिन प्रशसनीय वास्तविकता है कि प्राचीन और आधुनिक उर्दू शायरी की महफिल मे खपकर भी 'फ़ैज़' अपना एक अलग व्यक्तिगत् चरित्र (Individuality) रखता है। उसने तुक, छन्द, पिंगल आदि मे कोई उल्लेखनीय प्रयोग नही किया और न कभी अपना व्यक्तिगत चरित्र प्रकट करने के लिये स्वर्गीय 'मीरा जी' (उर्दू के प्रयोगवादी शायर) की तरह यह कहा है कि "बहुसख्यक शायरो की नज्मे अलग हैं और मेरी नज्मे अलग, और चूंकि दुनिया की हर बात हर किसी के लिये नही होती, इसलिये मेरी नज्मे भी सिर्फ उनके लिये हैं जो उन्हे समझने के योग्य हो।" (यह व्यक्तिगत-चरित्र शायर का व्यक्तिगत-चरित्र है उसकी शायरी का नहीं।) 'फ़ैज़' की शायरी के व्यक्तिगत चरित्र का भेद निहित है उसकी शैली के लोच और सरसता मे, कोमल, मृदुल, लेकिन सौ-सौ जादू जगाने वाले शब्दो के चुनाव मे, 'बेख्वाब किवाड़', 'तरसी हुई निगाहें' और 'आवाज मे सोई हुई शीरीनी' ऐसे वर्णनो और विशेषणो मे, और इन समस्त गुणो के साथ गहरी से गहरी बात कहने के सुन्दर सलीके मे।

अपनी शायरी की तरह अपने जीवन मे भी किसी ने उसे ऊँचा बोलते

---

१. लोह (तलवार) और कलम का पोषण २. लिखते रहेंगे

अपने कोमल तथा मृदु स्वर मे हम से सरगोशियाँ करता है और उसकी सरगोशी इतनी अर्थपूर्ण होती है कि कुछ-एक शब्द कान मे पडते ही हम उसकी पूरी बात समझ जाते हैं। ज़रा 'नक्शे-फर्यादी' का पहला पन्ना उलटिये

रात यू दिल मे तेरी खोई हुई याद आई।
जैसे वीराने मे चुपके से बहार आजाए॥
जैसे सहराओ मे हौले से चले बादे-नसीम[1]।
जैसे बीमार को बेवजह करार[2] आ जाए॥

प्रेमिका की याद आना कोई नया विषय नही है लेकिन इन सुन्दर उपमाओ और अपनी भावाभिव्यक्ति द्वारा उसने इसे बिल्कुल नया और अनूठा बना दिया है। इस एक 'कतए' ही की नही, यह उसकी सारी रचनाओ की विशेषता है कि वे नई भी हैं और पुरानी भी। आधुनिक काल की उत्पत्ति हैं लेकिन अतीत की उपज हैं। नये विषय पुराने नख-शिख मे और पुराने विषय नई शैली मे प्रस्तुत करने की जो क्षमता 'फ़ैज़' को प्राप्त है आधुनिव काल के बहुत कम उर्दू शायर उस तक पहुँचते हैं। ज़रा 'गालिव' का यह शेर देखिये

दिया है दिल अगर उसको बशर[3] है क्या कहिये ?
हुआ रकीब तो हो, नामावर है क्या कहिये ?

और अब इसी विषय को 'फ़ैज़' की कविता 'रकीब' के दो शेरो मे देखिए

तू ने देखी है वो पेशानी, वो रुख़सार, वो होंट,
ज़िन्दगी जिनके तसव्वुर मे मिटा दी हमने।
हमने इस इश्क मे क्या खोया है क्या पाया है ?
जुज़[4] तेरे और को समझाऊँ तो समझा भी न सकूँ।

महबूब, आशिक, रकीब तक ही सीमित नही, 'फ़ैज़' ने हर समय नई और पुरानी बात और नई और पुरानी शैली का बडा सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। 'गालिव' का एक और शेर देखिये

लिखते रहे जुनू की हिकायाते-खू चका[5]।
हरचन्द इसमे हाथ हमारे क़लम हुए[6]॥

और 'फ़ैज़' का शेर है :

---

१ प्रभात समीर २. चैन ३ मनुष्य ४ सिवा ५ खून-भरी गाथा ६ कट गये

हम परवरिशे-लौहो-कलम[1] करते रहेगे।
जो दिल पे गुजरती है रकम करते रहेंगे[2] ॥

इन उदाहरणो से मेरा अभिप्राय 'फैज़' और 'गालिब' की शायरी के समान मूल्यो को दिखाना नही है और मेरा मन्तव्य यह भी नही है कि हमे समस्त प्रचीन परम्पराओ को ज्यो का त्यो स्वीकार कर लेना चाहिये। कुछ परम्पराएँ, चाहे वे साहित्य की हो, सस्कृति की या अन्य सामाजिक बातो की, अपना ऐतिहासिक कर्तव्य पूरा करने के बाद अपनी मौत आप मर जाती है। उन्हे नये सिरे से जिलाने का मतलब गड़े मुर्दे उखाडना और ऐतिहासिक विकास से अपनी अनभिज्ञता का प्रमाण देना है। लेकिन इससे भी खतरनाक क्रम यह है कि नयेपन की दौड मे पुरानी चीजो को केवल इसलिये घृणित समझ लिया जाए कि वे पुरानी हैं। धरती, आकाश, चाँद-सितारे, सूरज, समुद्र, पहाड सब पुराने हैं लेकिन ये सब हमे पसन्द हैं और इसलिये पसन्द हैं क्योकि प्रतिक्षरण हम इन्हे बदलते रहते हैं अर्थात् इनके बारे मे हमारा दृष्टि-कोण बदलता रहता है। हम इनके बारे मे नई बाते मालूम कर लेते हैं और इस प्रकार ये समस्त चीज़ें सदैव नई बनी रहती हैं।

यह एक बडी विचित्र लेकिन प्रशसनीय वास्तविकता है कि प्राचीन और आधुनिक उर्दू शायरी की महफिल मे खपकर भी 'फैज़' अपना एक अलग व्यक्तिगत् चरित्र (Individuality) रखता है। उसने तुक, छन्द, पिंगल आदि मे कोई उल्लेखनीय प्रयोग नही किया और न कभी अपना व्यक्तिगत चरित्र प्रकट करने के लिये स्वर्गीय 'मीरा जी' (उर्दू के प्रयोगवादी शायर) की तरह यह कहा है कि "बहुसख्यक शायरो की नज्मे अलग हैं और मेरी नज्मे अलग, और चू कि दुनिया की हर बात हर किसी के लिये नही होती, इसलिये मेरी नज्मे भी सिर्फ उनके लिये है जो उन्हे समझने के योग्य हो।" (यह व्यक्तिगत-चरित्र शायर का व्यक्तिगत-चरित्र है उसकी शायरी का नही।) 'फैज़' की शायरी के व्यक्तिगत चरित्र का भेद निहित है उसकी शैली के लोच और सरसता मे, कोमल, मृदुल, लेकिन सौ-सौ जादू जगाने वाले शब्दो के चुनाव मे; 'बेख्वाब किवाड़', 'तरसी हुई निगाहे' और 'आवाज़ मे सोई हुई शीरीनी' ऐसे वर्णनो और विशेषणो मे, और इन समस्त गुरगो के साथ गहरी से गहरी बात कहने के सुन्दर सलीके मे।

अपनी शायरी की तरह अपने जीवन मे भी किसी ने उसे ऊँचा बोलते

---

१ लोह (तलवार) और कलम का पोषण २. लिखते रहेगे

नही सुना । वह कुछ इस प्रकार बातें करता है जैसे उसके होंटो से अगर एक ज़रा ऊँची आवाज़ निकल गई तो न जाने कितने मोती चकनाचूर हो जायेंगे ।

वह सेना मे कर्नल रहा जहाँ किसी कोमल-स्वभाव व्यक्ति की गुंजाइश नही होती । उसने कालेज मे प्रोफ़ैसरी की जहा लडके प्रोफ़ैसर तो प्रोफ़ैसर शैतान तक को अपना स्वभाव बदलने पर विवश कर दें । उसने रेडियो की नौकरी की जहा अपने मातहतो को न डाँटना अफसर की नालायक़ी की दलील समझी जाती है । उसने जर्नलिज्म ऐसा जान-जोखम पेशा अपनाया और काफी दिनो तक 'पाकिस्तान टाइम्ज़' का सम्पादक रहा और फिर जब पाकिस्तान सरकार ने उस पर हिंसा द्वारा सरकार का तख्ता उलटने का आरोप लगाकर उसे जेल की सलाखो के पीछे बन्द कर दिया तो उस समय भी उसके होंटो से कुछ इस प्रकार के बोल निकले :

> फ़िक्रे-दिलदारिये-गुलज़ार[1] करूँ या न करूँ ?
> ज़िक्रे-मुर्ग़ाने-गरिफ्तार[2] करूँ या न करू ?
> किस्सा-ए-साज़िशे-अग़ियार[3] कहू या न कहू ?
> शिकवा-ए-यारे-तरहदार[4] करूँ या न करूँ ?
> जाने क्या वज़अ[5] है अब रस्मे-वफा की ऐ दिल !
> वज़अ-ए-देरीना[6] पे इसरार करूँ या न करूँ ?

'फ़ैज़' के स्वर की यह कोमलता, और गम्भीरता उसके क्लासिकल साहित्य के गहन अध्ययन और मौलिक रूप से उसके रोमासवादी शायर होने पर आधारित है । लेकिन उसका रोमासवाद चूंकि भौतिक ससार का रोमासवाद है (बिल्कुल शुरू की कुछ ग़ज़लो और नज़्मो को छोडकर) और शायर का कर्तव्य उसके निकट यह है कि वह जीवन से अनुभव प्राप्त करे और उस पर अपनी छाप लगा कर फिर उसे जीवन को वापिस कर दे, अत उसने बहुत शीघ्र सुर्ख होंटो पर मुस्कराहटो की ज्योति, मरमरी हाथो की कपकपाहटो, मखमली बाहो और दमकते हुए कपोलों के सुनहले पर्दों के उस पार वास्तविक सत्य की झलक देख ली । आशाओ के क़त्लघर, भूख उगाने वाले खेत, खाक मे लियडे हुए और खून मे नहाये हुए वदन और दुर्बलो के कौरो पर झपटती हुई चीलें देख लीं और

१. देश-प्रेम की चिन्ता २ वन्दी पक्षियो की चर्चा ३. ग़ैरो की साज़िश का किस्सा ४ बाँके, रंगीले यार की शिकायत ५ रग-ढग (तरीक़ा) ६. पुराने ढग

अपनी प्रेमिका (रोमांसवाद) से कहने लगा :

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे ?
और भी दुख हैं ज़माने मे मुहब्बत के सिवा ॥
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा ।
मुझ से पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न माँग ॥

और फिर रोमांस से बिल्कुल खाली उसने राजनैतिक कवितायें भी लिखी और देश के प्रेम को ठीक उसी रूप मे व्यक्त किया कि जो प्रेम उसे अपनी प्रेमिका से था। उर्दू के एक समालोचक 'मुमताज़ हुसैन' के कथनानुसार उसकी शायरी मे यदि एक परम्परा 'क़ैस'[1] की है तो दूसरी 'मनसूर'[2] की।

'फ़ैज़' ने इन दोनो परम्पराओ को अपनी शायरी मे कुछ इस प्रकार समो लिया है कि स्वयं उसकी शायरी एक नई परम्परा बन गई है। वह जब भी महफिल मे आया एक छोटी-सी पुस्तक, एक क़तआ, गज़ल के दो-चार शेर, कुछ योंही-सा काव्य-अभ्यास और कुछ विवशताओ की बातें लेकर आया, लेकिन जब भी आया खूब आया। दोस्त-दुश्मन ने सिर हिलाया। यार-दोस्तो मे चर्चा हुई। कुछ लोगो ने उसकी पुस्तक यह कहकर पटक दी कि इसमे रक्खा ही क्या है, लेकिन फिर वही उसे गुनगुनाने भी लगे। यह कितनी आश्चर्यजनक वास्तविकता है कि केवल कुछ सौ शेर और पचास-एक नज्मो का रचयिता होने पर भी 'फ़ैज़' की शायरी एक बाक़ायदा 'स्कूल' (School of Poetry) बन चुकी है और नवीनतम पीढी का कोई उर्दू शायर अपनी छाती पर हाथ रखकर इस बात से इन्कार नही कर सकता कि किसी-न-किसी रूप मे वह 'फ़ैज़' से प्रभावित नही हुआ। करुणा और निष्कपटता, प्रेम और राजनीति, रस और चिंतन का जितना सुन्दर समावेश फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' के यहाँ मिलता है और उसने जिस कौशलता से पुरानी परम्पराओ पर नई परम्पराओ का महल खडा किया है निःसंदेह वह 'फ़ैज़' ही का हिस्सा है और उर्दू की आधुनिक शायरी उसकी इस देन पर जितना गर्व करे कम है।

'फ़ैज़' १९११ मे स्यालकोट मे पैदा हुआ और बी० ए० तक वही शिक्षा पाई। फिर गवर्नमेंट कालेज लाहौर से अँग्रेज़ी और अरबी मे एम० ए० किया।

---

१. लैला का आशिक (मजनूँ) २. एक वली, जिसने खुद को खुदा कहना शुरू कर दिया था।

१९३६ में एम० ए० ओ० कालेज में लैक्चरर हो गया। १९४२ से ४७ तक भारत के सूचना विभाग मे रहा और कर्नल के पद तक पहुँचा। पाकिस्तान बनने के बाद उसने अपना सैनिक-जीवन त्याग दिया और 'पाकिस्तान टाइम्ज़' का सम्पादक हो गया। उस काल मे साहित्यिक कामो के अतिरिक्त मज़दूर आन्दोलन से भी उसका गहरा सम्बध रहा। १९५१ मे 'रावलपिंडी साज़िश केस' मे गिरफ्तार होकर लगभग पाच वर्ष के बाद रिहा हुआ और फिर से 'पाकिस्तान टाइम्ज़' का सम्पादन कर रहा है। शायरी के अलावा उसने आलोचनात्मक लेख भी लिखे हैं।

मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

मैंने समझा था कि तू है तो दरख्शां[1] है हयात,
तेरा गम है तो गमे-दहर का[2] झगड़ा क्या है ?
तेरी सूरत से है आलम[3] में बहारो को सवात[4] ,
तेरी आंखो के सिवा दुनिया में रक्खा क्या है ?
तू जो मिल जाये तो तकदीर नगूं[5] हो जाये ।

यूं न था मैंने फक़त[6] चाहा था यूं हो जाये,
और भी दुख हैं ज़माने मे मुहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा,
अनगिनत सदियों के तारीक वहीमाना तलिस्म[7] ,
रेशमो - अतलसो - कमख्वाब में बुनवाये हुए,
जा-ब-जा बिकते हुए कूचा-ओ-बाज़ार मे जिस्म,
ख़ाक मे लिथड़े हुए, खून मे नहलाये हुए,
जिस्म निकले हुए अमराज के[8] तन्नूरों से,
पीप बहती हुई गलते हुए नासूरों से,
लौट जाती है उधर को भी नजर क्या कीजे ?

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे ?
और भी दुख हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा,
राहतें और भी है वस्ल की राहत के सिवा,
मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

---

१. दीप्तिमान २. संसार के गम का ३. संसार ४. स्थायित्व
५ बदल जाये ६. केवल ७ अंधकारमय जादू ८. रोगो के

तनहाई

फिर कोई आया दिले-ज़ार ! नही कोई नही,
राहरौ[१] होगा, कही और चला जायेगा,
टल चुकी रात, बिखरने लगा तारो का गुबार,
लडखडाने लगे ऐवानो में[२] ख्वाबीदा चिराग़[३] ,
सो गई रास्ता तक-तक के हर इक राहगुज़ार,
अजनबी खाक ने धुँदला दिये कदमो के सुराग़,
गुल करो शम्मए,वढा दो मै-ओ-मीना-ओ-अयाग[४],
अपने बेख्वाव किवाडो को मुकफ्फल कर लो[५],
अब यहा कोई नही, कोई नही आयेगा ।

१ पथिक २ भवनो मे ३ सोये हुए चिराग ४ शराव, सुराही, प्याला ५ ताले लगा लो

चन्द रोज़ और मेरी जान !

चन्द रोज और मेरी जान ! फकत चन्द ही रोज़ !
जुल्म की छाव मे दम लेने पे मजबूर हैं हम,
और कुछ देर सितम सह लें, तडप ले, रो ले,
अपने अजदाद[1] की मीरास है माज़ूर[2] हैं हम,
जिस्म पर कैद है, जज़्बात पे ज़ंजीरे हैं,
फिक्र[3] महबूस[4] है, गुफ्तार[5] पे ताजीरें[6] हैं,
अपनी हिम्मत है कि हम फिर भी जिये जाते हैं,
जिन्दगी क्या किसी मुफलिस की क़बा[7] है जिसमे,
हर घड़ी दर्द के पेवद लगे जाते हैं,
लेकिन इस जुल्म की मीयाद के दिन थोडे है,
इक ज़रा सब्र कि फर्य्याद के दिन थोड़े हैं,
अर्सा-ए-दहर की[8] झुलसी हुई वीरानी में,
हम को रहना है, मगर यूही तो नही रहना है,
अजनबी हाथो का बेनाम गिरांबार[9] सितम[10],
आज सहना है हमेशा तो नही सहना है,
ये तेरे हुस्न से लिपटी हुई आलाम की[11] गर्द,
अपनी दो रोज़ा जवानी की शकिसतो का शुमार,
चाँदनी रातो का बेकार दहकता हुआ दर्द,
दिल की बेसूद तड़प, जिस्म की मायूस पुकार,
चन्द रोज़ और मेरी जान ! फक़त चन्द ही रोज़ !

---

१ पितृगण २ विवश ३ सोच ४. बन्दी ५. बोलने पर
६. दण्ड ७. चुगा ८ ससार-क्षेत्र की ९. बोझल (असह्य)
१०. अत्याचार ११. दुखो की

मौज़ू-ए-सुख़न*

गुल हुई जाती है अफसुर्दा, सुलगती हुई शाम,
धुल के निकलेगी अभी चश्मा-ए-महताब[1] से रात,
और—मुशताक[2] निगाहो की सुनी जायेगी,
और—उन हाथो से मस होगे ये तरसे हुए हात।

उन का आचल है, कि रुख्सार, कि पैराहन[3] है?
कुछ तो है जिस से हुई जाती है चिलमन रगी,
जाने उस जुल्फ की मौहूम[4] घनी छाओ में,
टमटमाता है वो आवेज़ा अभी तक कि नही?

आज फिर हुस्ने-दिलआरा की वही धज होगी,
वही ख्वाबीदा[5] सी आँखें, वही काजल की लकीर,
रगे-रुख्सार पे हल्का-सा वो गाज़े का गुबार,
सदली हाथ पे धुंदली-सी हिना[6] की तहरीर[7]।

अपने अफकार[8] की अशआर की दुनिया है यही,
जाने-मज़मू[9] है यही, शाहिदे-मानी[10] है यही।

आज तक सुर्ख़ो-सियाह सदियो के साये के तले,
आदमो-हव्वा की औलाद पे क्या गुज़री है?
मौत और ज़ीस्त[11] की रोजाना सफ-आराई[12] में,
हम पे क्या गुज़रेगी, अजदाद[13] पे क्या गुज़री है?

---

* काव्य का विषय

१ चाँद का चश्मा २ उत्सुक ३ लिबास ४ कल्पित ५ निद्रित ६. महदी ७ लिखावट, चित्रण ८ चिन्तन ९ विषय की जान १० अर्थो की साक्षी ११ जीवन १२ मुक़ाबले १३ पितृगण

इन दमकते हुए शहरों की फ़रावां[1] मख़लूक़[2],
क्यों फकत मरने की हसरत में जिया करती है ?
ये हसी खेत, फटा पड़ता है जोबन जिन का,
किस लिए इन मे फ़क़त भूख उगा करती है ?
ये हर इक सिम्त[3] पुर-असरार[4] कडी दीवारें,
जल बुझे जिन में हजारों की जवानी के चिराग,
ये हर इक गाम[5] पे उन ख्वाबो की मकतलगाहे[6],
जिन के परतौ[7] से चिरागा[8] हैं हजारों के दिमाग,
ये भी हैं, ऐसे कई और भी मज़मूं होगे,
लेकिन उस शोख के आहिस्ता से खुलते हुए होंट,
हाए उस जिस्म के कमबख्त दिलावेज़[9] खतूत[10],
आप ही कहिये कही ऐसे भी अफसूं[11] होगे ?
अपना मौज़ू-ए-सुखन इन के सिवा और नही,
तबअ्-ए-शायर का[12] वतन इनके सिवा और नही !

१ असख्य २ जनता ३. ओर ४. भेदपूर्ण ५. कदम ६. कत्ल-घर ७ प्रतिविम्ब ८. प्रकाशमान ९. आकर्षक १०. रेखायें ११. जादू १२ कवि की प्रकृति का

मौजू-ए-सुखन*

गुल हुई जाती है अफसुर्दा, सुलगती हुई शाम,
धुल के निकलेगी अभी चश्मा-ए-महताब[1] से रात,
और—मुशताक[2] निगाहो की सुनी जायेगी,
और—उन हाथो से मस होगे ये तरसे हुए हात।

उन का आचल है, कि रुख्सार, कि पैराहन[3] है ?
कुछ तो है जिस से हुई जाती है चिलमन रगी,
जाने उस जुल्फ की मौहूम[4] घनी छाओ मे,
टमटमाता है वो आवेज़ा अभी तक कि नही ?

आज फिर हुस्ने-दिलआरा की वही धज होगी,
वही ख्वाबीदा[5] सी आँखें, वही काजल की लकीर,
रगे-रुख्सार पे हल्का-सा वो गाज़े का गुबार,
सदली हाथ पे धुंदली-सी हिना[6] की तहरीर[7]।

अपने अफकार[8] की अशआर की दुनिया है यही,
जाने-मज़मू[9] है यही, शाहिदे-मानी[10] है यही।

आज तक सुर्खो-सियाह सदियो के साये के तले,
आदमो-हव्वा की औलाद पे क्या गुज़री है ?
मौत और जोस्त[11] की रोजाना सफ-आराई[12] मे,
हम पे क्या गुज़रेगी, अजदाद[13] पे क्या गुज़री है ?

---

* काव्य का विषय

१ चाँद का चश्मा २ उत्सुक ३ लिबास ४ कल्पित ५ निद्रित ६. महदी ७ लिखावट, चित्रण ८ चिन्तन ६ विषय की जान १० अर्थो की साक्षी ११. जीवन १२ मुकावले १३ पितृगण

इन दमकते हुए शहरों की फ़रावां[1] मख़लूक[2] ,
क्यों फकत मरने की हसरत में जिया करती है ?
ये हसी खेत, फटा पड़ता है जोबन जिन का,
किस लिए इन मे फक़त भूख उगा करती है ?
ये हर इक सिम्त[3] पुर-असरार[4] कडी दीवारें,
जल बुझे जिन में हज़ारों की जवानी के चिराग़,
ये हर इक गाम[5] पे उन ख़्वाबों की मक़तलगाहे[6] ,
जिन के परतौ[7] से चिरागां[8] हैं हज़ारो के दिमाग़,
ये भी हैं, ऐसे कई और भी मज़मूं होगे,
लेकिन उस शोख के आहिस्ता से खुलते हुए होंट,
हाए उस जिस्म के कमबख़्त दिलावेज़[9] ख़तूत[10],
आप ही कहिये कही ऐसे भी अफ़सूं[11] होंगे ?
अपना मौज़ू-ए-सुख़न इन के सिवा और नही,
तबअ्-ए-शायर का[12] वतन इनके सिवा और नही !

---

१ असख्य २. जनता ३. ओर ४. भेदपूर्ण ५. कदम ६. कत्ल-घर ७ प्रतिबिम्ब ८. प्रकाशमान ९ आकर्षक १०. रेखायें ११ जादू १२. कवि की प्रकृति का

ग़ज़लें

दोनो जहान तेरी मुहब्बत में हार के।
वो जा रहा है कोई शबे-ग़म गुज़ार के।।

वीरा है मैकदा, खुमो-साग़र उदास हैं।
तुम क्या गये कि रूठ गये दिन बहार के।।

इक फ़ुर्सते-गुनाह[1] मिली वो भी चार दिन।
देखें हैं हम ने हौसले परवरदिगार[2] के।।

दुनिया ने तेरी याद से बेगाना कर दिया।
तुझ से भी दिलफरेब हैं गम रोज़गार के।।

भूले से मुस्करा तो दिये थे वो आज 'फ़ैज़'।
मत पूछ वलवले दिले-नाकर्दाकार[3] के।।

रग पैराहन[4] का, खुशबू जुल्फ लहराने का नाम।
मौसमे-गुल[5] है, तुम्हारे बाम पर आने का नाम।।

दोस्तो, उस चश्मो-लब की कुछ कहो जिसके बगैर।
गुलिस्ता की बात रगी है, न मैख़ाने का नाम।।

---

१. पाप करने का अवकाश २ भगवान् ३ जिस दिल ने गुनाह नही किया ४ लिबास ५ वसन्त ऋतु

फिर नज़र में फूल महके, दिल में फिर शम्मएं जली।
फिर तसव्वुर[1] ने लिया उस बज्म[2] मे जाने का नाम॥
मोहतसिब[3] की खैर, ऊंचा है उसी के फ़ैज़[4] से।
रिंद का, साक़ी का, मै का, खुम[5] का पैमाने का नाम॥
हम से कहते हैं चमन वाले, गरीवाने-चमन[6]।
तुम कोई अच्छा-सा रख लो अपने वीराने का नाम॥
'फ़ैज़' उनको है तक़ाज़ा-ए-वफा[7] हम से जिन्हे।
आशना[8] के नाम से प्यारा है, बेगाने का नाम॥

---

१ कल्पना २. महफिल ३. कोतवाल ४. कृपा (उदारता) ५. शराब का मटका ६. चमन (देश) से निकाले हुए ७. प्रेम निभाने की मांग ८. परिचित



नून० मीम० 'राशिद'

ऐ मेरी हम-रक्स मुझको थाम ले
ज़िन्दगी से भागकर आया हूँ मैं

परिचय

कितनी विचित्र बात है कि 'राशिद' की शायरी मे एशिया और एशियाई देशो का काफी से अधिक वर्णन होने पर भी उसकी शायरी एशियाई नही, यूरोपियन है। और शायद इसीलिए १६४१ मे उसके कविता-सग्रह 'मावरा' की भूमिका लिखते हुए कृष्णचन्द्र ने कहा था कि 'राशिद' ने अपनी शायरी का प्रारम्भ वहा से किया है जहाँ बहुत से शायर अपनी शायरी समाप्त कर देते हैं।

आज चौदह-पन्द्रह वर्ष बाद कृष्णचन्द्र के इस वाक्य को दोहराने की आवश्यकता बाकी नही रह जाती क्योंकि नई पीढी के बहुत से उर्दू शायर 'राशिद' की डगर पर चलते-चलते कही से कही पहुँच चुके हैं, लेकिन जहा तक मुक्तछन्द (Free verse) टैक्नीक का सम्बन्ध है 'मावरा' (दूसरा सस्करण) की कुल ४२ नज्मो मे से केवल २६ निर्बंध नज्मो द्वारा (बल्कि मेरी तुच्छ राय मे तो केवल 'दरीचे के क़रीब', 'इन्तक़ाम', 'बेकरा रात के सन्नाटे में' और 'पहली किरन' ऐसी नज्मो द्वारा) वह सदैव उर्दू की 'प्रयोगवादी' शायरी का प्रवर्तक तथा अगुवा बना रहेगा।

'राशिद' से पहले 'इस्माइल' मेरठी और तसद्दुक हुसैन 'खालिद' ने निर्बंध तथा अतुकान्त छन्द के लिये भूमि समतल करने की कोशिशें की थी, लेकिन उनकी कोशिशें अधूरी और असफल रही और यद्यपि उर्दू की नाज़ुक-मिज़ाज ग़ज़ल को 'हाली' और 'अकबर' इलाहाबादी ने काफ़ी सख्तजान बना दिया था और 'इकबाल' और 'जोश' ने तो ग़ज़ल पर नज्म को प्रधानता देकर उर्दू

शायरी मे एक नई महानता और विशालता उत्पन्न कर दी थी लेकिन पिंगल तथा शैली मे चौंका देने वाले प्रयोग का सेहरा 'राशिद' ही के सिर रहता है।

उर्दू शायरी मे इस अपरिचित तथा वाहरी रूप को परिचित कराने से 'राशिद' का ध्येय उसके अपने कथनानुसार केवल 'नवीनता' नही था वल्कि .

> "यह वात विल्कुल स्पष्ट है कि न केवल एक जाति की मानसिक प्रवृत्तिया दूसरी जाति की मानसिक प्रवृत्तियो से भिन्न होती हैं वलिक एक ही जाति विभिन्न कालो मे विभिन्न प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ प्रस्तुत करती है। अत एक काल मे जो शैली या काव्यधारा या जीवन-दर्शन पसन्द किया जाता रहा हो, आवश्यक नही कि किसी अन्य काल मे भी वह इतनी ही सर्वप्रियता प्राप्त कर सके। समय के ज्वारभाटे से जातियो के सोच-विचार, रूप-उद्भावना तथा नैतिकता के नियमो मे आप ही आप अन्तर पडता रहा है। यह परिवर्तन जातियो की साहित्यिक प्रवृत्तियो पर भी उसी प्रकार प्रभाव डालता है जिस प्रकार उन की दिनचर्या पर। इन परिस्थितियो मे कभी-कभी जाति अपने साहित्यकारो से विभिन्न प्रकार की कृतियो की आशा करने लगती है और जाति की इस मौन-माग से साहित्य मे परिवर्तन होने लगते हैं। लेकिन जव कोई जाति अपनी मानसिक हीनता के कारण यह माँग करने का साहस नही रखती तो कोई साहित्य-रत्न स्वयं ही प्रकट होकर इस गतिरोध को छिन्न-भिन्न कर देता है।

उर्दू शायरी का यह 'साहित्य-रत्न' जिसने स्वय ही प्रकट होकर इस 'गतिरोध' को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया और सफल रहा, पहली अगस्त १९१० को पजाव मे पैदा हुआ और जव उसने होश सभाला तो प्रथम महायुद्ध के वाद भारत के सम्मुख नाना प्रकार की परिस्थितियाँ थी। शताब्दियो की निद्रा तथा नैराश्य के वाद पराधीनता तथा अन्याय के विरुद्ध घोर घृणा जाग उठी थी और धर्म, नैतिकता तथा अंध-विश्वासो की गिरहे खुल रही थी। अतएव मध्यवर्ग के निराशाग्रस्त युवको की भाँति पजाव के घुटे-घुटे वातावरण और रूढि-परम्पराओ के पाले हुए, सामाजिक वंधनो मे वेतरह जकड़े हुए, और काम के भूत से डराये तथा मनोदमन की शिक्षा पाये हुए युवक नूर मोहम्मद 'राशिद' को इन परिवर्तनशील परिस्थितियो मे जिन्दगी 'एक जहर भरा जाम' नजर आने लगी और जिन्दगी की हमाहमी से भागकर उसने काम की ठडी छाया मे सो जाना चाहा। विदेशी शासन-कर्ताओ के प्रति मन-मस्तिष्क मे घृणा

परिचय

कितनी विचित्र बात है कि 'राशिद' की शायरी मे एशिया और एशियाई देशो का काफी से अधिक वर्णन होने पर भी उसकी शायरी एशियाई नही, यूरोपियन है। और शायद इसीलिए १६४१ मे उसके कविता-सग्रह 'मावरा' की भूमिका लिखते हुए कृष्णचन्द्र ने कहा था कि 'राशिद' ने अपनी शायरी का प्रारम्भ वहा से किया है जहाँ बहुत से शायर अपनी शायरी समाप्त कर देते हैं।

आज चौदह-पन्द्रह वर्ष बाद कृष्णचन्द्र के इस वाक्य को दोहराने की आवश्यकता बाकी नही रह जाती क्योंकि नई पीढी के बहुत से उर्दू शायर 'राशिद' की डगर पर चलते-चलते कही से कही पहुँच चुके हैं, लेकिन जहां तक मुक्तछन्द (Free verse) टैक्नीक का सम्बन्ध है 'मावरा' (दूसरा सस्करण) की कुल ४२ नज्मो मे से केवल २६ निर्बंध नज्मों द्वारा (बल्कि मेरी तुच्छ राय मे तो केवल 'दरीचे के क़रीब', 'इन्तकाम', 'बेकरा रात के सन्नाटे में' और 'पहली किरन' ऐसी नज्मो द्वारा) वह सदैव उर्दू की 'प्रयोगवादी' शायरी का प्रवर्तक तथा अगुवा बना रहेगा।

'राशिद' से पहले 'इस्माइल' मेरठी और तसद्दुक हुसैन 'खालिद' ने निर्बंध तथा अतुकान्त छन्द के लिये भूमि समतल करने की कोशिशें की थी, लेकिन उनकी कोशिशें अधूरी और असफल रही और यद्यपि उर्दू की नाजुक-मिजाज ग़ज़ल को 'हाली' और 'अकबर' इलाहाबादी ने काफ़ी सख्तजान बना दिया था और 'इक़बाल' और 'जोश' ने तो ग़ज़ल पर नज्म को प्रधानता देकर उर्दू

शायरी मे एक नई महानता और विशालता उत्पन्न कर दी थी लेकिन पिंगल तथा शैली में चौंका देने वाले प्रयोग का सेहरा 'राशिद' ही के सिर रहता है।

उर्दू शायरी मे इस अपरिचित तथा वाहरी रूप को परिचित कराने से 'राशिद' का ध्येय उसके अपने कथनानुसार केवल 'नवीनता' नही था वल्कि·

"यह वात विल्कुल स्पष्ट है कि न केवल एक जाति की मानसिक प्रवृत्तिया दूसरी जाति की मानसिक प्रवृत्तियो से भिन्न होती है वलिक एक ही जाति विभिन्न कालो मे विभिन्न प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ प्रस्तुत करती है। अत. एक काल मे जो शैली या काव्यधारा या जीवन-दर्शन पसन्द किया जाता रहा हो, आवश्यक नही कि किसी अन्य काल मे भी वह इतनी ही सर्वप्रियता प्राप्त कर सके। समय के ज्वारभाटे से जातियो के सोच-विचार, रूप-उद्भावना तथा नैतिकता के नियमो मे आप ही आप अन्तर पडता रहा है। यह परिवर्तन जातियो की साहित्यिक प्रवृत्तियो पर भी उसी प्रकार प्रभाव डालता है जिस प्रकार उन की दिनचर्या पर। इन परिस्थितियो मे कभी-कभी जाति अपने साहित्यकारो से विभिन्न प्रकार की कृतियो की आशा करने लगती है और जाति की इस मौन-माग से साहित्य मे परिवर्तन होने लगते है। लेकिन जब कोई जाति अपनी मानसिक हीनता के कारण यह माँग करने का साहस नही रखती तो कोई साहित्य-रत्न स्वयं ही प्रकट होकर इस गतिरोध को छिन्न-भिन्न कर देता है।

उर्दू शायरी का यह 'साहित्य-रत्न' जिसने स्वय ही प्रकट होकर इस 'गतिरोध' को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया और सफल रहा, पहली अगस्त १६१० को पजाव मे पैदा हुआ और जव उसने होश संभाला तो प्रथम महायुद्ध के वाद भारत के सम्मुख नाना प्रकार की परिस्थितियाँ थीं। शताब्दियो की निद्रा तथा नैराश्य के वाद पराधीनता तथा अन्याय के विरुद्ध घोर घृणा जाग उठी थी और धर्म, नैतिकता तथा अंध-विश्वासो की गिरहे खुल रही थी। अतएव मध्यवर्ग के निराशाग्रस्त युवको की भाँति पंजाव के घुटे-घुटे वातावरण और रूढि-परम्पराओ के पाले हुए, सामाजिक वंधनो मे वेतरह जकड़े हुए, और काम के भूत से डराये तथा मनोदमन की शिक्षा पाये हुए युवक नूर मोहम्मद 'राशिद' को इन परिवर्तनशील परिस्थितियो मे जिन्दगी 'एक जहर भरा जाम' नज़र आने लगी और जिन्दगी की हमाहमी से भागकर उसने काम की ठंडी छाया में सो जाना चाहा। विदेशी शासन-कर्ताओ के प्रति मन-मस्तिष्क मे घृणा

का भाव उत्पन्न हुआ तो उसे कोई स्वस्थ रूप देने की बजाय उसने फ़िरंगी औरत के शरीर से खेलकर उसे फिरंगी जाति से 'इतक़ाम' लेने का नाम दिया। औरतो के शरीरो से वार-बार लिपटने के बावजूद जब उसकी तृप्ति न हुई और अनगिनत चुम्बनो की मिठास भी उसे सन्तुष्ट न कर सकी तो उसे ससार की प्रत्येक वस्तु मे कामवासना का पहलू नज़र आने लगा, यहाँ तक कि अपनी नज़्म 'अजनबी औरत' की नायिका भी उसे अपनी ही तरह कामग्रस्त नज़र आई, जो रोमास की तलाश मे हज़ारो मील दूर एशिया में आती है। और इस प्रकार उसकी ये मानसिक 'उलझनें इतनी कटु हो गईं कि वह 'खुदकशी' पर उतर आया।

नैराश्य, उद्वेग तथा अवसन्नता की ये घातक प्रवृत्तियाँ टी० एस० इलियट ऐसे पश्चिम के पतनशील कवियो की विशेषतायें हैं और जिस प्रकार काव्य मूल्यो से हटी होने के कारण इनके वर्णन के लिए इलियट को फ्रास से निर्बन्ध तथा अतुकात छन्द लेने पडे थे, उसी प्रकार इस छन्द को उपयुक्त देख 'राशिद' ने इसे अंग्रेज़ी मे उर्दू मे खपाया। इसमे सदेह नही है कि किसी विशेष छद के अनुसार शेर गढ लेना काफी आसान काम है लेकिन विचारो की गति के अनुसार छद का निर्माण करना, विचारो के उतार-चढ़ाव के अनुसार पक्तियो की लम्बाई-चौडाई निश्चित करना, ठीक स्थान पर तुक विठाना और इन सब के सुन्दर समन्वय से एक सच्चा छदवद्ध प्रभाव उत्पन्न करना इतना कठिन है कि यह हर किसी के बस की बात नही। इसके लिए 'राशिद' ऐसे कलाकार ही की आवश्यकता होती है जो प्रत्येक पक्ति वल्कि प्रत्येक शब्द को नगीने की तरह जड सके।

लेकिन मन स्थिति को उपयुक्त ढग से प्रस्तुत करने के लिए पुरानी शैली के खडखडाते राग को किसी नई लय मे बदल देने से ही कोई शायर महान् शायर नहीं बन सकता। महान् शायरी रूप तथा विषय-वस्तु के सतुलन के साथ-साथ रूप की सुन्दरता तथा विषय-वस्तु के स्वास्थ्य की पावद होती है। 'राशिद' के यहाँ एक चीज़ कमाल की सीमा पर है लेकिन दूसरी नहीं के बराबर।

आल-इडिया रेडियो दिल्ली के बाद आजकल 'राशिद' पाकिस्तान रेडियो पेशावर मे है और एक कविता-सग्रह देने के बाद लगभग सो गया है।

इंतक़ाम

उसका चेहरा, उसके खद्दोखाल[1] याद आते नही,
इक शबिस्तां[2] याद है,
इक बरहना[3] जिस्म आतिशदां के पास,
फ़र्श पर क़ालीन, क़ालीनो पे सेज,
धात और पत्थर के बुत,
गोशा-ए-दीवार मे[4] हंसते हुए,
और आतिशदां मे अंगारों का शोर,
उन बुतों की बेहिसी पर खश्मगीं[5] !
उजली-उजली ऊची दीवारो पे अक्स[6] ,
उन फिरंगी हाकिमों की यादगार
जिनकी तलवारों ने रक्खा था यहां,
संगे-बुनियादे-फ़िरंग[7] ।

उसका चेहरा उसके खद्दोखाल याद आते नही,
एक बरहना जिस्म अब तक याद है,
अजनबी औरत का जिस्म,
मेरे 'होटों' ने लिया था रात भर,
जिससे अरबाबे-वतन की[8] बेबसी का इंतक़ाम,
वो बरहना जिस्म अब तक याद है ।

---

१. नैन-नक्श २. शयनागार ३. नग्न ४. दीवार के कोने मे ५. क्रोधित ६. प्रतिबिम्ब ७. अंग्रेजी राज्य की नींव-शिला ८. देशवासियों की

का भाव उत्पन्न हुआ तो उसे कोई स्वस्थ रूप देने की बजाय उसने फ़िरगी औरत के शरीर से खेलकर उसे फिरगी जाति से 'इतक़ाम' लेने का नाम दिया। औरतो के शरीरो से बार-बार लिपटने के बावजूद जब उसकी तृप्ति न हुई और अनगिनत चुम्मनो की मिठास भी उसे सन्तुष्ट न कर सकी तो उसे ससार की प्रत्येक वस्तु मे कामवासना का पहलू नज़र आने लगा, यहाँ तक कि अपनी नज़्म 'अजनबी औरत' की नायिका भी उसे अपनी ही तरह कामग्रस्त नज़र आई, जो रोमास की तलाश मे हज़ारो मील दूर एशिया मे आती है। और इस प्रकार उसकी ये मानसिक 'उलझनें इतनी कटु हो गई कि वह 'खुदकशी' पर उतर आया।

नैराश्य, उद्वेग तथा अवसन्नता की ये घातक प्रवृत्तियाँ टी० एस० इलियट ऐसे पश्चिम के पतनशील कवियो की विशेषतायें हैं और जिस प्रकार काव्य मूल्यो से हटी होने के कारण इनके वर्णन के लिए इलियट को फ्रास से निर्बन्ध तथा अतुकात छन्द लेने पडे थे, उसी प्रकार इस छन्द को उपयुक्त देख 'राशिद' ने इसे अग्रेज़ी मे उर्दू मे खपाया। इसमे सदेह नही है कि किसी विशेष छद के अनुसार शेर गढ़ लेना काफी आसान काम है लेकिन विचारो की गति के अनुसार छद का निर्माण करना, विचारो के उतार-चढाव के अनुसार पक्तियो की लम्बाई-चौडाई निश्चित करना, ठीक स्थान पर तुक बिठाना और इन सब के सुन्दर समन्वय से एक सच्चा छदबद्ध प्रभाव उत्पन्न करना इतना कठिन है कि यह हर किसी के बस की बात नही। इसके लिए 'राशिद' ऐसे कलाकार ही की आवश्यकता होती है जो प्रत्येक पक्ति बल्कि प्रत्येक शब्द को नगीने की तरह जड सके।

लेकिन मन स्थिति को उपयुक्त ढग से प्रस्तुत करने के लिए पुरानी शैली के खडखडाते राग को किसी नई लय मे बदल देने से ही कोई शायर महान् शायर नही बन सकता। महान् शायरी रूप तथा विषय-वस्तु के सतुलन के साथ-साथ रूप की सुन्दरता तथा विषय-वस्तु के स्वास्थ्य की पाबद होती है। 'राशिद' के यहाँ एक चीज़ कमाल की सीमा पर है लेकिन दूसरी नहीं के बराबर।

आल-इडिया रेडियो दिल्ली के बाद आजकल 'राशिद' पाकिस्तान रेडियो पेशावर मे है और एक कविता-सग्रह देने के बाद लगभग सो गया है।

इंतक़ाम

उसका चेहरा, उसके खद्दोखाल[1] याद आते नही,
इक शबिस्तां[2] याद है,
इक बरहना[3] जिस्म आतिशदां के पास,
फ़र्श पर क़ालीन, क़ालीनों पे सेज,
धात और पत्थर के बुत,
गोशा-ए-दीवार मे[4] हंसते हुए,
और आतिशदां मे अंगारो का शोर,
उन बुतों की बेहिसी पर खश्मगी[5] !
उजली-उजली ऊंची दीवारो पे अक्स[6] ,
उन फ़िरंगी हाकिमो की यादगार
जिनकी तलवारों ने रक्खा था यहां,
संगे-बुनियादे-फ़िरंग[7] ।

उसका चेहरा उसके खद्दोखाल याद आते नही,
एक बरहना जिस्म अब तक याद है,
अजनबी औरत का जिस्म,
मेरे 'होटो' ने लिया था रात भर,
जिससे अरबाबे-वतन की[8] बेबसी का इंतकाम,
वो बरहना जिस्म अब तक याद है।

---

१. नैन-नक्श २. शयनागार ३. नग्न ४ दीवार के कोने मे ५. क्रोधित
६. प्रतिबिम्ब ७. अंग्रेजी राज्य की नींव-शिला ८ देशवासियो की

रक़्स

ऐ मेरी हम-रक्स[1] मुझको थाम ले !
ज़िन्दगी से भाग कर आया हूँ मैं।
डर से लर्ज़ां[2] हू कही ऐसा न हो,
रक्सगह[3] के चोर-दरवाजे से आकर ज़िन्दगी,
ढूढ ले मुझको, निशां पा ले मेरा,
और जुर्मे-ऐश करते देख ले !

ऐ मेरी हम-रक्स मुझको थाम ले,
रक्स की ये गर्दिशें,
एक मुबहम[4] आसिया[5] के दौर मे,
कैसी सरगर्मी से गम को रौंदता जाता हू मैं।
जी मे कहता हू कि हा,
रक़्सगह मे ज़िन्दगी के झांकने से पेशतर[6],
कुलफतो का[7] सगरेज़ा[8] एक भी रहने न पाये।

ऐ मेरी हम-रक्स मुझको थाम ले !
ज़िन्दगी मेरे लिए,
एक खूनी भेडिये से कम नही,
ऐ हसी-ओ-अजनबी औरत ! उसी के डर से मै,
हो रहा हूं लम्हा-लम्हा और भी तेरे करीब,
जानता हू तू मेरी जा भी नही,
तुझ से मिलने का फिर इमका[9] भी नही,

---

१ नृत्य की साथी २. कम्पित ३ नाचघर ४ अस्पष्ट ५ चक्की ६ पूर्व ७ दुख-पीडाओ का ८ रोडा ९ सभावना

तू मेरी उन आरज़ूओं की मगर तमसील[1] है,
जो रहीं मुझसे गुरेज़ां[2] आज तक।

ऐ मेरी हम-रक़्स मुझको थाम ले!
अहदे-पारीना[3] का मै इन्सां नही,
बन्दगी से इस दरो-दीवार की,
हो चुकी हैं ख़्वाहिशें बेसाज़ो-रंगो-नातवां[4],
जिस्म से तेरे लिपट सकता तो हूं,
ज़िन्दगी पर मैं झपट सकता नही!
इसलिए अब थाम ले,
ऐ हसीनो-अजनबी औरत! मुझे अब थाम ले।

---

१. आकार २. दूर (पहलू बचाए हुए) ३. प्राचीन युग ४. राग-रंग-रहित तथा दुर्बल

दरीचे के क़रीब

जाग ऐ शम्म-ए-शबिस्ताने-विसाल[1] ,
मख़मले-ख़्वाब के इस फ़र्शे-तरबनाक[2] से जाग !
लज्ज़ते-शब से[3] तेरा जिस्म अभी चूर सही,
आ मेरी जान मेरे पास दरीचे के करीब,
देख किस प्यार से अनवारे-सहर[4] चूमते हैं,
मस्जिदे-शहर के मीनारो को,
जिनकी रफ़अत[5] से मुझे,
अपनी बरसो की तमन्ना का खयाल आता है।

सीमगू[6] हाथो से ऐ जान ज़रा,
खोल मै-रग[7] जुनूंखेज़[8] आखें,
इसी मीनार को देख,
सुबह के नूर से शादाब सही,
इसी मीनार के साये तले कुछ याद भी है।
अपने बेकार खुदा के मानिंद,
ऊघता है किसी तारीक निहाखाने[9] मे,
एक इफलास[10] का मारा हुआ मुल्ला-ए-हज़ी[11],
एक इफरियत[12]—उदास,
तीन सौ साल की ज़िल्लत का निशा,
ऐसी ज़िल्लत कि नही जिसका मुदावा कोई।

---

१ मिलन के शयनगृह के दीपक (प्रेमिका) २ आनन्द-दायक फ़र्श ३ रात के आनन्दो से ४ ऊषा की किरणें ५ ऊँचाई ६ चाँदी ऐसे (गोरे) ७ शराबी ८ उन्मादपूर्ण ९ अधकारपूर्ण कोठरी १० निर्धनता ११ ग़मगीन मुल्ला १२. भूत

देख बाज़ार में लोगों का हुजूम,
बेपनाह सेल[1] की मानिंद रवां,
जैसे जन्नात[2] बियाबानो मे,
मशअ़लें लेके सरे-शाम निकल आते हैं।
इनमें हर शख़्श के सीने के किसी गोशे मे,
एक दुल्हन सी बनी बैठी है,
टमटमाती हुई नन्ही सी ख़ुदी[3] की क़ंदील[4]।
लेकिन इतनी भी तवानाई[5] नही,
बढके इनमें से कोई शोला-ए-जव्वाला बने,
इनमें मुफ़लिस भी हैं बीमार भी है,
ज़ेरे-अफ़लाक[6] मगर ज़ुल्म सहे जाते हैं।

एक बूढा सा थकामादा सा रहवार[7] हूं मैं
भूख का शाहसवार,
सख़्तगीर और तनोमंद भी है।
मैं भी इस शहर के लोगों की तरह,
हर शबे-ऐश गुज़र जाने पर,
बहरे-जमअ़ ख़सो-ख़ाशाक निकल जाता हूं[8],
चर्ख़े-गर्दं है[9] जहां,
शाम को फिर उसी काशाने[10] में लौट आता हूं।
बेबसी मेरी ज़रा देख कि मैं,
मस्जिदे-शहर के मीनारों को,
इस दरीचे मे से फिर झांकता हूं,
जब इन्हे आलमे-रुख़सत[11] में शफ़क़[12] चूमती है।

---

१. सेलाब २. भूत ३. स्वाभिमान ४. दीपक ५. बल ६ आकाश की छत्र-छाया मे ७. घोडा ८ घोसला बनाने के निमित्त तिनके इकट्ठे करने के लिए ९. घूमने वाला आकाश १० घर ११. विदा होते समय १२. सध्या की लालिमा

मैं उसे वाक़िफ़े-उलफ़त न करूं !

सोचता हू कि बहुत सादा-ओ-मासूम है वो,
मैं अभी उस को शनासा-ए-मुहब्बत[1] न करूं,
रूह को उस की असीरे-गमे-उलफत[2] न करू,
उस को रुसवा न करू वक्फे-मुसीबत[3] न करूं ।

सोचता हू कि अभी रज से आज़ाद है वो,
वाकिफे - दर्द नहीं, खूगरे - आलाम[4] नही,
सहरे - ऐश[5] में उसकी असरे - शाम[6] नहीं,
ज़िन्दगी उसके लिए ज़हर भरा जाम नही ।

सोचता हू कि मुहब्बत है जवानी की खिज़ां,
उसने देखा नही दुनिया मे बहारो के सिवा,
नकहतो - नूर[7] से लबरेज़[8] नज़ारो के सिवा,
सब्ज़ाज़ारो के[9] सिवा और सितारो के सिवा ।

सोचता हू कि गमे-दिल न सुनाऊं उस को,
सामने उसके कभी राज़ को उरिया[10] न करू,
खलिशे-दिल[11] से उसे दस्तो-गरेबा न करू[12],
उसके जज़बात को मैं शोला-बदामा[13] न करू ।

---

१ प्रेम से परिचित २ प्रेम के दुखो मे बन्दी ३ मुसीबतो के हवाले ४ दुखो-पीडाओ की अभ्यस्त ५ ऐश की सुबह ६ शाम का समय ७ सुगन्धि तथा प्रकाश ८ परिपूर्ण ९ फुलवाडियो के १०. प्रकट ११ हृदय की कसक १२. जूझने न दूं १३ शोले की तरह भड़कना

सोचता हूँ कि जला देगी मुहब्बत उसको,
वो मुहब्बत की भला ताब कहां लायेगी ?
खुद तो वो आतिशे-जज़बात मे[1] जल जायेगी,
और दुनिया को इस अंजाम पे तड़पायेगी।

सोचता हूं कि बहुत सादा-ओ-मासूम है वो,
—मैं उसे वाकिफे - उलफत न करूं।

---

१. जज़बात की आग मे

बेकरां रात के सन्नाटे में !

तेरे बिस्तर पे मेरी जान कभी,
बेकरां[1] रात के सन्नाटे मे,
जज़्बा-ए-शौक से हो जाते हैं ऐज़ा[2] मदहोश ।
और लज़्ज़त की गिराबारी[3] से,
ज़हन बन जाता है दलदल किसी वीराने की ।
और कही उसके करीब,
नीद, आगाज़े-ज़मिस्तां[4] के परिंदे की तरह,
खौफ दिल मे किसी मोहूम[5] शिकारी का लिये,
अपने पर तोलती है, चीखती है ।
बेकरां रात के सन्नाटे में !
तेरे बिस्तर पे मेरी जान कभी,
आरजूएँ तेरे सीने के कुहिस्तानो मे[6] ,
ज़ुल्म सहते हुए हब्शी की तरह रेंगती हैं !
एक लमहे के लिए दिल में खयाल आता है,
तू मेरी जान नही,
बल्कि साहिल के किसी शहर की दोशीज़ा[7] है ।
और तेरे मुल्क के दुश्मन का सिपाही हू मैं,
एक मुद्दत से जिसे ऐसी कोई शब न मिली,
कि ज़रा रूह को अपनी वो सुबकबार[8] करे ।
बेपनाह ऐश के हेजान[9] का अरमा लेकर,
अपने दस्ते से कई रोज़ से मफरूर हू मैं ।
ये मेरे दिल में खयाल आता है,
तेरे बिस्तर पे मेरी जान कभी,
बेकरा रात के सन्नाटे मे ।

---

१ अथाह २ अग ३ बोझ ४ शरद ऋतु की शुरूआत ५ कल्पित
६ पहाडी स्थानो मे ७ सुकुमारी ८. हल्का ९. आवेग



मुईन अहसन जज़्बी

इक तरफ़ लब तक नहीं खुलते हैं फ़र्ते-यास से
इक तरफ़ 'जज़्बी' मुझे शौक़े-ग़ज़ल-ख़्वानी भी है

परिचय

नई दिल्ली के एक शानदार होटल मे एक कोने की मेज पर पाच-छः व्यक्ति बैठे चाय पी रहे थे और आपस मे हसी-मजाक कर रहे थे कि एकाएक इर्द-गिर्द की मेजो पर बैठे हुए भद्र लोगो ने उस मेज पर एक हगामा-सा होते देखा। पाच-छ व्यक्तियो की वह टुकडी किस बात पर आपस मे उलझ पडी थी, यह तो खैर किसी को मालूम न हो सका क्योकि ऊँचे स्वर के बावजूद उनकी बातें लोगों की समझ मे नही आ रही थी, अलवत्ता यह जरूर दिखाई दिया कि नौबत हाथापाई तक पहुँचे बिना नही रहेगी। विशेष रूप से गजे सिर, ऊबड-खाबड भवो और मजबूत जबडे वाला एक नाटे क़द का व्यक्ति अपने सामने के साथी के मु ह पर घू सा जमाये बिना नही टलेगा। लेकिन लोग आश्चर्य से एक दूसरे का मु ह देखने लगे जब कुछ क्षणो के बाद ही वे सब पुन घी-शक्कर हो गये और उस टुकडी के वे दोनो मुख्य पात्र जो अभी-अभी मरने मारने पर उतारू थे, एक-दूसरे के हाथ मे हाथ डालकर एक-दूसरे की आखों मे झांकने और मुस्कराने लगे।

गजे सिर, ऊबड-खावड भवो, मजबूत जबडे और नाटे कद का यह व्यक्ति उर्दू का प्रसिद्ध शायर 'जज्बी' था। टुकडी मे सबके सब उर्दू के माने हुए शायर और अदीब (लेखक) थे और उसका अभी कुछ समय पहले का प्रति-द्वन्द्वी 'जज्बी' ही की तरह एक प्रसिद्ध शायर और उसका घनिष्ट मित्र था और वे काव्य-चर्चा करते-करते एक बात पर आपस में उलझ पडे थे।

'जज्बी' ने अपने मित्र के हाथ को प्यार से दबाते हुए कहा, "प्यारे! मैं

शेर कहना छोड दूंगा। आखिर ऐसी शायरी से क्या फायदा जो दोस्ताना ताल्लुकात भी कायम न रहने दे।"

और उसके प्यारे मित्र और समकालीन शायर ने सिगरेट का धुआँ उसके चेहरे पर बिखेरते हुए और गुर्राते हुए कहा "अगर तुम ने शायरी छोड़ दी जज्बी ! तो याद रखो, मैं तुम्हें क़त्ल कर दूंगा।" और फिर सब से सम्बोधित हो उसने बडी उत्सुकता से कहा, "अब हम 'जज्बी' से उनकी नई गजल सुनेंगे।"

"यहां ?" जज्बी ने बड़े आश्चर्य से आस-पास बैठे हुए भद्र लोगों की ओर देखा।

"हा, यही," उसका मित्र पुन गुर्राया। और कुछ इन्कार और कुछ इसरार के बाद पाच-छ लेखको, शायरो और समालोचको की वह टुकडी 'जज्बी' के शेरो पर दाद देने और सिर धुनने मे व्यस्त हो गई।

'जज्बी' और उसके उस समकालीन शायर की यह झडप काव्य-विषय और उसके रूप के सम्बन्ध मे हुई थी। उसका मित्र विषय को रूप पर प्रधानता दे रहा था और 'जज्बी' रूप और विषय दोनो को बराबर का दर्जा देने के पक्ष मे था। दोनो प्राचीन शायरो की कला-कृतियो के उदाहरण दे-देकर अपनी बात मनवाने का प्रयास कर रहे थे कि एक शेर पर तकरार हो गई। 'जज्बी' के समीप वह शेर कला की दृष्टि से घटिया श्रेणी का था और उसके मित्र के विचार मे वह शेर इसलिए उच्चकोटि का था कि उसमे शायर ने बडी दो-टूक बात की थी और उसका विषय प्रगतिशील था।

'जज्बी' की शायरी के सम्बन्ध मे आम धारणा यह है कि वह केवल आत्मगत अनुभूतियों का शायर है और जान-बूझ कर अपनी 'कला' को परिस्थितियों की पकड से बचाये रखना चाहता है। उसके यहा विषय पर रूप को महत्व दिया जाता है और इस सम्बन्ध मे एक बार एक समालोचक ने उसे "केवल शब्दो का जौहरी" कहकर उसकी शायरी की निंदा की थी। एक और समालोचक ने उसे निराशावादी शायर सिद्ध करके 'फानी' (उर्दू का एक प्रसिद्ध निराशावादी शायर) का चर्बा कहा था और एक और महाशय ने उसे प्रतीकवादी शायर की उपाधि दी थी।

यह सही है कि ऊपरी ढंग से देखने से हमे 'जज्बी' के यहा इन अवगुणो की झलक मिलेगी लेकिन यदि हम उस की शायरी का क्रमानुसार मूल्याङ्कन करें और जैसा कि शायर का अधिकार है किंचित (Imaginative Sympathy) से काम लें तो हमे 'जज्बी' की शायरी पर उक्त प्रकार के 'फतवे' न

केवल अनुचित नज़र आयेंगे बल्कि निराधार भी। हमे उसके यहाँ अन्तर्गति और कला का एक ऐसा सुन्दर समावेश मिलेगा जो उर्दू की नई पीढ़ी के बहुत कम शायरो के हिस्से में आया है और जिसके लिए एक दो दिन की नहीं वर्षों की तपस्या चाहिये। काव्य-रूप के साथ उसका मैत्रीपूर्ण व्यवहार (Friendly terms with the form), अतीत की उत्तम परम्पराओ को अपने सामाजिक वातावरण के साथ सम्बन्धित देखने का बोध और जीवन की परगत् प्रेरणाओं की भट्टी मे से तप कर निकला हुआ आत्मानुभव और आत्मगत अनुभूतिया उसकी शायरी में इस प्रकार घुल-मिल गई हैं कि उसका हर शेर हमे रुक जाने और सोचने पर विवश कर देता है और मेरे खयाल से यह दलील उसके एक सफल और बड़ा शायर होने के लिए काफ़ी है।

मुईन अहसन 'जज्बी' का जन्म २१ अगस्त १६१२ को जिला आजमगढ के एक गाँव मे हुआ। दादा डाक्टर अब्दुल ग़फ़ुर स्वय शायर थे और 'मतीर' उपनाम से गज़लें कहते थे। फूफी खातून अकरम उर्दू के प्रसिद्ध लेखक 'राज़िक-उलखैरी' की पत्नी थी और स्वय भी निबन्ध, कहानियाँ आदि लिखती थी। इस प्रकार बचपन मे ही घर के साहित्यिक वातावरण ने 'जज्बी' पर अपना प्रभाव डाला और नौ-दस वर्ष की अल्प आयु मे ही उसने तुक-बन्दी शुरू कर दी और सोलह वर्ष की आयु मे तो बाकायदा ग़ज़लें कहने लगा।

'जज्बी' का जीवन असह्य परिस्थितियो की एक लम्बी दास्तान है। उसने अपने जीवन में ऐसे दिन भी देखे जब उसे सुबह की चाय तो किसी तरह प्राप्त हो गई लेकिन दोपहर के खाने के लिए उसे छ-छ मील पैदल चलकर किसी मित्र-मुलाक़ाती का मुँह देखना पड़ा और कभी-कभी तो फाके तक की नौबत आई। ट्यूशनें कर-करके और पेट पर पत्थर बाँध कर उसने एम० ए० किया और नौकरी के सिलसिले मे बरसो एक ज़िले से दूसरे ज़िले मे, और एक शहर से दूसरे शहर में मारा-मारा फिरता रहा। प्रत्यक्ष है कि उसकी शायरी इस प्रकार की परिस्थितियो से प्रभावित हुए बिना नही रह सकती थी और वह जो कुछ समालोचक उसे निराशावादी शायर सिद्ध करने के लिए उसके निम्न प्रकार के शेरो का उदाहरण देते हैं :

मरने की दुआयें क्यो मागूं, जीने की तमन्ना कौन करे ?
ये दुनिया हो या वो दुनिया, अब *ख्वाहिशे-दुनिया* कौन करे ?

जब कश्ती साबितो-सालिम थी, साहिल की तमन्ना किसको थी ?
अब ऐसी शिकस्ता[1] कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे ?
दुनिया ने हमे छोडा 'जज़्बी', हम छोड़ न दे क्यो दुनिया को ?
दुनिया को समझकर बैठे हैं, अब 'दुनिया-दुनिया' कौन करे ?

—तो एक तो वे शायर के पाँव पर खडे होकर आलोचना करने का कष्ट नही करते और दूसरे उसके उसी काल के निम्न प्रकार के शेरो पर आँखें मीच लेते हैं

किसी से हाले-दिले-बेकरार कह न सका।
कि चश्मे-यास[2] मे आँसू भी आ के बह न सका ॥
न आये मौत खुदाया तबाह-हाली मे।
ये नाम होगा ग़मे-रोज़गार[3] सह न सका ॥

यो तो 'जज़्बी' १६२६ से शेर कह रहा था और :

अल्लाह री बेखुदी कि चला जा रहा हूँ मैं।
मंज़िल को देखता हुआ, कुछ सोचता हुआ ॥
और
हुस्न हूँ मैं कि इश्क़ की तस्वीर।
बेखुदी ! तुझ से पूछता हूँ मैं ॥

ऐसे सुन्दर शेर कह रहा था, लेकिन १६३४ तक उच्चकोटि के पत्रो के सम्पादक धन्यवाद सहित उसकी ग़ज़लें लौटाते रहे। फिर १६३४ मे जब किसी प्रकार 'हुमायूँ' (प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका—लाहौर) मे उसकी वही—'मरने की दुआये क्यो मागूँ' वाली ग़ज़ल प्रकाशित हो गई तो एकदम पाठक और लेखक सभी चौंक उठे और उस गज़ल के बाद से उसकी गणना आधुनिक काल के प्रथम श्रेणी के उर्दू शायरो मे होने लगी। उस ज़माने मे उसने 'एक दोस्त से' और 'ऐ दोस्त' ऐसी सुन्दर नज़्में भी लिखीं, लेकिन सही मानो मे उसकी प्रगतिशीलता का प्रारम्भ १६३७ मे हुआ। उसके करुणा-भाव मे सर्वव्यापकता उत्पन्न हुई और उसने 'फ़ितरत एक मुफ़लिस की नज़र मे' (इस संकलन में शामिल है) जैसी अर्थपूर्ण और जीवन्त नज़्म लिखी। और उसकी उस काल की ग़ज़लो में भी नई दिशाये और नई अदायें मिलने लगीं। दो शेर देखिये :

१. टूटी-फूटी २. शोक-पूर्ण आँख ३. ससार के ग़म।

इक यास भरे[1] दिल पर न हुई तासीर[2] तुम्हारी नज़रो की।
इक मोम के बेहिस टुकडे पर ये नाज़ुक ख़जर टूट गये ॥
मेरी ही नज़र की मस्ती से सब शीशा-ओ-साग़र रक्सा थे[3]।
मेरी ही नज़र की गर्मी से सब शीशा-ओ-साग़र टूट गये ॥

तात्पर्य यह है कि 'जज़्बी' की शायरी बराबर विकास करती रही है। उसकी व्यक्तिगत करुणा सामूहिक करुणा मे परिवर्तित होती रही है। उसके यहाँ जो अनुभूतियाँ और भावावेग थे वे आज भी मौजूद हैं लेकिन आज उन अनुभूतियो और भावावेग पर बुद्धि का पहरा है और बुद्धि के पहरे तले उसकी अनुभूतियाँ तथा भावावेग जहाँ हमे जीवन को समझने मे सहायता देते हैं, वहाँ उसके लिए उत्तम काव्य-विषय और काव्य-रूप जुटाते हैं। काव्य-रूप के सम्बन्ध मे 'जज़्बी' बहुत चौकन्ना है। अपने एक-एक शेर को वह महीनो माझता रहता है और उसे उस समय तक प्रकाशनार्थ नही भेजता जब तक उसे पूरा विश्वास नही हो जाता कि कला की दृष्टि से उस शेर में अधिक काट-छाट की गुंजाइश नहीं है। लेकिन काव्य-रूप पर इतना परिश्रम करने का मतलब यह नही है कि वह काव्य-विषय की अवहेलना कर देता हो। हाँ, इस प्रसग मे वह पाठक से अपने सकेतों तथा अनुभूतियो को समझने की माग अवश्य करता है और उसकी माग पूरी होते ही उसकी हर बात बडे सुन्दर और स्पष्ट रूप से हमारे मस्तिष्क मे उतर जाती है

और फिर आवारा-गर्दी के ज़माने मे—

जब कश्ती साबितो-सालिम थी साहिल की तमन्ना किसको थी ?
अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे ?

—कहने वाले शायर को जीवन के विभिन्न मार्गो मे भटकने के बाद मुस्लिम विश्वविद्यालय (अलीगढ) मे एक लैक्चरर के रूप मे आश्रय मिल जाता है और वह—

क्या तुझको पता क्या तुझको ख़बर दिन-रात ख़यालों मे अपने।
ऐ काकुले-गेती[4] हम तुझको, जिस तरह सवारा करते हैं ॥
ऐ मौजे-बला इनको भी ज़रा दो-चार थपेडे हलके से।
कुछ लोग अभी तक साहिल से तूफ़ा का नज़ारा करते हैं ॥

---

१. निराशा-पूर्ण २. प्रभाव ३ शराब के प्याले और सुराहिया नाच रही थीं ४ दुनिया के केशों की लट (संसार)

—कहता है और इस पर भी उसका कोई समकालीन शायर या समालोचक उससे काव्य-विषय और काव्य-रूप के सम्बन्ध मे उलझ पड़ता है तो किसी शानदार होटल मे बैठे होने के बावजूद उसका जी चाहता है कि वह उसके मुँह पर एक घूसा जमा दे। लेकिन फिर कुछ क्षणो के बाद वह बड़े प्यार से अपने उस प्रतिद्वन्द्वी का हाथ दबाकर उससे कहने लगता है "प्यारे! मैं शेर कहना छोड़ दूगा। आखिर ऐसी शायरी से क्या फायदा जो दोस्ताना ताल्लुकात भी कायम न रहने दे।"

"एक शायर की हैसियत से हमारे लिए जो चीज़ सबसे ज्यादा अहम है, वह ज़िन्दगी या ज़िन्दगी के तजुर्बात हैं। लेकिन कोई तजुर्बा उस वक्त तक मौज़ू-ए-सुखन (काव्य-विषय) नही बनता जब तक उसमे शायर को जज्बे की शिद्दत (भावावेग) और अहसास (अनुभूति) की ताज़गी का यकीन न हो जाए। यही दोनो चीज़ें शायर को कलम उठाने पर मजबूर करती हैं और अगर शायर के पास कोई अपना नुक्ता-नज़र (दृष्टिकोण) है तो उसकी झलक उसके जज़्बात मे भी नज़र आयेगी। यह झलक कभी हल्की होगी, कभी गहरी, लेकिन होगी ज़रूर। क्योकि जज़्बातो-अहसासात शायर की तनकीदी कुव्वतो (समालोचनात्मक शक्तियो) से बचकर नही निकल सकते। अक्ल उन्हे शऊरी तौर पर (बोधात्मक ढग से) परखती है। इस अमल (प्रक्रिया) के बाद शायर के नुक्ता-नज़र का जज़्बातो-अहसासात मे सरायत (प्रवेश) कर जाना लाज़मी है। यहा 'हल' (समाधान) की वज़ाहत (व्याख्या) ज़रूरी नहीं। अंदाज़े-बयान खुद हलकी गम्माज़ी (गवाही देना) करता है। दरिया का बहाव दुरुस्त होना चाहिये, कश्ती कशां-कशां किनारे से आ लगेगी।"

(जज़्बी द्वारा लिखित उसके कविता-संग्रह 'फ़िरोज़ां' की भूमिका मे से)

फ़ितरत एक मुफ़लिस की नज़र में

फितरत के पुजारी कुछ तो बता, क्या हुस्न है इन गुलज़ारो में ?
है कौन-सी रअनाई[1] आखिर, इन फूलो मे, इन खारो में[2] ?

वो ख्वाह[3] सुलगते हो शब भर, वो ख्वाह चमकते हो शब भर,
मैंने भी तो देखा है अक्सर, क्या बात नई है तारो में ?

इस चाद की ठडी किरनो से मुझको तो सुकूँ[4] होता ही नही,
मुझको तो जुनूँ[5] होता ही नही, जब फिरता हूँ गुलज़ारो मे ।

ये चुप-चुप नर्गिस की कलिया, क्या जाने कैसी कलिया हैं ?
जो खिलती हैं, जो हंसती हैं और फिर भी हैं बीमारो में ।

ये लाल शफक[6] ये लाला-ओ गुल[7] इक चिंगारी भी जिन मे नही,
शोले भी नही गर्मी भी नही है तेरे आतिशज़ारो में[8] ॥

उस वक्त कहां तू होता है जब मौसमे-गर्मा का सूरज,
दोज़ख की तपिश भर देता है, दरियाओ में कुहसारो में ।

जाड़े की भयानक रातो मे वो सर्द हवाओ की तेज़ी,
हा वो तेज़ी, वो बेमेहरी[9] जो होती है तलवारो में ।

दरिया के तलातुम[10] का मंज़र[11] हा तुझको मुबारिक हो लेकिन,
इक टूटी-फूटी कश्ती भी चकराती है मझधारो मे ।

---

१. सौन्दर्य २ कांटों मे ३ चाहे ४. शान्ति ५ उन्माद
६. क्षितिज ७ फूल ८. अग्नि-स्थलो मे ९. निर्दयता १० तूफान
११. दृश्य

कोयल के रसीले गीत सुने लेकिन ये कभी सोचा तू ने,
हैं उलझे हुए नग़मे कितने इक साज़ के टूटे तारों मे ?

बादल की गरज बिजली की चमक बारिश में वो तेज़ो तीरों की,
मैं ठिठरा सिमटा सड़कों पर, तू जाम-बलब[1] मैख़ानों मे

सब होशो-ख़िरद[2] के दुश्मन हैं, सब क़लबो[3] जिगर के रहज़न[4] हैं,
रक्खा है भला क्या इसके सिवा इन राहते-जां महपारो[5] मे ?

वो लाख हिलालो[6] से भी हसी, कैसी ज़ोहरा[7] कैसी परवीं[8] ?
इक रोटी का टुकड़ा जो कही मिल जाये मुझे बाज़ारो मे।

जब जेब में पैसे बजते हैं, जब पेट में रोटी होती है,
उस वक़्त ये ज़र्रा हीरा है, उस वक़्त ये शबनम मोती है।

---

१. शराब के भरे प्याले लिए हुए २. बुद्धि ३. हृदय ४. डाकू
५. आनन्ददायक चांद के टुकड़ो (सुन्दरियो) मे ६. पहली रात के चांद
७, ८. सितारो तथा स्त्रियों के नाम

फ़ितरत एक मुफलिस की नज़र में

फितरत के पुजारी कुछ तो बता, क्या हुस्न है इन गुलज़ारो में ?
है कौन-सी रश्रनाई[1] आखिर, इन फूलो मे, इन खारो में[2] ?

वो ख्वाह[3] सुलगते हो शब भर, वो ख्वाह चमकते हो शब भर,
मैंने भी तो देखा है अक्सर, क्या बात नई है तारो में ?

इस चाद की ठडी किरनो से मुझको तो सुकूं[4] होता ही नही,
मुझको तो जुनूं[5] होता ही नही, जब फिरता हूँ गुलज़ारो मे।

ये चुप-चुप नर्गिस की कलिया, क्या जाने कैसी कलिया हैं ?
जो खिलती हैं, जो हसती हैं और फिर भी हैं बीमारो में।

ये लाल शफ़क़[6] ये लाला-ओ गुल[7] इक चिंगारी भी जिन मे नही,
शोले भी नही गर्मी भी नही है तेरे आतिशज़ारो में[8] ॥

उस वक्त कहा तू होता है जब मौसमे-गर्मा का सूरज,
दोज़ख की तपिश भर देता है, दरियाओ में कुहसारो में।

जाड़े की भयानक रातो मे वो सर्द हवाओ की तेज़ी,
हां वो तेज़ी, वो बेमेहरी[9] जो होती है तलवारो मे।

दरिया के तलातुम[10] का मंज़र[11] हां तुझको मुबारिक हो लेकिन,
इक टूटी-फूटी कश्ती भी चकराती है मझधारो मे।

---

१. सौन्दर्य २ काटों मे ३ चाहे ४. शान्ति ५ उन्माद
६ क्षितिज ७ फूल ८. अग्नि-स्थलो मे ९. निर्दयता १०. तूफ़ान
११. दृश्य

कोयल के रसीले गीत सुने लेकिन ये कभी सोचा तू ने,
हैं उलझे हुए नग़मे कितने इक साज़ के टूटे तारो मे ?

बादल की गरज बिजली की चमक बारिश में वो तेज़ी तीरो की,
मैं ठिठरा सिमटा सड़कों पर, तू जाम-बलब[1] मैख़ानो मे

सब होशो-ख़िरद[2] के दुश्मन है, सब क़लबो[3] जिगर के रहज़न[4] है,
रक्खा है भला क्या इसके सिवा इन राहते-जा महपारो[5] मे ?

वो लाख हिलालो[6] से भी हसी, कैसी ज़ोहरा[7] कैसी परवी[8] ?
इक रोटी का टुकड़ा जो कही मिल जाये मुझे बाज़ारों में।

जब जेब में पैसे बजते हैं, जब पेट में रोटी होती है,
उस वक़्त ये ज़र्रा हीरा है, उस वक्त ये शबनम मोती है।

---

१. शराब के भरे प्याले लिए हुए २. बुद्धि ३. हृदय ४. डाकू
५. आनन्ददायक चाद के टुकडो (सुन्दरियो) मे ६. पहली रात के चाद
७, ८. सितारो तथा स्त्रियों के नाम

मौत

अपनी सोई हुई दुनिया को जगा लूं तो चलूं,
अपने गमख़ाने में इक धूम मचा लूं तो चलूं,
और इक जामे-मये-तल्ख़[१] चढा लूं तो चलूं,
अभी चलता हू ज़रा खुद को सभालू तो चलू ।

जाने कब पी थी, अभी तक है मये-गम का खुमार,
धुदला-धुदला नज़र आता है जहाने-बेदार[२] ,
आंधियां चलती हैं, दुनिया हुई जाती है गुबार,
आख तो मल लू, ज़रा होश मे आ लू तो चलू ।

वो मेरा सहर[३] , वो एजाज़[४] कहा है ? लाना,
मेरी खोई हुई आवाज़ कहा है ? लाना,
मेरा टूटा हुआ वो साज़ कहा है ? लाना,
इक ज़रा गीत भी उस साज़ पे गा लू तो चलू ।

मैं थका-हारा था, इतने मे जो आये बादल,
किसी मतवाले ने चुपके से बढ़ा दी बोतल,
उफ़ वो रगीन पुरअसरार[५] खयालों के महल,
ऐसे दो-चार महल और बना लूं तो चलूं ।

---

१. कड़वी (बहुत नशा देने वाली) शराब का प्याला २ जागा हुआ संसार ३. जादू ४. चमत्कार ५. भेदपूर्ण

मुझ से कुछ कहने को आई है मेरे दिल की जलन,
क्या किया मैंने ज़माने मे नहीं जिसका चलन ?
आंसुओ ! तुमने तो बेकार भिगोया दामन,
अपने भीगे हुए दामन को सुखा लूं तो चलूं ।
मेरी आंखों में अभी तक है मुहब्बत का ग़रूर,
मेरे होटो को अभी तक है सदाक़त का ग़रूर,
मेरे माथे पे अभी तक है शरापत का गरूर,
ऐसे वहमो से भी अब खुद को निकालूं तो चलूं ।

ग़ज़लें

इन्तहाए-ग़म में मुझको मुस्कराना आ गया।
हाय इखफाए-मुहब्बत[1] का बहाना आ गया॥
इस तरफ इक आशियाने की हकीकत खुल गई।
उस तरफ इक शोख़ को बिजली गिराना आ गया॥
रो दिये वो खुद भी मेरे गिरया-ए-पैहम[2] पे आज।
अब हकीक़त मे मुझे आसू बहाना आ गया॥
मेरी खाके-दिल भी आखिर उनके काम आ ही गई।
कुछ नही तो उनको दामन ही बचाना आ गया॥
वो खराशे-दिल[3] जो ऐ 'जज़्बी' मेरी हमराज़ थी।
आज उसे भी ज़ख्म बनकर मुस्कराना आ गया॥

० ० ०

शरीके-महफिले-दारो-रसन[4] कुछ और भी है।
सितमगरो[5]! अभी अहले-कफन[6] कुछ और भी हैं॥
रवां-दवा यूंही ऐ नन्ही बूंदियो के अब्र[7]।
कि इस दियार[8] मे उजडे चमन कुछ और भी हैं॥
खुदा करे न थकें हश्र तक जुनूं[9] के पाव।
अभी मनाज़िरे-दश्तो-दमन[10] कुछ और भी हैं।
खुदा करे मेरी वामांदगी[11] को ग़ैरत आये।
अभी मनाजिले-रंजो-मेहन[12] कुछ और भी हैं॥

---

१. छुपाना २ निरन्तर रुदन ३. दिल पर पडी हुई खरोच ४. सूली पर चढने वाली महफ़िल में शामिल ५ अत्याचार करने वालो ६ मरने को तैयार ७ बादल ८. देश ९ उन्माद १०. जगल-बयावानों के दृश्य ११. थकन १२. दुखों-कष्टों की मजिलें

अभी समूम[1] ने मानी कहां नसीम[2] से हार।
अभी तो मारका-हाए-चमन[3] कुछ और भी हैं॥
अभी तो है दिले-शायर मे[4] सैकड़ों नासूर।
अभी तो मोजज़ा-हाए-सुख़न[5] कुछ और भी है॥
दिले-गुदाज़[6] ने आखों को दे दिये आंसू।
ये जानते हुए ग़म के चलन कुछ और भी हैं॥

---

१. विषैला पवन २. सुगंधित पवन ३. बाग़ के मोर्चे ४. कवि के हृदय में ५. कविता के चमत्कार ६. कोमल हृदय



सरदार जाफ़री

वज्द में है बज़्मे-गेती, रक़्स में है कायनात
शायरी को जानते हैं, नारा-ए-मस्ताना हम

और उसकी शायरी बिल्कुल पूरे उतरते हैं। मानव-विकास के क्रम को समझने, जीवन के मिटते हुए मूल्यो का भेद पा लेने, प्रगतिशील शक्तियो से अपना नाता जोडने और अपने 'कवि के कर्तव्य' को पूर्ण रूप से समझने के बाद जब उसने काव्य-क्षेत्र मे कदम रखा और जो कुछ उसे कहना था, बडे स्पष्ट रूप मे कहने लगा तो उर्दू शायरी की परम्पराओ के उपासको का बौखला जाना ठीक उसी तरह जरूरी था जिस तरह 'आज़ाद' को 'नज़ीर' के यहाँ बाजारूपन नज़र आया था। लेकिन आज चूँकि जीवन की गति अठारवी और उन्नीसवीं शताब्दि से कहीं अधिक तेज है और मानव-बोध पहले से कही आगे निकल चुका है, इस लिए सरदार जाफरी को और उसी की तरह सोचने और शायरी करने वा[ले] उर्दू के अन्य प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी शायरो को अपनी बात के सही सि[द्ध] करने मे अधिक प्रतीक्षा नही करनी पडी, और चूंकि सरदार जाफ़री [के] राजनैतिक तथा कलात्मक बोध बडे सतुलित ढग से एक दूसरे मे रच-बस चुके और उसे घटनाओं तथा परिस्थितियो को कवित्व-शक्ति के साथ प्रस्तुत क[रने] की सिद्धि प्राप्त है इसलिए हम देखते हैं कि अपने जिन विचारों को वह हम[तक] पहुँचाना चाहता है, वे विचार प्रत्यक्ष रूप मे हमारे मस्तिष्क मे उतर आ[ते] और हमारे भीतर जो स्थायी चुभन और तडप, उमग और प्रेरणा उत्पन्न [होती] हैं उनसे हमे केवल जीवन को समझने मे ही सहायता नही मिलती बल्कि [हमारे] भीतर सुखप्रद भविष्य के लिए संग्रामशील होने की भावना भी जाग उठ[ती है।]

आधुनिक उर्दू शायरी का यह निडर और स्पष्टवक्ता शायर जो [अपनी] शायरी द्वारा स्वतन्त्रता, शान्ति तथा समानता का प्रचार और परतन्त्र[ता] और साम्राज्य पर कुठाराघात करने के अपराध मे पराधीन भारत में [जेल] भुगत चुका है और स्वाधीन भारत मे भी, २६ नवम्बर १६१३ को ब[लरामपुर] जिला गोडा (अवध) मे पैदा हुआ।

घर का वातावरण यू० पी० के साधारण मध्यवर्गीय मुसलमान [घरानों की] तरह खालिस धार्मिक था और चूंकि ऐसे घरानों मे 'अनीस' के [मर्सियों को] वही स्थान प्राप्त है जो हिन्दू घरानो मे महाभारत और रामायण [को, इसलिए] अली सरदार जाफरी पर भी घर के वातावरण ने प्रभाव डाला [और] छोटी-सी आयु मे ही उसने 'मर्सिये' लिखने शुरू कर दिए और [वह] बराबर मर्सिये लिखता रहा। उसका उस जमाने का एक शेर दे[खिए]

अर्श[1] तक ओस के कतरो की चमक जाने लगी।
चली ठडी जो हवा तारो को नीद आने लगी॥

लेकिन बलरामपुर से हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद जब वह उच्च शिक्षा के लिए मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ पहुँचा और वहाँ उसे अख्तर हुसैन रायपुरी, सिब्ते-हसन, 'जज्बी', 'मजाज़', जा निसार 'अख्तर' और ख्वाजा अहमद अब्बास ऐसे साथी मिले और वह विद्यार्थी आन्दोलनो मे गहरा भाग लेने लगा और फिर विद्यार्थियो की एक हडताल कराने के सिलसिले मे विश्वविद्यालय ने निकाल दिया गया तो उसकी शायरी की धारा आपही आप 'मर्सियो' से राजनीतिक नज्मो की ओर मुड गई और ऐंगलो-ऐरेबिक कालेज, दिल्ली से बी० ए० और लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए० करने और कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बनने के बाद तो उसकी शायरी पूर्णरूप से 'राजनीतिक' हो गई।

उसके समस्त कविता-सग्रह ('परवाज़', 'नई दुनिया को सलाम', 'खून की लकीर', 'अमन का सितारा', 'एशिया जाग उठा' और 'पत्थर की दीवार') के अध्ययन से जो चीज़ बड़े स्पष्ट रूप मे हमारे सामने आती है और जिससे हमे शायर की असाधारण विशेषता का पता चलता है, वह यह है कि उसके समस्त विचारो का केन्द्र मानव है और उसे मानवता के शानदार भविष्य पर पूरा भरोसा है। ऐतिहासिक बोध और सामाजिक अनुभवो द्वारा उसने इस भेद को पा लिया है कि ससार मे व्यक्तियो तथा वर्गो की पराजय तो हो सकती है, और होगी, लेकिन मानव अजेय है। और चूँकि उसका परिश्रम उसके अपने ज्ञान ही का नही, बहुत हद तक उसके वातावरण का भी निर्माता होता है, अतएव वह सदैव विजयी और भाग्यशील रहेगा और यही कारण है कि हमे सरदार जाफरी की शायरी मे किसी प्रकार की निराशा तथा अवसन्नता का चित्रण नही मिलता, वरन् उसकी शायरी हमारे भीतर नई-नई उमगें जगाती है। हम उसके सिद्धान्तों से भले ही सहमत न हो लेकिन उसकी निष्कपटता, उसकी सूझ-बूझ और उसके आशावाद से प्रभावित हुए बिना नही रह सकते। कुछ शेर देखिये :

गो मेरे सिर पे सियाह रात की परछाईं है,
मेरे हाथो मे है सूरज का छलकता हुआ जाम,

---

१. आकाश

मेरे अफकार मे[1] है तल्खी-ए-इमरोज़[2], मगर,
मेरे अशआर मे है इश्रते-फर्दा[3] का पयाम।

◇ ◇ ◇

सिर्फ इक मिटती हुई दुनिया का नज्ज़ारा न कर,
आलमे-तखलीक मे[4] है इक जहाँ ये भी तो देख,
मैंने माना, मरहले हैं सख्त, राहें है दराज़[5],
मिल गया है अपनी मजिल का निशा ये भी तो देख।

◇ ◇ ◇

नया चश्मा है पत्थर के शिगाफो से उबलने को,
जमाना किस कदर बेताब है करवट वदलने को।

◇ ◇ ◇

यहाँ तक कि उसकी रोमाटिक नज्मे भी नैराश्य आदि भावो से नितान्त बची हुई है और उनमें भी सघर्ष की वही भावना क्रिया-शील है जो उसकी राजनीतिक नज्मों मे विद्यमान है। उसकी एक नज्म 'इन्तज़ार न कर' का एक टुकडा देखिए

मैं तुमको भूल गया इसका एतवार न कर,
मगर खुदा के लिए मेरा इतजार न कर।
अजब घडी है मैं इस वक्त आ नही सकता,
सरूरे-इश्क की दुनिया वसा नही सकता,
मैं तेरे साजे-मुहब्बत पे गा नही सकता,
मैं तेरे प्यार के काविल नही हूँ, प्यार न कर,
न कर खुदा के लिए मेरा इतज़ार न कर।

जाफरी की शायरी की आयु लगभग वही है जो भारत मे साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन की। बीस वर्ष का यह जमाना भारत के अतिरिक्त पूरे ससार की उथल-पुथल का जमाना रहा है। एक ओर भारत अंग्रेजी साम्राज्य की दासता से निकलने के लिए सघर्ष कर रहा था तो दूसरी ओर विरोधी शक्तियाँ अपने खूनी जबडे खोले नये-नये देश हडप कर रही थी। एक ओर दूसरे महायुद्ध के भयानक परिणाम ससार को आर्थिक-सकट की लपेट मे ले रहे थे और चारो ओर वेकारी, वेरोजगारी का ताडव-नृत्य हो रहा था तो

१. रचनाओ मे २ आज की कटुतायें ३ सुख-प्रद भविष्य ४ जन्म लेता हुआ ५ लम्बी

दूसरी ओर रूस की समाजवादी व्यवस्था मजिलो पर मजिले तै कर रही थी और ससार के श्रमजीवी उस जीवन-व्यवस्था से प्रभावित हो रहे थे। फिर भारत का विभाजन हुआ और लाखो प्राणी धर्म के नाम पर कट मरे और आज फिर सारे ससार पर तीसरे महायुद्ध के भयकर बादल मँडरा रहे हैं। इस प्रकार की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो मे किसी जागरूक कवि या लेखक का मौन रहना या अपना कोई अलग ससार बसाना किसी प्रकार सभव नही था, अतएव सरदार जाफरी ऐसे मानव-प्रेमी शायर ने हर स्थान पर न केवल अपने मानव-प्रेम की मशाल जलाई बल्कि मानव-शत्रुओ के विरुद्ध अपनी पवित्र घृणा को भी प्रकट किया। 'बगावत', 'अहदे-हाजिर', 'सामराजी लडाई', इकिलाबे-रूस', 'मल्लाहो की बगावत', 'फरेब', 'सैलाबे-चीन', 'जशने बगावत' इत्यादि नज्मो के शीर्षक भर देखने से ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि शायर की उँगली बदलती हुई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो की नब्ज पर रही है और इन नज्मो के अध्ययन से यह वास्तविकता खुलकर सामने आ जाती है कि उसने केवल परिस्थितियो की नब्ज की गति देखने पर ही सन्तोष नही किया, उन धड़कनो के साथ उसके अपने हृदय की धडकनें भी मिलती रही हैं। वह किसी एक जाति, किसी एक वर्ग या एक श्रेणी का शायर नही, पूरी मानवता का शायर है। उसकी शायरी इतिहास के परिवर्तनशील मूल्यो के साथ-साथ जा रही है और उसे शायर के शुभ उद्देश्य का पूरा-पूरा अनुभव है :

मैं हूँ सदियो का तफक्कुर[1], मैं हूँ करनो का[2] खयाल।
मैं हूँ हम-आगोश अज़ल से, मैं अबद से हम-किनार[3]॥
मेरे नग़मे कैदे-माहो-साल से[4] आज़ाद हैं।
मेरे हाथो मे है लाफानी तमन्ना का सितार।
नक्शे-मायूसी मे[5] भर देता हूँ उम्मीदो का रंग।
मैं अता[6] करता हूँ शाखे-आरज़ू[7] को बर्गो-बार[8]॥
चुन लिए हैं बागे-इन्सानी से अरमानो के फूल।
जो महकते ही रहेंगे मैं ने गूँधे हैं वो हार॥

---

१. चिंतन २. कई ज़मानो का ३. आदि और अन्त से मिला हुआ ४. महीनो, साल (समय) की क़ैद से ५. निराशा के चित्रो मे ६. प्रदान ७. अभिलाषा की शाखा ८. पत्र-फल

आर्जी जलवो को दी है ताबिशे-हुस्नो-दवाम[1] ।
मेरी नजरो से है रौशन आदमी की रहगुजार[2] ॥

[नज़्म 'शायर' मे से]

और इसी अनुभव के वशीभूत वह वडी दयानतदारी से अपने कर्तव्य का पालन करता रहा है। एक प्रगतिशील शायर के इन कर्तव्यो को देखते हुए उन आलोचको का उत्तर देने की आवश्यकता वाकी नही रहती जो प्रगतिशील शायरी को खून, आग, तूफान, सैलाव और मजदूर-किसान आदि शब्दो तक सीमित समझते हैं।

सरदार जाफरी की कुछ-एक शुरू की नज़्मो को छोडकर जिनकी कुछ पक्तियो का ढीलापन कानो को खटखकता है, और कुछ ऐसे स्थानो को छोड-कर जहाँ वह शायर कम और उपदेशक अधिक मालूम होता है ('इकबाल' और 'जोश' से प्रभावित होने के कारण या विषय की आधीनता के कारण, क्योकि सरदार जाफरी के मतानुसार शैली और रूप विषय पर आधारित होते हैं)[3] सामूहिक रूप से उसकी शायरी कला के समस्त गुणो को अपने दामन मे लिए हुए है। इस पर उसने उर्दू शायरी को जो नये शब्द और भाव दिए हैं और रूपको को नये अर्थो मे प्रस्तुत किया है और निर्वध तथा अतुकात शायरी को सँवारा निखारा है, उससे आधुनिक उर्दू शायरी को अपनी विभावना और सार्थकता पर गौरव करने का पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त हो गया है।

एक वडा शायर होने के अतिरिक्त सरदार जाफरी एक वडा समालोचक भी है। 'नया अदव' के सम्पादन-काल मे उसने अपनी जिस समालोचनात्मक क्षमता का प्रमाण दिया और अव प्रगतिशील साहित्य का इतिहास लिखते हुए (चार भागो के इस इतिहास का पहला भाग अजुमन तरक्की-ए-उर्दू, अलीगढ से प्रकाशित हो चुका है) जिस वर्णनात्मक शक्ति और ज्ञान के जितने वडे भडार

---

१ सौंदर्य और स्थायित्व की चमक (गर्मी) २ पथ
३ "रूप का सौंदर्य वहुत आवश्यक है लेकिन रूप विपय का मुहताज है। इसलिए कि विपय के विना रूप की कोई कल्पना नही की जा सकती, और चूकि मनुष्य चित्रो और शब्दो के विना कुछ सोच नही सकता इसलिए विपय अपना रूप साथ लेकर आता है। शायर का तजुर्वा और परिश्रम उस रूप को अपनी क्षमता से और अधिक सुन्दर वना सकता है।"

—सरदार जाफरी

को लेकर वह हमारे सामने आया है, उससे यह अनुमान लगाने मे कठिनाई होती है कि वह शायर बड़ा है या समालोचक। शायर और समालोचक के अतिरिक्त वह बहुत अच्छा भाषणकर्त्ता भी है। उसने कहानियाँ भी लिखी है और नाटक भी। लेकिन इतना कुछ कहने और लिखने पर भी उसका कहना यही है कि :

ये तो हैं चन्द ही जलवे जो झलक आये हैं।
रग हैं और मेरे दिल के गुलिस्ता मे अभी ॥
मेरे आगोशे-तखैयुल[1] मे हैं लाखो सुबहें।
आफताब[2] और भी हैं मेरे गरेबा मे अभी ॥

---

१. कल्पना की गोदी मे २. सूरज

नींद

[अपने बच्चे की पहली वर्षगाठ पर]

रात खूबसूरत है,
नीद क्यो नही आती ?

दिन की खश्मगीं[1] नज़रें,
खो गईं सियाही में,
आहनी[2] कड़ो का शोर,
बेड़ियो की झंकारें,
कैदियो की सासो की,
तुदो - तेज़ आवाज़ें,
जेलरो की बदकारी,
गालियो की बौछारें,
बेबसी की खामोशी,
खामशी की फर्य्यादें,
तहनशी अंधेरे में,
शब[3] की शोख दोशीज़ा[4] ,
खारदार[5] तारो को,
आहनी हिसारो को[6] ,
पार कर के आई है।

---

१ क्रोधपूर्ण २ लोहे की ३ रात ४ कुमारी ५ कंटीले ६ लोह-दुर्गों को

भर के अपने आंचल मे,
जगलों की खुशबूएं,
ढंडकें पहाड़ो की,
मेरे पास लाई है।

नीलगूं[1] जवा सीना,
नीलगूं जवा बाहे,
कहकशा[2] की पेशानी,
नीम-चांद का जूड़ा,
मख़मली अंधेरे का,
पैरहन[3] लरज़ता है।
वक्त की सियाह ज़ुल्फ़े,
ख़ामशी के शानों पर,
ख़म-ब-ख़म[4] महकती हैं।
और ज़मी के होंटो पर,
नर्म शबनमी बोसे,
मोतियों के दांतो से,
खिलखिला के हसते हैं।
रात ख़ूबसूरत है,
नींद क्यों नही आती ?

रात पेंग लेती है,
चांदनी के झूले मे,
आस्मान पर तारे,
नन्हे-नन्हे हाथों से,
बुन रहे हैं जादू - सा।

---

१. नीलिमामय २. आकाश-गंगा ३. लिबास ४ उलझी हुई

झींगरों की आवाजें,
कह रही हैं अफसाना,
दूर जेल के बाहर,
बज रही है शहनाई,
रेल अपने पहियो से
लोरिया सुनाती है।
रात खूबसूरत है,
नींद क्यो नही आती ?
रोज़ रात को यूंही,
नींद मेरी आखो से,
बेवफाई करती है,
मुझ को छोड़कर तनहा,
जेल से निकलती है।
बम्बई की बसती मे,
मेरे घर का दरवाज़ा,
जा के खटखटाती है।
एक नन्हे बच्चे की,
अखडियो के बचपन मे,
मीठे - मीठे ख्वाबो के,
शहद घोल देती है।
नर्म - नर्म गालो को,
गर्म - गर्म आखो को,
झुक के प्यार करती है।
इक हसी परी बन कर,
लोरिया सुनाती है,
पालना हिलाती है।

[सेंट्रल-जेल नासिक, १९५०]

दक्कन की शहज़ादी

बम्बई ! ऐ दकन की शहज़ादी !
नीलगूं सुन्दरी अजन्ता की,
अपनी ऊंची चटान से नीचे,
अपने बालो को धोने आई है।
पिडलियां मछलिया हैं सोने की,
पांव डूबे हुए समन्दर मे,
उँगलियां खेलती है पानी से,
जलते हीरे की लाखो आखो से,
पिघले नीलम के नीले होटो से,
मेरे ख्वाबों मे मुस्कराती है।
दिल के तूफान-खेज़ साहिल पर,
मौजें[1] गाती है रक़्स करती है,
झाग के आंचलो को लहराती,
चांदनी की अंगूठिया पहने
भीगे तारों के फूल बरसाती।
तेरी कौसे-क़ज़ह[2] की गरदन में,
मौजे-बहरे-अरब की[3] बांहे है।
तेरे माथे को प्यार करती हैं,
तिरछी परछाइयां जहाज़ों की।
खूं की गरदिश में है मशी[4] का राज़,
नाचती उंगलियों में सूत के तार,
जिस्म पर सीपियो की नर्म चमक,
और नज़रों में मोतियो का गरूर।

---

१. लहरें २ इन्द्रधनुष ३. अरब महासागर की लहरो की ४. मशीन

मैं हिमालय के देस का वासी,
तू समन्दर के गोद की पाली,
क्या कहूँ कैसे याद आती है ?
ज़हन के मलगजी[1] उजाले में,
तेरी तस्वीर झिलमिलाती है,
चाँदनी रात में गुलाब का फूल।

मेरे ख्वाबो की शाहज़ादी है,
तू नही मारवाडियो की कनीज़[2] !
जो तेरा हुस्न बेच खाते हैं,
आह ये नफ़ग्र-खोर ये दल्लाल !
मगरबी मडियो के चकलो मे,
तुझको नीलाम पर चढाते हैं।
और मै गुस्से से काप जाता हूँ,
मैं तेरे हुस्न का मुहाफिज हू।
पाव हैं मेरे देवदार के पेड,
मेरा सीना हिमालिया की चटान,
मेरे दिल, मेरे ज़हन में दिन-रात,
आधिया वर्फ के लवादो मे,
विजलियो के कदम से चलती हैं।
सुर्ख शहपर[3] वगावतो के उकाव[4],
फिक्र के आस्मा पे उडते है।
काले वनियो के चोर हाथो से,
मैं तुझे आन कर छुडा लूंगा।
ऐ समन्दर के हुस्न की वेटी !
मैं तुझे गोद में उठा लू गा !
अपने शायर की दिलनवाज़ है तू।

---

१. धूमिल २ दासी ३ राजपक्षी ४ एक वहुत ऊँचा उडने वाला पक्षी

अनाज

मेरी आशिक़ हैं किसानों की हसी कन्यायें !
जिनके आंचल ने मुहब्बत से उठाया मुझको।
खेत को साफ़ किया, नर्म किया मट्टी को,
और फिर कोख मे धरती की सुलाया मुझको।
खाक-दर-खाक हर इक तह मे टटोला लेकिन,
मौत के ढूंढते हाथों ने न पाया मुझको।
खाक से लेके उठा मुझको मेरा ज़ौके-नमू[1],
सब्ज़ कोंपल ने हथेली में छुपाया मुझको।
मौत से दूर मगर मौत की इक नीद के बाद,
जुंबिशे-बादे - बहारी ने[2] जगाया मुझको।
बालियां फूली तो खेतों पे जवानी आई,
उन परीज़ादो ने बालों में सजाया मुझको।
मेरे सीने में भरा सुर्ख किरन ने सोना,
अपने झूले मे हवाओ ने झुलाया मुझको।
मैं रकाबी मे, पियालो मे महक सकता हूं,
चाहिये बस लबो-रुख़सार का[3] साया मुझको।

मेरी आशिक हैं किसानों की हसी कन्यायें !
गोद से उनकी कोई छीन के लाया मुझको।

---

१. पनपने की इच्छा २. बहार की हवा के झोंके ने ३. होटों और गालों का

हविसे-ज़र ने मुझे आग मे फूका है कभी,
कभी बाज़ार मे नीलाम चढाया मुझको।
सी के बोरो मे मुझे फेंका है तहखानो मे,
चोर-बाज़ार कभी रास न आया मुझको।
वो तरसते हैं मुझे और मैं तरसता हू उन्हे,
जिनके हाथो की हरारत[1] ने उगाया मुझको।

क्या हुए आज मेरे नाज़ उठाने वाले ?
हैं कहा कैदे-गुलामी से छुडाने वाले ?

पत्थर की दीवार

क्या कहूं भयानक है
या हसी है ये मन्ज़र
ख्वाब है कि वेदारी
कुछ पता नही चलता
फूल भी है, साये भी
खाक भी है, पानी भी
आदमी भी, मेहनत भी
गीत भी है, आसू भी
फिर भी एक खामोशी
रूहो-दिल की तनहाई
इक तवील सन्नाटा
जैसे साप लहराये
माहो-साल[1] आते हैं
और दिन निकलते हैं
जैसे दिल की वस्ती से
अजनवी गुज़र जाये

चीखती हुई घड़ियां
ज़ख्म-खुर्दा तायर[2] है
नर्म-रौ सुवक लमहे[3]
मुंजमिद[4] सितारे हैं

---

१. महीने और साल २. घायल पक्षी ३. मन्द गति से चलने वाले हल्के-फुल्के क्षण ४. जमे हुए

रस्सियो की गाठो में
बाजुओ की गोलाई
नीम-जान कदमो मे
बेडियो की शहनाई
हथकडी के हल्को मे
हाथ कसमसाते हैं
फासियो के फदो मे
गरदनें तडपती हैं

पत्थरो की दीवारें !

जो कभी नही रोती
जो कभी नही हसती
उनके सख्त चेहरो पर
रग है न गाजा है
खुरदरे लबो पर सिर्फ
वेहिसी की मोहरें हैं

पत्थरो की दीवारे !

पत्थरो के सीने हैं
जिनमे खून के कतरे
दूध वन नही सकते
पत्थरो के दफ्तर हैं
पत्थरो की मिसलें हैं
पत्थरो के जेलर हैं
वार्डर हैं पत्थर के
पत्थरो के नम्बरदार

पत्थरो की दीवारें !

पत्थरो के फर्श और छत
पत्थरो की महरावें
पत्थरो के बाज़ू है
पत्थरो के दरवाज़े
पत्थरो की अंगड़ाई
पत्थरो के पजो मे
आहनी सलाखे है

और इन सलाखो मे
हसरतें तमन्नाये
आरज़ूएँ, उम्मीदे
ख्वाब और तावीरें[1]
अश्क[2], फूल और शवनम
चाँद की जवां नज़रें
धूप की सुनहरी ज़ुल्फ़
बादलो की परछाई
सुबहो-शाम की परियाँ
मौसमो की लैलाये
सूलियों पे चढ़ती है

और इस अंधेरे मे
सूलियो के साये मे
इंकलाब पलता है
तीरगी के[3] कांटो पर
आफताब चलता है
पत्थरों के सीने से

---

१. स्वप्न-फल २ आसू ३. अन्धकार

सुर्ख़ हाथ उगते हैं
हाथ हैं कि तलवारें
रात की सियाही में
जैसे शम्मअ जलती है
उगलिया फ़ुरोज़ा हैं[1]
बारको के कोनो से
साजिशें निकलती हैं
ख़ामशी की नब्ज़ो मे
घटियां सी बजती हैं

जाने कैसे कैदी हैं
किस जहा से आये है
नाख़ुनो मे कीलें हैं
हड्डिया शिकस्ता[2] है
नौजवान जिस्मो पर
पैरहन[3] हैं जख्मो के
लैनिनी जबीनो पर[4]
खून की लकीरे हैं
अश्क आग के कतरे
सास तुन्द आधी है
बात है कि तूफा है
अबरुओ को[5] जुबिश मे
अज़्म[6] मुस्कराते हैं
और निगह की लर्ज़िश मे
हौसले मचलते है

---

१ चमक रही हैं २. जर्जर ३ वस्त्र ४ लेनिन के विचार रखने वाले माथे (मस्तिष्क) पर ५ भवो की ६ सकल्प

त्योरियो की शिकनो में
नक़्शे-पा[1] बग़ावत के

जितना ज़ुल्म सहते है
और मुस्कराते है
जितने दुख उठाते हैं
और गीत गाते हैं
ज़हर और चढता है
ज़ालिमो की शिद्दत पर
ज़ुल्म चीख उठता है
उनके लब नही हिलते
उनके सर नही झुकते
इक सदा निकलती है
"इंकिलाब जिन्दाबाद!"

खाके-पाक[2] के बेटे
खेतियो के रखवाले
हाथ कारखानो के
इंकिलाब के शहपर
कार्ल मार्क्स के शाही[3]
पत्थरो की कोरो पर
आँधियो की राहों मे
बिजलियों के तूफ़ां मे
गोलियो की बारिश मे
सर उठाये बैठे हैं

१. पद-चिह्न २. पवित्र धरती ३. बाज़ पक्षी

इंकिलाब - सामा है
हिन्द की फजा सारी
नजअ के है आलम मे[1]
ये नज़्मे - ज़रदारी[2]
वक्त के महल मे है
जश्ने - नौ[3] की तैयारी
जश्ने - आम जमहूरी[4]
इक्तिदारे - मज़दूरो[5]
गर्के-आतिशो - आहन[6]
बेकसी - ओ-मजबूरी
मुफ्लिसी-ओ - नादारी

तीरगी के बादल से
जुगनुओ की बारिश से
रक्स मे शरारे है
हर तरफ अधेरा है
और इस अधेरे मे
हर तरफ शरारे हैं
कोई कह नही सकता
कौन सा शरारा कब
बेकरार हो जाये
शोलावार हो जाये[7]
इंकिलाब आ जाये ।

---

१ दम तोडने की स्थिति मे २ पूंजीवादी व्यवस्था ३ नया जश्न ४ जनतंत्र ५ मजदूरो का शासन ६. लोहे और आग मे डूब गई है ७. भड़क उठे



'मख्दूम' मुहीउद्दीन

बिखरी हुई रंगीं किरनों को आँखों से चुनकर लाता हूँ
फ़ितरत के परेशाँ नग़मों से फिर अपना गीत बनाता हूँ

परिचय

" 'मख्दूम' इन दिनो अडर-ग्राउड (Under-ground) है ।"

" 'मख्दूम' इन दिनो जेल मे हैं ।"

" 'मख्दूम' पर हिंसा द्वारा क्राति लाने का दोष लगाया गया है ।"

" 'मख्दूम' हैदराबाद स्टेट एसेम्बली का मैम्बर चुन लिया गया है ।"

" 'मख्दूम' ने अमुक जल्से मे दो घटे तक भाषण दिया और जनता ने उसे कधो पर विठाकर उसका जुलूस निकाला ।"

ये और इस प्रकार की अनगिनत खबरो के साथ-साथ कभी-कभी यह खबर भी सुनने मे आ जाती है कि " 'मख्दूम' ने एक नई नज्म लिखी है और वह अमुक-अमुक पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुई है ।" और लोग उसी शौक से उन पत्रिकाओ के पन्ने उलटने लगते हैं कि जिस शौक से वे 'मख्दूम' को देखने और उसका भाषण सुनने जलसागाहो की ओर लपकते हैं ।

मेरे इस लेख का विषय यद्यपि 'मख्दूम' के साहित्यिक जीवन और उसकी शायरी तक सीमित है लेकिन मैं शायर 'मख्दूम' और राजनीतिज्ञ 'मख्दूम' के बीच कोई विभाजन-रेखा खेंचने मे स्वय को असमर्थ पा रहा हूँ । वास्तव मे 'मख्दूम' की शायरी ही उसकी राजनीति है और उसकी राजनीति उसकी शायरी । और इन दोनो का सम्मिश्रण वह स्वय है ।

'मख्दूम' मुहीउद्दीन का जन्म १६१० मे हैदराबाद के एक साधारण घराने मे हुआ । अपने शिक्षा-काल मे ही उसका सम्बन्ध विद्यार्थियो के आन्दोलनो से बहुत गहरा था और हैदराबाद की 'निजाम-शाही' के अत्याचारो और वहाँ की

जनता की दुर्दशा देखकर तो वह बेतरह तडप उठता था, रो देता था। इसके अतिरिक्त पग-पग पर जो उसे देश की पराधीनता का कटु अनुभव होता था उन मसस्त अनुभूतियो ने मिल-जुलकर एक सीधे-सादे, सरल-स्वभाव विद्यार्थी के मन-मस्तिष्क मे एक ऐसा विष घोल दिया कि उसने न केवल अपने खेलने-खाने के दिन, न केवल अपनी जवानी की खूबसूरत बहारे, बल्कि जनता के कल्याण और देश की स्वतंत्रता के सग्राम मे अपना सब-कुछ अर्पण कर दिया। अपने और बीवी-बच्चो के गुजारे का अच्छा-खासा साधन हैदराबाद सिटी कालेज की प्रोफैसरी छोडकर वह कम्युनिस्ट पार्टी का Whole-timer सदस्य बन गया। और आज अपनी अनथक सेवा तथा बलिदान द्वारा वह हैदराबाद का एक प्रिय जन-नेता है। लोग उसके पास अपने दुख-दर्द का दुखडा लेकर आते हैं और वह स्वयं भी उनका दुख-दर्द बटाने उनकी अधेरी और सेलन-भरी कोठ-रियो और घास-फूस की झोपड़ियों मे जाता है। हैदराबाद का कोई राजनीतिक तथा साहित्यिक अधिवेशन उस समय तक फीका प्रतीत होता है जब तक 'मख्दूम' उसमे भाग न ले।

'मख्दूम' से मुलाक़ात से पहले मेरे मस्तिष्क मे उसका एक विचित्र चित्र था। तलिंगाना-सग्राम के समाचार पढ-पढ कर (जिसका वह हीरो था) मेरे मस्तिष्क मे उसके नैन-नक्श बहुत भयानक रूप धारण करते गये। मैं उसे एक ऐसे मार्शल लीडर के रूप मे देखने लगा जो केवल आदेश देना जानता है और किसी प्रकार की अवज्ञा सहन नही कर सकता। अपनी कुछ नज्मो मे भी वह मुझे पाषाण दीखता था। विशेषत जब कभी मैं उसकी नज्म 'अधेरा' की ये पक्तियाँ पढता .

> बाड के तारो मे उलझे हुए इन्सानो के जिस्म,
> और इन्सानो के जिस्मो पे वो बैठे हुए गिद्ध,
> वो तडखते हुए सर,
> मय्यतें[1] हाथ कटी, पाव कटी,

या 'मशरिक' की ये पक्तिया :

> एक नंगी नाश बे-गोरो-कफ़न[2] ठिठरी हुई,
> मग़रबी चीलो का लुक़्मा[3] खून मे लिथड़ी हुई,

१ लाशें १. बिना कब्र तथा कफन के २. कौर

एक कब्रिस्तान जिसमे नौहाख्वा[1] कोई नही,
एक भटकी रूह है जिसका मका कोई नहीं,
इस ज़मीने-मौत-परवर्दा[2] को ढाया जाएगा।
इक नई दुनिया, नया आदम बनाया जाएग।।

तो उसके खैंचे हुए इन चित्रो से मेरे शरीर के रौंगटे खडे हो जाते थे और मैं नज़्म की पक्तियो से नज़रें हटाकर जेल, फाका, भीख, गोली, खून आदि शब्दो के इस शायर के व्यक्तित्व के सम्बध मे विचित्र बातें सोचने लगता था। लेकिन १९५२ मे जब पहली बार कलकत्ता मे सास्कृतिक समारोह के अवसर पर और फिर देहली मे एक शान्ति-सम्मेलन मे मेरी उससे भेंट हुई और मुझे काफी समीप से उसे देखने का मौका मिला तो मेरी कल्पना के नितात विपरीत वह मुझे अत्यन्त आकर्षक तथा सरल-स्वभाव व्यक्ति दिखाई दिया। मैंने उसे बच्चो के साथ बच्चा बनते, उन्ही की तरह तोतली ज़बान मे उनसे बातें करते और उनके खिलौनो के लिए अपनी जेबें उलटते देखा। विद्यार्थियो के साथ विद्यार्थियो की समस्याओ पर विद्यार्थियो ही की तरह भावुक ढग से बातें करते और लतीफे सुनाते देखा। लेखको तथा कवियो की बैठक मे अपनी नज़्म पर दाद पाकर इस प्रकार प्रसन्न होते देखा जैसे उसे जीवन मे पहली बार दाद मिल रही हो और वह उन सबको अपने से कही बडा और आदरणीय लेखक और कवि समझता हो, और मैं समझता हूँ कि 'मख्दूम' की प्रतिष्ठा मे जहाँ उसके राजनीतिक काम तथा कलाकौशलता का हाथ है वहाँ उसकी लोकप्रियता में उसके इन स्वाभाविक गुणो का भी बहुत बडा योग है। बच्चे उसे बच्चा समझते हैं, विद्यार्थियो मे वह विद्यार्थी नज़र आता है, मज़दूरो के जल्से मे उसे एक पढे-लिखे बुद्धिजीवी के रूप मे पहचानना काफी कठिन हो जाता है। किसान उसे किसान भैया समझते हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी स्त्रियाँ भी उसे अपना सहजातीय समझ बैठती हैं और नि सकोच उसे अपने मन का भेद बता देती हैं। इस प्रसग मे मुझे देहली की एक घटना कभी नही भूलती।

एक बार जब एक छोटी-सी बैठक मे 'मख्दूम' अपनी प्रसिद्ध रोमान्टिक नज़्म 'इन्तजार' सुना चुका तो एक नौजवान लडकी ने, जो उसकी नज़्म से बहुत प्रभावित मालूम होती थी, उसे अलग लेजाकर कहा कि वह चाहती है कि उसका प्रेमी इस नज़्म को अवश्य सुने, लेकिन उसे यह पता न चले कि इसके पीछे उसकी प्रेमिका का हाथ है।

---

१ शोकालाप करने वाला २ मृत्यु द्वारा पाली हुई धरती

'मख्दूम' के हामी भरने पर लडकी ने बताया कि उसका प्रेमी देहली मे नही वल्कि देहली से तीन सौ मील दूर अमृतसर मे रहता है। अतएव तै पाया कि दूसरे दिन प्रात: समय 'मख्दूम' उसके प्रेमी को ट्रक-काल करेगा और टेलीफोन पर उसे वह नज्म सुना देगा। और सचमुच दूसरे दिन अपने सौ काम छोडकर 'मख्दूम' टेलीफोन पर उस लडकी के प्रेमी से कह रहा था

रात भर दीदा-ए-नमनाक[1] मे लहराते रहे।
सास की तरह से आप आते रहे, जाते रहे॥

'मख्दूम' की शायरी का प्रारभ उस ज़माने मे हुआ जव 'अगारे' (सज्जाद ज़हीर, रशीदजहाँ, अहमद अली आदि प्रगतिशील लेखको की रचनाओ का एक सकलन—१९३४, जिसे अग्रेज़ी सरकार ने ज़ब्त कर लिया था) के प्रकाशन द्वारा परम्परागत् साहित्य के विरुद्ध एक विद्रोह शुरू हुआ था। नये लेखक उर्दू साहित्य को नये से नया विषय दे रहे थे, नई से नई शैली से परिचित करा रहे थे लेकिन प्रयोगकाल होने के कारण साहित्य के लगभग प्रत्येक विद्रोही के यहाँ अभी कलात्मक निपुणता नही आई थी। 'मख्दूम' की प्रारभिक शायरी मे भी कई जगह भाषा आदि की त्रुटियाँ मिलती हैं लेकिन यदि उसकी अन्तर्चेतना को देखा जाय तो वह एक स्वाभाविक शायर है और कला के उपनियमो से अलग रहकर वह अपने दिल के टुकडे कागज़ पर रख देता है। उसकी शायरी मे पहाडी झरनो ऐसा वेग भी है और मैदानी नालो ऐसी हस की चाल भी। अपनी शायरी द्वारा वह जनता की सास्कृतिक भूख भी मिटाता है और उन्हे नये जीवन तथा नये समाज के निर्माण के लिए प्रयत्नशील होने पर भी उकसाता है। अपने समकालीन शायरो को सम्बोधन करते हुए एक वार उसने कहा था :

"तुम अपनी कला, कविता का प्रकाश लेकर जनता के अँधेरे दिलो मे उतरते हो। अत्याचारी शासक वर्ग ने उन्हे विद्या, साहित्य, सभ्यता और सस्कृति के सद्गुणो से वचित कर रखा है। वे प्यासो की तरह तुम्हारे गिर्द एकत्र हो जाते हैं। उन्हे तुम्हारे शराव के भवको की आवश्यकता नहीं; उनके जीवन मे पहले ही वहुत-सी गन्दगियां मौजूद हैं।"

और उसका यह कथन ही उसकी शायरी का तात्त्विक गुण है। उसके समीप शायर अपनी शायरी और कला का सम्मान तभी कर सकता है जव वह अपने देश की जनता तथा उसकी स्वतंत्रता और समृद्धि का सम्मान करे। और जहाँ

१. सजल नेत्रो मे

तक उसके अपने व्यक्तित्व का सम्बध है वह न केवल जनता की स्वतन्त्रता और समृद्धि के सग्राम का सम्मान करता है बल्कि तन, मन, धन हर तरह से उस सग्राम मे अपना योग दे रहा है। हैदराबाद के तरुण शायरो के लिए तो वह एकदम पूजनीय है। वहाँ का कोई तरुण उर्दू लेखक अथवा शायर ऐसा नही जो 'मख्दूम' से और 'मख्दूम' की शायरी से प्रभावित न हुआ हो और जिसने 'मख्दूम' के ढग मे नज़्मे लिखने का प्रयास न किया हो।

हैदराबाद के तरुण लेखक तथा शायर ही नही, हैदराबाद की जनता को भी उसके प्रति असीम स्नेह तथा श्रद्धा है। इस स्नेह तथा श्रद्धा का एक उदाहरण देखिये वहाँ का एक व्यक्ति जिसने 'मख्दूम' को केवल दूर से देखा था, उस से इतना प्रभावित हुआ कि उसने 'मख्दूम' जैसी अपनी धज बना ली। उसी कोमल स्वर मे बातचीत करने लगा, उसी जैसे वस्त्र पहनने लगा, यहाँ तक कि जब उसे मालूम हुआ कि 'मख्दूम' का वज़न उसके वज़न से कम है तो उपवास करके उसने अपना वज़न कम कर लिया। यह तो खैर एक व्यक्ति का उदाहरण है, ज़रा इस स्नेह तथा श्रद्धा का अनुमान लगाइये एक बार 'मख्दूम' हैदराबाद के एक दस हज़ार के जनसमूह मे भाषण दे रहा था और शहर मे उसकी गिरफ्तारी की खबरें उड रही थी। सभा समाप्त हो गई लेकिन लोग उसी प्रकार बैठे रहे। 'मख्दूम' ने इसका कारण पूछा तो लोगो ने बताया "हम आपको छोडकर नही जा सकते, वरना हकूमत आपको गिरफ्तार कर लेगी।" 'मख्दूम' के लाख समझाने पर भी लोग टस से मस न हुए। परेशान होकर उसने कहा "अच्छा आप लोग यहाँ बैठे रहिये मैं जाता हूँ।" लेकिन वहाँ बैठे रहने की बजाय वह पूरा जनसमूह 'मख्दूम' के साथ हो लिया और जब एक मित्र के मकान पर पहुँच कर 'मख्दूम' ने फिर कहा कि "मुझे तो आपने घर पहुँचा दिया, अब आप लोग भी अपने-अपने घर जाइये।" तो भी कोई वापस जाने को तैयार न हुआ और वे सब बाहर खडे उसका प्रसिद्ध गीत :

ये जग है जगे-आज़ादी !
आज़ादी के परचम के

गाते रहे।

'मख्दूम' 'नौरस', 'अधेरा', इतज़ार', 'इकिलाब', 'मशरिक', 'हवेली','कैद' इत्यादि बहुत-सी सुन्दर नज़्मो का रचयिता है, लेकिन जिस गीत या नज़्म ने उसे सबसे अधिक ख्याति प्रदान की और जनता का प्रिय शायर बनाया वह गीत या नज़्म यही 'जगे-आज़ादी' है। यह गीत उसने १९४२ के आन्दोलन-काल मे लिखा

था जब कांग्रेस पार्टी ग़ैरक़ानूनी पार्टी क़रार दे दी गई थी। समस्त नेता जेलो मे डाल दिये गये थे और चारो ओर एक विचित्र प्रकार की विवशता-सी नज़र आती थी। ऐसे मे साहित्यकारो की समझ मे भी कुछ नही आ रहा था कि क्या करें। 'मख्दूम' ने यह गीत लिख कर उन्हे एक मार्ग सुझाया और केवल साहित्यकारो ही का नही स्वतन्त्रता-प्रेमी जनता का भी पथ-प्रदर्शन किया। साहित्यिक दृष्टि से कुछ समालोचको ने इस गीत के बारे मे कहा था कि "यह प्रोपेगंडा है, इसका काव्य-विषय स्थायी नही। युद्ध समाप्त होते ही किसी को इसका एक शब्द तक याद नही रहेगा।" लेकिन 'मख्दूम' के इस गीत ने सिद्ध कर दिखाया कि यदि लेखक और कवि आत्मानुभव के आधार पर साहित्य की रचना करें तो साहित्य अपने समय के साथ कभी समाप्त नही होता। आज देश स्वतन्त्र है, आज युद्ध समाप्त हो चुका है लेकिन 'मख्दूम' का यह गीत आज भी भारत के कोने-कोने मे गाया जाता है और कई मज़दूरो और किसानो के जल्सो का तो श्रीगणेश ही इस गीत से होता है। मेरे समीप लोकप्रियता की यह उपाधि सैंकडो साहित्यिक समालोचनाओ पर भारी है और मैं समझता हूँ कि इसका एकमात्र कारण यही है कि 'मख्दूम' जो कुछ भी लिखता है महसूस करके लिखता है, उसमे उसके अपने दिल की धड़कनें विद्यमान होती हैं।

'मख्दूम', केवल एक कविता-सग्रह 'सुर्ख़ सवेरा' का रचयिता है और अपनी असाधारण राजनीतिक व्यस्तताओ के कारण एक समय से उसने शायरी छोड़ रखी है, लेकिन इन गिनती की कलाकृतियो के बावजूद आधुनिक उर्दू शायरी मे उसका स्थान स्थायी रूप से बना रहेगा।

जगे-आजादी

ये जग है जगे - आजादी
आज़ादी के परचम के तले

हम हिन्द के रहने वालो की — महकूमो की मजबूरो की
आज़ादी के मतवालो की — दहकानो की[1] मज़दूरो की

ये जग है जगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

सारा ससार हमारा है — पूरब, पच्छम, उत्तर, दक्खन
हम अफरगी हम अमरीकी — हम चीनी जाबाज़े-वतन
हम सुर्ख सिपाही जूल्म-शिकन[2] — आहन पैकर फौलाद वदन[3]

ये जग है जगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

वो जग ही क्या वो अमन ही क्या — दुशमन जिसमे ताराज[4] न हो
वो दुनिया, दुनिया क्या होगी — जिस दुनिया मे सौराज न हो
वो आजादी आज़ादी क्या — मजदूर का जिसमे राज न हो

ये जग है जगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

---

१. किसानो की २ अत्याचारो का उन्मूलन करने वाले ३. लोहे का शरीर रखने वाले ४ समाप्त

लो सुर्ख़ सवेरा आता है आज़ादी का आज़ादी का
गुलनार तराना गाता है आज़ादी का आज़ादी का
देखो परचम लहराता है आज़ादी का आजादी का

ये जंग है जगे-आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

हम हिन्द के रहने वालो की महकूमो की मजबूरों की
आज़ादी के मतवालो की दहकानो की मज़दूरो की

ये जंग है जगे-आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले ॥

जगे-आजादी

ये जग है जगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

हम हिन्द के रहने वालो की   महक्कूमो की मजबूरो की
आज़ादी के मतवालो की   दहकानो की[1] मज़दूरो की

ये जग है जगे - आजादी
आज़ादी के परचम के तले

सारा ससार हमारा है   पूरब, पच्छम, उत्तर, दक्खन
हम अफरगी हम अमरीकी   हम चीनी जाबाज़े-वतन
हम सुर्ख सिपाही ज़ूल्म-शिकन[2]   आहन पैकर फौलाद वदन[3]

ये जग है जगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

वो जग ही क्या वो अमन ही क्या   दुशमन जिसमे ताराज[4] न हो
वो दुनिया, दुनिया क्या होगी   जिस दुनिया मे सौराज न हो
वो आज़ादी आज़ादी क्या   मजदूर का जिसमे राज न हो

ये जग है जगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

---

१. किसानो की २ अत्याचारो का उन्मूलन करने वाले ३. लोहे का शरीर रखने वाले ४ समाप्त

लो सुर्ख़ सवेरा आता है आज़ादी का आजादी का
गुलनार तराना गाता है आज़ादी का आज़ादी का
देखो परचम लहराता है आजादी का आज़ादी का

ये जंग है जंगे-आजादी
आज़ादी के परचम के तले

हम हिन्द के रहने वालो की महकूमो की मजबूरों की
आज़ादी के मतवालों की दहकानो की मज़दूरो की

ये जंग है जगे-आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले ।।

इंतिज़ार

रात भर दीदा-ए-नमनाक मे[1] लहराते रहे ।
सास की तरह से आप आते रहे जाते रहे ॥
खुश थे हम अपनी तमन्ना का जवाब आयेगा ।
अपना अरमान बर-अफगदा-निकाब[2] आयेगा ॥
नज़रें नीची किए शर्माये हुए आयेगा ।
काकुलें[3] चेहरे पे बिखराये हुए आयेगा ॥
आगई थी दिले-मुज़्तर[4] मे शिकेबाई[5] सी ।
बज रही थी मेरे गम-खाने मे शहनाई सी ॥
पत्तिया खडकी तो समझा कि लो आप आ ही गये ।
सजदे मसरूर कि माबूद[6] को हम पा ही गये ॥
शब के जागे हुए तारो को भी नींद आने लगी ।
आप के आने की इक आस थी अब जाने लगी ॥
सुबह ने सेज से उठते हुए ली अगडाई ।
ओ सबा[7] ! तू भी जो आई तो अकेली आई ॥
मेरे महबूब मेरी नीद उडाने वाले ।
मेरे मसजूद[8] मेरी रूह पे छाने वाले ॥
आ भी जा ताकि मेरे सजदो का अरमा निकले ।
आ भी जा ताकि तेरे कदमो पे मेरी जा निकले ॥

---

१ सजल नेत्रो मे २. निकाब उतारे हुए ३ केश ४ बेक़रार ५ सन्तोष-सा ६ भगवान (जिस के लिए प्रार्थना की जाए), यहा प्रेयसी अर्थो मे आया है । ७ सुबह का मृदु पवन ८. महबूब

क़ैद

क़ैद है क़ैद की मीयाद नही
जौर[1] है जौर की फर्य्याद नही, दाद[2] नही
रात है रात की खामोशी है तनहाई है
दूर महबस की[3] फसीलों से बहुत दूर कही
सीना-ए-शहर की गहराई से, घंटों की सदा[4] आती है
चौंक जाता है दिमाग
झिलमिला जाती है अनफास की लौ
जाग उठती है मेरी शम्मअ-शबिस्ताने-खयाल[5]
जिन्दगानी की इक-इक बात की याद आती है

शाहराहो मे, गली-कूचों मे इन्सानो की भीड़
उनके मसरूफ कदम
उनके माथे पे तरद्दुद[6] के नकूश[7]
उनकी नजरों मे गमे-दोश और अन्देशा-ए-फर्दा की झलक[8]
सैकडो-लाखो अवाम
सैकड़ो-लाखो क़दम
सैकड़ो-लाखो धड़कते हुए इन्सानो के दिल
जबरे-शाही से गमी[9], जौरे-सियासत से निढाल
जाने किस मोड़ पे वो धन से धमाका बन जाएँ ?

---

१. अत्याचार २. न्याय ३. जेलखाने की ४. आवाज ५. विचारों के शयनगृह का दीपक ६ परिश्रम ७. रेखायें ८. अतीत के दुखो और भविष्य की आशंकाओं की झलक ९. दुखी, पीड़ित

सालहा-साल क़ी अफसुर्दा-ओ-मजबूर जवानी की उमग
तौको-ज़ंजीर से लिपटी हुई सो जाती है
करवटें लेने मे ज़जीर की झनकार का शोर
ख्वाब में ज़ीस्त[1] की शोरिश का[2] पता देता है
मुझ को गम है कि मेरा गजे-गिरामाया-ए-उम्र[3]
नज्रे-ज़िन्दान[4] हुआ
नज्रे-आज़ादी-ए-ज़िन्दाने-वतन[5] क्यो न हुआ ?

१. जीवन २ हगामे का ३ आयु-रूपी बहुमूल्य धन ४ जेलखाने की भेंट ५ देश-रूपी जेलखाने की आजादी की भेंट

फुटकर शेर

गिरेबां चाक महफ़िल से निकल जाऊ तो क्या होगा ?
तेरी आंखो से आसू बन के ढल जाऊं तो क्या होगा ?
जुनूं की लगज़िशे[1] खुद पर्दा-दारे-राज़े-उलफ़त[2] हैं।
जो कहते हो संभल जाओ, सभल जाऊ तो क्या होगा ?

◦ ◦ ◦

तूने किस दिल को दुखाया है तुझे क्या मालूम ?
किस सनमखाने को ढाया है तुझे क्या मालूम ?
हम ने हँस-हँस के तेरी बज्म[3] मे ऐ पैकरे-नाज़ !
कितनी आहो को छुपाया है तुझे क्या मालूम ?

◦ ◦ ◦

कितने लब[4] कितनी जबीनें[5] कितने जलवे कितने तूर,
कितनी सुबहो का उजाला कितने नगमों का सरूर।
कितनी नौ-आगाज़ कलियां[6] , कितने खुशबूदार फूल,
मेरी ठंडी सांस पर होते है रंजूरो - मलूल[7]।
कितने संगी - दिल[8] हैं जो मेरे नशे में चूर हैं,
कितनी रातें है कि मेरे नाम से मशहूर हैं।

---

१. उन्माद की डगमगाहट २. प्रेम के भेद की पर्दादार ३. महफ़िल
. होंट ३. माथे ६. नव कलियां ७. दुखी, उदास ८. पत्थर-दिल



अहमद 'नदीम' क़ासमी

नौजवां सीनों में मुस्तक़बिल की करता हूं तलाश
मक़बरों में ढूंडता हूं, गुज़रे वक़्तों के क़दम

परिचय

"आदर ! आदर ! आदर ! नदीम कासमी आ रहा है ।" और आदरवश पूरा वातावरण दम साध लेता है । यह एक विचित्र प्रकार का उल्लास-मिश्रित भय है जो 'नदीम' कासमी के आते ही महफिल पर छा जाता है और सब लोग उस जादू-भरे भय मे लिपटे-लिपटाये झूलते रहते हैं ।"

अहमद 'नदीम' कासमी के सम्बन्ध मे उर्दू के एक लेखक 'फिक्र' तौन्सवी के इन शब्दों का अर्थ केवल वही लोग समझ सकते हैं, जो व्यक्तिगत रूप से अहमद 'नदीम' कासमी को जानते हो या जिन्होने उसे किसी महफिल मे आते हुए देखा हो । यह बडी विचित्र वास्तविकता है कि अहमद 'नदीम' क़ासमी के बुजुर्ग रिश्तेदार और बुजुर्ग साहित्यकार भी कि जिनके सामने स्वय क़ासमी को सादर झुक जाना चाहिये उसकी उपस्थिति मे उसके प्रति प्रेमभाव के साथ-साथ श्रद्धाभाव मे भी ग्रस्त हो जाते हैं, उसकी किसी बात का उत्तर देने की बजाय उसकी हाँ मे हाँ मिलाने लगते हैं, यहा तक कि कभी-कभी स्वय कासमी को इस पर उलझन होने लगती है ।

जहाँ तक उसके सम्बन्धियो का सम्बन्ध है मेरे विचार मे उनकी श्रद्धा का कारण कुछ धार्मिक मान्यतायें हैं क्योकि वह एक 'पीरजादा' है और स्वय क़ासमी के कथनानुसार उसने अपने जूतो को उन मुरीदो के समूह मे इस प्रकार ग़ायब होते देखा है कि प्रत्येक व्यक्ति की आँखें उन्हें चूमकर चमक उठीं और हर मुरीद के चेहरे पर बहुत बडे धार्मिक बुजुर्ग के सुपुत्र के जूतो को छूकर एक दैवी तेज छा गया । और चू कि उसने अपने जीवन मे कभी अपने बुजुर्गों

को किसी शिकायत का मौका नही दिया और अपने सदाचार मे कोई त्रुटि उत्पन्न नही होने दी, इसलिए उसके बुज़ुर्ग उससे अत्यन्त स्नेह तथा श्रद्धा से पेश आते हैं, लेकिन आस्तिक और नास्तिक, प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी हर श्रेणी के शायर और लेखक क्यो इतने आदर तथा सम्मान से उसका नाम लेते हैं और क्यो उससे इतने प्रभावित हैं, यह भेद विना उससे मिले या उसकी रचनाओ का अध्ययन किये समझ मे नही आ सकता।

उससे मिलने और उसकी रचनाओ का अध्ययन करने से जो बात हमे सबसे पहले अपनी ओर खेंचती है, वह है उसके व्यक्तित्व और उसकी कला मे विमलता। एक वडे कलाकार के लिए जहा कई और गुणो की आवश्यकता होती है वहा उसमे विमलता का गुण सब से आवश्यक और अनिवार्य है। कोई कलाकार उस समय तक महान साहित्य की रचना नही कर सकता जव तक कि अपने विचारों-भावनाओ और सिद्धातो को विना किसी प्रकार की लीपापोती के कलात्मक ढग से प्रस्तुत करने की उसमे क्षमता और साहस न हो। अहमद 'नदीम' कासमी की शायरी का क्रमश. अध्ययन करने से हम उसके किसी काल के सिद्धातो से तो असहमत हो सकते हैं लेकिन उसकी कलात्मक विमलता से किसी प्रकार इन्कार नही कर सकते। और यह उसकी कलात्मक विमलता ही है कि जिसके कारण मित्र तथा शत्रु सभी उसका इतना आदर करते हैं।

आधुनिक उर्दू साहित्य का यह आदरणीय शायर जिसका असल नाम अहमद शाह है २० नवम्बर १९१६ को जिला शाहपुर (पश्चिमी पंजाव) के एक छोटे से पहाडी गाव अगा मे पैदा हुआ। 'पीरजादा' होने पर भी घर की हालत किसी निर्धन-से-निर्धन 'मुरीद' के घर से वदतर थी। पिता के देहान्त के वाद चू कि "पहनने को मोटा-झोटा, खाने को जगली साग और आग तापने को अपने ही हाथो से चुने हुए उपले" रह गये थे इसलिए शिक्षा-दीक्षा के लिए उसे अपने सम्वन्धियो के हाथो की ओर देखना पडा और १९३५ मे बी० ए० करने के वाद तो परिस्थितियो ने उसके साथ और भी मज़ाक किये। अपने उन दिनो के वारे मे वह स्वय लिखता है कि :

"अपने एक सम्वन्धी की आर्थिक सहायता और कुछ अपनी हिम्मत से मर-मिटकर १९३५ मे वी० ए० किया और अव यह परवाना हाथ मे लेकर और कुछ खानदानी उपाधियो का पुलंदा कांधो पर लादकर और पश्चिमी शिष्टाचार और विनय-रीति रटकर मैंने नौकरी की भीख मागना शुरू की। १९३५ से १९३९ तक लगभग पूरे पजाव का चक्कर लगाया। खानदान के

परिचय

"आदर ! आदर ! आदर ! नदीम कासमी आ रहा है ।" और आदरवश पूरा वातावरण दम साध लेता है । यह एक विचित्र प्रकार का उल्लास-मिश्रित भय है जो 'नदीम' क़ासमी के आते ही महफिल पर छा जाता है और सब लोग उस जादू-भरे भय मे लिपटे-लिपटाये झूलते रहते हैं ।"

अहमद 'नदीम' कासमी के सम्बन्ध मे उर्दू के एक लेखक 'फ़िक्र' तौन्सवी के इन शब्दो का अर्थ केवल वही लोग समझ सकते हैं, जो व्यक्तिगत रूप से अहमद 'नदीम' कासमी को जानते हो या जिन्होंने उसे किसी महफिल मे आते हुए देखा हो । यह बडी विचित्र वास्तविकता है कि अहमद 'नदीम' कासमी के बुज़ुर्ग रिश्तेदार और बुज़ुर्ग साहित्यकार भी कि जिनके सामने स्वय क़ासमी को सादर झुक जाना चाहिये उसकी उपस्थिति मे उसके प्रति प्रेमभाव के साथ-साथ श्रद्धाभाव मे भी ग्रस्त हो जाते हैं, उसकी किसी बात का उत्तर देने की बजाय उसकी हाँ मे हाँ मिलाने लगते हैं, यहा तक कि कभी-कभी स्वय कासमी को इस पर उलझन होने लगती है ।

जहाँ तक उसके सम्बन्धियो का सम्बन्ध है मेरे विचार मे उनकी श्रद्धा का कारण कुछ धार्मिक मान्यतायें हैं क्योकि वह एक 'पीरज़ादा' है और स्वय क़ासमी के कथनानुसार उसने अपने जूतो को उन मुरीदों के समूह मे इस प्रकार ग़ायब होते देखा है कि प्रत्येक व्यक्ति की आखें उन्हें चूमकर चमक उठीं और हर मुरीद के चेहरे पर बहुत बडे धार्मिक बुज़ुर्ग के सुपुत्र के जूतो को छूकर एक दैवी तेज छा गया । और चू कि उसने अपने जीवन मे कभी अपने बुज़ुर्गों

को किसी शिकायत का मौका नही दिया और अपने सदाचार मे कोई त्रुटि उत्पन्न नही होने दी, इसलिए उसके बुजुर्ग उससे अत्यन्त स्नेह तथा श्रद्धा से पेश आते हैं; लेकिन आस्तिक और नास्तिक, प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी हर श्रेणी के शायर और लेखक क्यो इतने आदर तथा सम्मान से उसका नाम लेते हैं और क्यो उससे इतने प्रभावित हैं, यह भेद विना उससे मिले या उसकी रचनाओ का अध्ययन किये समझ मे नही आ सकता।

उससे मिलने और उसकी रचनाओ का अध्ययन करने से जो वात हमे सबसे पहले अपनी ओर खेंचती है, वह है उसके व्यक्तित्व और उसकी कला मे विमलता। एक वड़े कलाकार के लिए जहा कई और गुणो की आवश्यकता होती है वहा उसमे विमलता का गुण सब से आवश्यक और अनिवार्य है। कोई कलाकार उस समय तक महान साहित्य की रचना नही कर सकता जब तक कि अपने विचारो-भावनाओ और सिद्धातो को विना किसी प्रकार की लीपापोती के कलात्मक ढग से प्रस्तुत करने की उसमे क्षमता और साहस न हो। अहमद 'नदीम' कासमी की शायरी का क्रमश अध्ययन करने से हम उसके किसी काल के सिद्धातो से तो असहमत हो सकते हैं लेकिन उसकी कलात्मक विमलता से किसी प्रकार इन्कार नही कर सकते। और यह उसकी कलात्मक विमलता ही है कि जिसके कारण मित्र तथा शत्रु सभी उसका इतना आदर करते हैं।

आधुनिक उर्दू साहित्य का यह आदरणीय शायर जिसका असल नाम अहमद शाह है २० नवम्बर १९१६ को जिला शाहपुर (पश्चिमी पजाव) के एक छोटे से पहाडी गाव अगा मे पैदा हुआ। 'पीरजादा' होने पर भी घर की हालत किसी निर्धन-से-निर्धन 'मुरीद' के घर से वदतर थी। पिता के देहान्त के वाद चू कि "पहनने को मोटा-झोटा, खाने को जगली साग और आग तापने को अपने ही हाथो से चुने हुए उपले" रह गये थे इसलिए शिक्षा-दीक्षा के लिए उसे अपने सम्वन्धियो के हाथो की ओर देखना पडा और १९३५ मे वी० ए० करने के वाद तो परिस्थितियो ने उसके साथ और भी मजाक किये। अपने उन दिनो के वारे मे वह स्वय लिखता है कि :

"अपने एक सम्वन्धी की आर्थिक सहायता और कुछ अपनी हिम्मत से मर-मिटकर १९३५ मे वी० ए० किया और अब यह परवाना हाथ मे लेकर और कुछ खानदानी उपाधियो का पुलदा कावो पर लादकर और पश्चिमी शिष्टाचार और विनय-रीति रटकर मैने नौकरी की भीख मागना शुरू की। १९३५ से १९३९ तक लगभग पूरे पजाव का चक्कर लगाया। खानदान के

पुराने अभिभावको ने मुस्कराकर देखा और सहानुभूति प्रकट करते हुए सैर को निकल गये। एक्स्ट्रा-एसिस्टैंट कमिश्नरी, तहसीलदारी और नायब-तहसीलदारी से लेकर अंजुमने-हिमायते-इस्लाम मे क्लर्की तक के लिए नित नये ढग से दर्ख्वास्तें लिखी, रिफार्म-कमिश्नर के दफ्तर मे बीस रुपये मासिक पर मुहर्ररी करता रहा। ज़िला मिंटगुमरी मे नौ दिन टैलीफोन आपरेटर रहा। प्रकाशन विभाग (पजाब) की पत्रिका 'तहज़ीबे-निसवा' के लिए अंग्रेज़ी कहानियों का अनुवाद करता रहा। एक महाशय को पाच सौ पन्नो की एक पुस्तक चालीस रुपये के बदले लिख दी (जो अब तक उन्ही के नाम से खूब बिक रही है)। रावलपिंडी मे टाइप सीखता रहा। पचायत विभाग से लेकर आर्मी एकाउट्स विभाग के दफ्तरो मे मेरा नाम उम्मीदवार के तौर पर दर्ज रहा। साथ-साथ भागे-तागे का लिबास पहनकर डिप्टी-कमिश्नरो और फिनानशल-कमिश्नरो की ड्योढियो पर सलामी देता फिरा "मेरे अमुक बुजुर्ग ने अंग्रेज़ जनरल मैक्वेल को मनीपुर सेनाओ का खुफिया पता दिया और 'शेरदिल' की उपाधि प्राप्त की"—"मेरे अमुक सम्बन्धी ने तिब्बत के मोर्चे पर विजय पाने मे लार्ड कर्ज़न को यह सहायता दी"—"मेरे अमुक रिश्तेदार को महायुद्ध में सिपाही भरती कराने के पुरस्कार-स्वरूप इतने तमग़े और उपाधिया प्रदान की गई'''"

लेकिन ऐसी कडी परिस्थितियों मे से गुज़रने के बावजूद जबकि उसे तीन-तीन दिन के फाके भी करने पडे, जब एक बार उसे कही से कुछ क़लम की मज़दूरी मिल गई तो उसने बजाय जी भर के खाने के एक सिनेमा-हाल की राह ली। तीन बजे वहाँ से निकलकर एक और सिनेमा-हाल मे घुस गया। शाम को वहाँ से निबटा तो एक और क्रीडास्थल मे चला गया। रात के नौ बजे वहाँ से निकला तो जेब मे एक और मनोरजन का साधन मौजूद था अतएव एक और सिनेमा-हाउस मे ऊँचे दर्जे का टिकट लेकर बैठ गया। जब वहाँ से एक बजे निकला तो जेब मे केवल एक दवन्नी थी। "भूखा-प्यासा, बिना किसी मतलब के, नहर की ओर निकल गया। मन्दगति से बहते हुए पानी मे सितारो का मटियाला प्रतिबिम्ब देखता रहा कि पौ फटी और मुझे महसूस हुआ कि कल सुबह से मैं अपने आप मे नही हूँ—यह और इसी प्रकार की आवारगियाँ मेरे ऐसे नौजवानो के जीवन की प्रतिदिन की घटनायें हैं, लेकिन यहाँ मैं केवल अपना ज़िक्र कर रहा हूँ—एक शायर का ज़िक्र—जिसकी शायरी पर यदि ऐसी घटनाओं का प्रभाव न पडे तो वह अपनी कला के प्रति

सच्चा नही। वह केवल नक्काल और अनुगामी है।"

अहमद 'नदीम' कासमी की शायरी मे हमे किसी प्रकार की नक्काली या अनुकरण का आभास नही मिलता। अपने जीवन की विभिन्न घटनाओ के अनुभवो द्वारा (जिनका सिलसिला आज भी जारी है) उसने अपना एक अलग मार्ग निकाला और जिस समय जो महसूस किया वड़ी दयानतदारी से प्रस्तुत भी कर दिया। वह यदि उदास और मलिन हुआ तो हमे उदास टीलो, वीरान मरुस्थलो और उजाड खडहरो मे ले गया और झुकी हुई खजूरो, चकराते हुए ववूलो और विना फूल-पत्ती के ववूलो द्वारा हमारे मन-मस्तिष्क मे निराशा, विवशता और करुणा उत्पन्न की। प्रकृति और नारी के सौन्दर्य से प्रभावित हुआ तो हमे गाँव की सलोनी संध्याओ, मुस्कराते हुए चश्मो और गाते हुये पनघटो पर ले गया। उसने हमे धानी चूडियो की खनक सुनवाई। गोरी वाँहो की लचक और थरथराते झूमरो की फवन और ढोलक पर नाचती हुई कोमल उगलियो की तड़प दिखाई। क्रोधित हुआ तो उसकी ललकार मे धरती-आकाश काँपने लगे और जव सोचने के मूड मे आया तो अपनी सोच के अनुसार सव गुत्थियाँ सुलझाकर रख दी।

कासमी की 'सोच' का उल्लेख करते हुये मुझे अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि कोलरिज का यह कथन याद आ रहा है कि कोई व्यक्ति एक वड़ा कवि नही हो सकता जव तक कि वह एक विशाल-हृदय दार्शनिक न हो। इस कथनानुसार अहमद 'नदीम' कासमी की १९४५ (वल्कि १९४७) तक की शायरी मे हमे किसी महान् दर्शन का पता नहीं चलता वल्कि 'इक़वाल' की तरह यहाँ-वहाँ अनेक सिद्धान्त मिलते हैं जिनमें इस्लाम को पूरे विश्व की जीवन-व्यवस्था के रूप मे प्रस्तुत करने की भावना सव से उग्र है। लेकिन 'इक़वाल' के विपरीत उसके सिद्धान्तो मे धीरे-धीरे एकसारता और दो-टूक-पन आता गया और सामाजिक परिवर्तनो के वोध द्वारा उसने उस जीवन-दर्शन को पा लिया, जिसके विना आज का शायर किसी प्रकार वडा शायर नही वन सकता। आज वह जनसाधारण के उस आन्दोलन से सम्वन्धित है, मनुष्य के सुन्दर भविष्य के लिए प्रतिक्रियावादी शक्तियो से लोहा ले रहा है।

क्लर्की, मुहर्ररी, एडीटरी, वेकारी और महकमा आवकारी ने यद्यपि उसे हर समय अपने लौह-क्रैशो मे जकड़े रखा और रचनात्मक कार्य करने का वहुत कम अवकाश दिया लेकिन उसकी मेहनत और सख्तजानी पर आश्चर्य होता

है जब हम देखते हैं कि उसकी लिखी हुई नज़्मो, ग़ज़लो, रुबाइयों, क़तओं, कहानियो, ड्रामो और लेखों की गिनती करना न केवल कठिन बल्कि असम्भव है। मेरे सम्मुख इस समय उसके केवल तीन कविता-सग्रह 'रिमझिम', 'जलालो-जमाल' और 'शोला-ए-गुल' हैं और मैं इन पुस्तकों की पृष्ठ-सख्या देखकर ही परेशान हो रहा हूँ कि अपनी इस सक्षिप्त-सी आयु मे क़ासमी ने ये सब कैसे लिख लिया ?

क़तए

देख री, तू पनघट पर जाकर मेरा ज़िक्र न छेड़ा कर,
क्या मैं जानूँ, कैसे हैं वो, किस कूचे मे रहते हैं,
मैंने कब तारीफ़ें की हैं, उन के बांके नैनो की,
"वो अच्छे खुशपोश जवां हैं" मेरे भय्या कहते है।

◇ ◇ ◇

शहनाइयों के शोर मे डोली जूंही उठी,
इक नौजवां कही से पुकारा मुझे बचाओ,
डोली से सर निकाल के बोली हसी दुल्हन,
"क्या देखते हो, जाओ भी लिल्लाह[1] ! जाओ जाओ।"

◇ ◇ ◇

ढोल बजते हैं, दनादन की सदा[2] आती है,
फसल कटती है, लचकती है, बिछी जाती है,
नौजवां गाते हैं जब सांवले महबूब का गीत,
एक दोशीज़ा[3] ठिठक जाती है, शरमाती है।

◇ ◇ ◇

---

१. खुदा के लिए २. आवाज़ ३. कुमारी

फ़न*

एक रक्कासा[1] थी—किस-किस से इशारे करती ?
आंखें पथराईं, अदाओ मे तवाज़न[2] न रहा,
डगमगाई, तो सब अतराफ[3] से आवाज़ आई—
"फन के इस ओज[4] पे इक तेरे सिवा कौन गया ?"
फ़र्शे-मरमर पे गिरी, गिर के उठी, उठ के झुकी,
खुश्क होटो पे ज़ुबा फेर के पानी मागा,
ओक उठाई तो तमाशाई सभल कर बोले,
"रक्स का ये भी इक अदाज़ है—अल्ला ! अल्ला !"
हाथ फैले रहे, सिल-सी गई होटो से ज़ुबा,
एक रक्कास किसी सिम्त[5] से नागाह्[6] बढा,
पर्दा सरका, तो मअ़न[7] फन के पुजारी गरजे,
"रक्स क्यो खत्म हुआ ? वक्त अभी बाकी था !"

---

*कला

१ नर्तकी २ सतुलन ३ ओर ४ शिखर ५. ओर ६ एकाएक
७ एकदम

वक़्त

सरवर-ग्रावुर्दा[1] सनोवर की घनी शाख़ों में
चांद बिल्लौर[2] की टूटी हुई चूड़ी की तरह ग्रटका है
दामने-कोह की[3] इक वस्ती में
टिमटिमाते हैं मज़ारो पे चिराग
ग्रास्मां सुरमई फरगल में सितारे टांके
सिमटा जाता है—झुका जाता है
वक्त वेदार[4] नज़र ग्राता है।

सरवर-ग्रावुर्दा सनोवर की घनी शाख़ों मे
सुवह की नुकरई[5] तनवीर[6] रची जाती है
दामने-कोह मे विखरे हुए खेत
लहलहाते हैं तो घरती के तनपफुस[7] की सदा ग्राती है
ग्रास्मा कितनी वुलंदी पे है ग्रौर कितना ग्रज़ीम[8]
नये सूरज की शुग्राग्रो का मुसफ्फा[9] ग्रांगन
वक़्त वेदार नज़र ग्राता है !

सरवर-ग्रावुर्दा सनोवर की घनी शाख़ों मे
ग्राफताव[10] एक ग्रलाग्रो की तरह रोशन है
दामने-कोह मे चलते हुए हल
सीना-ए-दहर[11] पे इन्सान की जवरूत[12] की तारीख रकम[13]
करते हैं
ग्रास्मां तेज शुग्राग्रों से है इस दर्जा गुदाज़[14]

---

१. ऊंचा २. कांच ३. पहाड़ के दामन की ४. जाग्रत ५. रुपहली
६. प्रकाश ७. श्वास ८. महान ९. साफ १०. सूरज ११. संसार की
छाती १२. महानता, बुज़ुर्गी १३. ग्रंकित १४. नर्म

फ़न*

एक रक्कासा[1] थी—किस-किस से इशारे करती ?
आखें पथराईं, अदाओ मे तवाज़न[2] न रहा,
डगमगाई, तो सब अतराफ[3] से आवाज़ आई—
"फन के इस ओज[4] पे इक तेरे सिवा कौन गया ?"
फर्शे-मरमर पे गिरी, गिर के उठी, उठ के झुकी,
खुश्क होटो पे ज़ुबा फेर के पानी मागा,
ओक उठाई तो तमाशाई सभल कर बोले,
"रक्स का ये भी इक अदाज़ है—अल्ला! अल्ला!"
हाथ फैले रहे, सिल-सी गई होटो से ज़ुबा,
एक रक्कास किसी सिम्त[5] से नागाह[6] बढा,
पर्दा सरका, तो मग्न[7] फन के पुजारी गरजे,
"रक्स क्यो खत्म हुआ ? वक्त अभी बाकी था !"

---

*कला

१. नर्तकी २ सतुलन ३ ओर ४ शिखर ५. ओर ६ एकाएक ७ एकदम

वक़्त

सरवर-ग्रावुर्दा[1] सनोवर की घनी शाख़ों मे
चांद बिल्लौर[2] की टूटी हुई चूड़ी की तरह ग्रटका है
दामने-कोह की[3] इक बस्ती मे
टिमटिमाते है मज़ारो पे चिराग
ग्रास्मां सुरमई फरगल में सितारे टांके
सिमटा जाता है—झुका जाता है
वक़्त बेदार[4] नजर ग्राता है ।

सरवर-ग्रावुर्दा सनोवर की घनी शाखों मे
सुबह की नुकरई[5] तनवीर[6] रची जाती है
दामने-कोह मे बिखरे हुए खेत
लहलहाते हैं तो धरती के तनफ़्फ़ुस[7] की सदा ग्राती है
ग्रास्मा कितनी बुलदी पे है ग्रौर कितना ग्रज़ीम[8]
नये सूरज की शुग्राग्रो का मुसफ्फा[9] ग्रागन
वक़्त बेदार नज़र ग्राता है !

सरवर-ग्रावुर्दा सनोवर की घनी शाखों मे
ग्राफताव़[10] एक ग्रलाग्रो की तरह रौशन है
दामने-कोह मे चलते हुए हल
सीना-ए-दहर[11] पे इन्सान की जवरूत[12] की तारीख रकम[13]
करते हैं
ग्रास्मां तेज़ शुग्राग्रों से है इस दर्जा गुदाज़[14]

---

१. ऊंचा २. कांच ३. पहाड़ के दामन की ४. जाग्रत ५. रुपहली
६. प्रकाश ७ श्वास ८. महान ९ साफ १०. सूरज ११. संसार की
छाती १२. महानता, बुज़ुर्गी १३. ग्रंकित १४. नर्म

जैसे छूने से पिघल जायेगा
वक्त तय्यार नज़र आता है

सरबर-आवुर्दा सनोबर की घनी शाखो में
ज़िन्दगी कितने हकायक को[1] जनम देती है
दामने-कोह में फैले हुए मैदानो पर
ज़ौके-तखलीक[2] ने ऐजाज़[3] दिखाये हैं लहू उगला है
आसमा गर्दिशे-अय्याम[4] के रेले से हिरासा[5] तो नही
खैर-मकदम[6] के भी अदाज़ हुआ करते है
वक्त की राह पे मोड़ आते हैं, मज़िल तो नही आ सकती ।

मौजू

फन बड़ी चीज है तखलीक[1] बड़ी नेमत है
हुस्नकारी कोई इलजाम नही है ऐ दोस्त

है मेरे मद्दे-नजर[2] आज भी तखलीके-जमाल[3]
गेसू-ए-शब मे[4] उलझते हुए तारो के खयाल
वो जवानी के गुलाबो से महकते हुए जिस्म
फैलती बाँहो मे मदहोश लहकते हुए जिस्म
कुजे-गुलशन की खमोशी मे उमंगो के हुजूम
प्यार की प्यास मे खुलते हुए होटो की पुकार
आखों-आखों मे लगन का मुतरन्निम[5] इजहार
फन की तामीर हुई है इन्ही उनवानो से[6]
यही मकबूल थे माजी के गजलख्वानो मे
इन्ही कलियो से खिलाये गए गुलजार अब तक
इन्ही झोको से रिवायात मे[7] बाकी है हयात
मुनअकस[8] है इन्ही आईनो मे इन्सा का सबात[9]
मै अगर इन से अलग बात करूँ तो दरअसल
ये फकत गर्दिशे-अय्याम नही है ऐ दोस्त

---

१. रचना २. सामने ३. सौन्दर्य की सृष्टि ४. रात के केशो मे
५. सगीतमय ६. शीर्षको से ७ परम्पराओ मे ८. प्रतिबिम्बित
९. दृढता (अस्तित्व)

हुस्न बैठा है सरे-राह भिखारी बनकर
मेरा अन्दाज़े-नज़र ख़ाम नही है ऐ दोस्त
चद उडते हुए लम्हो की हसी नक्काशी
मेरे फन का तो ये अजाम नही है ऐ दोस्त
पहले मैं माहियते-हुस्न[1] तो पा लूं, वरना
हुस्नकारी कोई इल्ज़ाम नही है ऐ दोस्त
जिनकी तखलीक से है हुस्न की कदरो मे[2] दवाम[3]
उनके हाथो की खराशें तो मिटा लूं पहले

जिनकी मेहनत से इबारत है जमाले-आलम[4]
उनको आईना दिखाना भी तो फनकारी है
उनकी आखो मे जो शोला-सा लरज उठता है
उसका अहसास दिलाना भी तो फनकारी है
हुक्मरानो ने उक्कावो का[5] भरा है बहरूप
भोली चिडियो को जगाना भी तो फनकारी है
खेत आबाद हैं, देहात है उजडे-उजड़े
इस तफ़ावुत[6] को मिटाना भी तो फ़नकारी है
धान की फस्ल की तस्वीर है मेराजे-कमाल[7]
धान की फस्ल उठाना भी तो फनकारी है
कारखानो से उमडता हुआ, फौलाद का शोर
तेरी तहज़ीव का इक गीत नही तो क्या है
चन्द सदियो के गुलामो का मुकम्मिल एक्का
नौ-ए-इन्सा[8] की ये इक जीत नही तो क्या है

---

१. सौन्दर्य की वास्तविकता २. मूल्यो मे ३. स्थायित्व ४ विश्व की सुन्दरता बनी है ५ वाज पक्षियो का ६ फर्क, अन्तर ७ कला का शिखर ८ मानव

ज़र के ढेरों को उलटती है दरांती की ज़बां
इरतिका[1] की यह इक रीत नही तो क्या है
लबो-रुख़सार को[2] मौज़ू-ए-सुख़न[3] ठहरा लूं
लेकिन इस रग का माहौल[4] तो पा लूं पहले
ज़ुल्फ के पेच तो गिन सकता हूं लेकिन ऐ दोस्त
ज़हन से बारे-सलासिल[5] तो उठा लूं पहले
जिनकी तख़लीक से फ़नकार सबक़[6] लेता हैं
उनके हाथो की खराशें तो मिटा लूं पहले।

---

१. विकास २. होंठों और गालों को (प्रेमिका को) ३. काव्य-विषय
४. वातावरण ५. जेल की जंजीरों का बोझ ६. पाठ

फुटकर शेर

तारो का गो शुमार मे आना मुहाल है।
लेकिन किसी को नीद न आये तो क्या करे ?

◇ ◇ ◇

उम्र भर रोने से रोने का सलीका खो दिया।
हर नफस[1] के साथ ये दरिया-दिली अच्छी नही ।।

◇ ◇ ◇

मेरी वर्बादियो के राज़ न पूछ।
राज़ का इनकिशाफ[2] भी है राज़ ।।

◇ ◇

रात को तारो से, दिन को ज़र्रा-हाए-खाक से[3]।
कौन है, जिस से नही सुनते तेरा अफसाना हम ?

◇ ◇ ◇

जकडी हुई है इनमे मेरी सारी कायनात।
गो देखने में नर्म हैं तेरी कलाइया ।।

◇ ◇ ◇

तसव्वुर[4] आपका, अहसास अपना, हमरही[5] दिल की।
मुहव्वत की इस तकसीम[6] ने मज़िल से वहकाया ।।

◇ ◇ ◇

तू मेरी ज़िन्दगी से भी कतरा के चल दिया।
तुझ को तो मेरी मौत पे भी अख्तियार था ।।

◇ ◇ ◇

---

१ प्राणी २ प्रकटीकरन ३ मिट्टी के ज़र्रों से ४ कल्पना ५ साथ
६ विभाजन

हंगामा मच रहा है खयालों की वज्म मे।
तू ने दवी जवान मे जाने कहा है क्या ?

◇ ◇ ◇

भला ये कौन-सी मज़िल है वेनियाजी की ?
कि आजकल मेरे होंटो पे तेरा नाम नही ॥

◇ ◇

नोके-मिज़गां से[1] अश्क[2] ढले और वह गये।
इक दास्तान चन्द इशारो मे कह गये ॥
रुकने का नाम तक न लिया अहले-शौक ने।
दम लेने को जो बैठे वो बैठे ही रह गये ॥
आने का इतनी दूर से कुछ मुद्दआ तो था।
दीवाने खामशी मे कोई वात कह गये ॥

◇ ◇ ◇

फिर मोड़ पे कावे के सनमखाना[3] वनेगा।
वतलाइये अब कौन न दीवाना बनेगा ॥
रहने दे अभी ताक पे शम्मएँ कि किसी रोज़।
खाकस्तरे - परवाना[4] से परवाना बनेगा ॥

---

१. पलको की नोक से २. आसू ३. मन्दिर ४. जले हुए परवाने की राख



जांनिसार 'अख़्तर'

और दो-चार मराहिल से गुज़रना है तो क्या
अपनी मंज़िल की तरफ़ हम को बढ़े देर हुई



जांनिसार 'अख़्तर'

और दो-चार मराहिल से गुज़रना है तो क्या
अपनी मंज़िल की तरफ़ हम को बढ़े देर हुई

परिचय

बीयर का एक बडा-सा घूंट लेते हुए उसने कहा "प्रकाश ! मैं बम्बई से तग आ चुका हूँ। अजीब मशीनी शहर है। दोस्त की दोस्ती पर तो क्या आदमी दुश्मन की दुश्मनी पर भी भरोसा नही कर सकता। तुम नही जानते मैं वहाँ कैसी ज़िन्दगी गुज़ार रहा हूँ।"

अपनी पत्नी 'सफिया' (जो 'मजाज़' की बहिन और स्वय एक लेखिका थी) का अचानक देहात हो जाने और बच्चो की देख-रेख का कोई उचित प्रबध न हो पाने से उन दिनो वह बहुत परेशान था, अत बीयर का पहला घूंट लेते ही जब बम्बई की चर्चा छिड गई, जहाँ उसे बडी कटु परिस्थितियो मे से गुज़रना पडा था, तो वह और भी उदास हो गया।

उसकी उस उदासी को किंचित कम करने के लिए मैंने कहा "लेकिन खुद तुमने ही तो अच्छी-खासी प्रोफेसर छोडकर बम्बई का टिकट कटाया था। और फिर बम्बई मे अपने बहुत से साथी हैं। इस्मत चुग़ताई हैं, कृष्णचन्द्र हैं, राजेन्द्रसिंह बेदी, सरदार जाफ़री, मजरूह सुलतानपुरी, साहिर . . ."

"हाँ, हाँ !" मेरी इस लम्बी सूची से बौखलाकर उसने कहा "यह सब तो ठीक है, लेकिन इससे क्या होता है ! हरेक अपने-अपने चक्कर मे फँसा हुआ है—और फ़िल्म-लाइन का चक्कर तो तुम जानते हो आदमी को घनचक्कर बना देता है।" उसने बीयर का एक और लम्बा घूंट लिया और कुछ देर तक चुप रहने के बाद कहा "यार ! बीयर-बीयर से बात नही बनती, ह्विस्की चलनी चाहिये।"

ह्विस्की चलने लगी और दो-तीन पैगो के बाद कु सरूर मे आकर उसने वम्बई के फिल्म-जगत की जो कहानियाँ जिस दर्द-भरे ढँग मे सुनाईं वे नशा तो नशा होश तक उडा देने वाली थी।

"और तो और" उसने फीकी-सी हँसी हँसते हुए कहा "फिल्म 'अनारकली' का सवसे मशहूर गाना 'ऐ जाने-वफा आ' मेरा लिखा हुआ है, लेकिन दूसरी फिल्म-कम्पनियो के प्रोड्यूसर उसे किसी दूसरे शायर का कहकर मुझसे कहते हैं कि अख्तर साहव ! वैसा गाना लिखिये।"

"तुम उन्हे वताते क्यो नही ?"

"क्या फायदा ? खाहम्खाह की झिक-झिक से क्या फायदा ?"

इस "खाहम्खाह की झिक-झिक" से मुझे उसके जीवन की एक घटना याद आ गई।

एक वार वह दिन के दो वजे वम्वई के एक भरे वाजार मे से गुजर रहा था। कोई अपरिचित व्यक्ति उनका रास्ता रोककर खडा हो गया कि "जो कुछ तुम्हारी जेव मे है मेरे हवाले कर दो, नही तो मैं तुम्हे पुलिस के हवाले कर दूँगा।"

"वह क्यो ?" उसने सहम कर कहा।

"क्योकि तुमने एक औरत को छेडा है।"

"औरत !" उसने आश्चर्य से चारो ओर देखा, क्योकि औरत तो औरत वहाँ औरत की गंध तक न थी, और फिर वह यह भी जानता था कि औरत तो क्या वह वकरी तक को छेडने का साहस नही कर सकता। लेकिन उसने तुरत जेव से पचास रुपये निकाल कर उस भद्र पुरुष की भेंट कर दिये और जव आगे से यह उत्तर मिला कि यह तो कम हैं, तो उसने घर से सौ रुपये और लाकर दिये और अपने कथनानुसार "खाहम्खाह की झिक-झिक" से वच गया।

जानिसार 'अख्तर' की पितृ-भूमि खैरावाद, जिला सीतापुर, (अवध) है, लेकिन जन्म उसका (१९१४ मे) ग्वालियर मे हुआ। प्रारभ से ही घर का वातावरण साहित्यिक था। पिता 'मुजतर' खैरावादी उर्दू के प्रसिद्ध शायरो मे से थे, अतएव 'अख्तर' को वचपन ही से शेर कहने की धुन सवार हो गई और दस ग्यारह वर्ष की आयु मे उसने नियमपूर्वक शेर लिखने शुरू कर दिये। १९३९ ई० मे अलीगढविश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी मे एम० ए० करने के वाद १९४० में वह विक्टोरिया कालेज ग्वालियर मे उर्दू का लैक्चरर नियुक्त हुआ, लेकिन

१९४७ के साम्प्रदायिक दगो मे त्यागपत्र देकर भोपाल चला गया और वहा हमीदिया कालेज के उर्दू-फारसी विभाग का अध्यक्ष बन गया। फिर जनवरी १९५० मे वहाँ से भी त्यागपत्र देकर वह बम्बई चला गया जहाँ वह अब तक है।

१९३५ तक जानिसार की शायरी रोमासवाद तक सीमित थी लेकिन १९३६ से उसकी शायरी की विषय-वस्तु मे वैविध्यपूर्ण विशालता आने लगी, और उसी वर्ष जब साहित्य मे प्रगतिशील आदोलन प्रारम्भ हुआ तो वह भी उसका समर्थक बन गया। उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक एहतिशाम हुसैन ने जानिसार 'अख्तर' की शायरी मे हुए तत्कालीन परिवर्तन का विवेचन करते हुए लिखा है · "अख्तर की शायरी मे प्रेम की रोमाटिक उद्भावना मे धीरे-धीरे रोमाटिक क्रान्तिवाद का सम्मिश्रण होता गया, और जब सामाजिक यथार्थवाद ने शायर के दृष्टिकोण मे अपना स्थान बना लिया तो उसकी दृष्टि एक यथार्थवादी की तरह जीवन के प्रत्येक पहलू पर पडने लगी और जीवन और क्रान्ति की उद्भावना भी उसके लिए उसी प्रकार प्रिय बन गई जिम प्रकार नक्षत्रो की रोमाटिक उद्भावना।"

उस काल की अख्तर की क्रान्तिवादी शायरी मे अग्रेज साम्राज्य के विरुद्ध घोर घृणा और अपने देश की स्वाधीनता के प्रति गहरा प्रेम-भाव भरा हुआ है। उसकी शायरी ने हर कदम और हर मोड पर स्वाधीनता-सग्राम का साथ दिया है। दूसरा महायुद्ध, भारतीय नेताओ के मतभेद, जनसाधारण की दुर्दशा, आर्थिक सकट, बगाल का अकाल, मित्र राष्ट्रो की विजय, राजनीतिक स्वाधीनता, देश का विभाजन, साम्प्रदायिक उपद्रव, अमरीकी और अग्रेजी साम्राज्य के नेतृत्व में युद्ध की तैयारी और रूस के नेतृत्व मे विश्व-शाति के लिए क्रियात्मक आदोलन, चीन की क्राति—इत्यादि समस्त राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ का पूरा प्रतिबिम्ब उसकी शायरी मे विद्यमान है। वह कभी भविष्य के प्रति निराश नही हुआ। उसकी शायरी इस भावना से सचारित हुई है कि आज का जीवन-सघर्ष चूंकि आने वाले कल के नव-निर्माण का सूचक है, इसलिए जीवन-सघर्ष की तीव्रता से घबराना नही चाहिये। आज उसकी शायरी मे सामाजिक वास्त-विकताओ का गहरा बोध है और अब उसकी विषय-वस्तु वह मानव है जो समाज और प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सुन्दर, सरस, सन्तुलित जीवन के निर्माण के लिए सघर्षशील है।

राजनीतिक-बोध की तरह जानिसार 'अख्तर' का कलात्मक बोध भी बहुत

परिपक्व है। इसका कारण एक तो उसका काव्य-सम्बन्धी उत्तराधिकार है और दूसरे उसने प्राचीन साहित्य का गहरा अध्ययन किया है। अत कला के रचना-कौशल को पूरा महत्त्व देते हुए भी वह विषय की ऊष्णता को कम नहीं होने देता। रूप-विधान के नए प्रयोगो मे भी उसने अपने रचना-कौशल का अच्छा परिचय दिया है।

अपने अधिकतर समकालीन शायरो की तरह 'अख्तर' की प्रारभिक शायरी पर भी 'जोश' मलीहाबादी का काफी प्रभाव था, लेकिन धीरे-धीरे उसने स्वय को इससे मुक्त कर लिया और रंग तथा रस के सुन्दर समन्वय से नये-नये रेखा-चित्र बनाये। 'जोश' के बाद शायरो की नई पीढी मे उसका नाम 'मजाज़', 'फैज़', 'जज्बी', 'मख्दूम' आदि के साथ लिया जाता है। और संभवत उसकी रचनाओ का भडार अपने इन समकालीन शायरो मे सबसे अधिक है।

यह है जानिसार अख्तर ! जिसे यदि कुछ प्रदान कीजिये तो कोई धन्यवाद नही और यदि कुछ छीन लीजिये तो कोई निन्दा नही। उसके बाल उलझे हुए हैं, लेकिन वह खुश है। घिसते-घिसते चप्पल की एडी गायब हो चुकी है, लेकिन उसे चिन्ता नही। सुबह वह इसलिए उजले कपडे पहनता है कि शाम को मैले चिकट हो जायें, और नियमबद्ध जीवन व्यतीत करने की उसकी 'आकाक्षा' तो इस स्तर पर पहुँच चुकी है कि अब वह किसी नियम का पालन नही कर सकता और आठो पहर अस्त-व्यस्त रहता है।

मराहिल[1]

एक लम्हे को कभी वक्त की गर्दिश[2] न थमी।
हस्बे-दस्तूर[3] महो-साल[4] बदलते ही रहे॥
एक लौ, एक लगन, एक लहक दिल में लिये।
हम मुहब्बत की कठिन राह पे चलते ही रहे॥

कितने पुरपेच[5] मराहिल को किया तै हमने।
वादिया कितनी मिली बीच मे दुशवार-गुज़ार[6]॥
सैकडो सगे-राह[7], राह मे हायल थे मगर।
एक लम्हे को भी टूटी न जुनूँ[8] की रफ्तार॥

आज छाये हैं वो घनघोर अधेरे लेकिन।
जिन मे ढूढे से भी मिलते नही राहो के सुराग़[9]॥
वो अधेरे कि निकलते हुए डरती हो निगाह।
सामने हो तो नज़र आये न मज़िल का चिराग॥

मुझ से बदज़न[10] न हो ऐ दोस्त कि मेरी नज़रें।
क्या हुआ पेचो-ख़मे-राह मे[11] उलझी हैं अगर॥
रोदे-कुहसार[12] की हर लम्हा भटकती मौजें[13]।
अपनी मज़िल की तरफ ही तो रही गर्मे-सफर[14]॥

---

१. मज़िलें २. चक्कर ३ नियमानुसार ४. महीने और वर्ष ५. पेचदार ६. कठिन ७ मार्ग के पत्थर (बाधायें) ८ उन्माद ९ चिन्ह १०. खफ़ा ११. मार्ग के पेचों मे १२ पहाडी नदी १३ लहरें १४ गतिशील

मुझ से बरगश्ता[1] न हो तू कि मेरा दिल है वही।
क्या हुआ फिक्र[2] के छाये हैं जो गहरे बादल ॥
चश्मे - ज़ाहिर[3] से जो छुप जाये तो छुप जाने दे।
अब्र[4] में बुझ नही जाती है कमर[5] की मशअ़ल ॥

मेरे चेहरे पे जो है वक्त का शबगूं परतौ[6]।
है उसी अक्स[7] से धुदला तेरा आईना-ए-दिल[8] ॥
आ कि ये लम्हा - ए - हाज़िर[9] नही है अपना।
है परे आज की जुलमात से[10] अपनी मंज़िल ॥

इन धुआं - धार अंधेरों से गुज़रने के लिए।
खूने - दिल से कोई मशअ़ल तो जलानी होगी ॥
इश्क के रफ्ता-ओ-सरगश्ता जुनूं[11] को ऐ दोस्त।
ज़िन्दगानी की अदा आज सिखानी होगी ॥

---

१. रुष्ट २. चिंता ३. प्रकट दृष्टि ४. बादल ५. चांद ६ अंधकारमय प्रतिबिम्ब ७ प्रतिबिम्ब ८. दिल का आईना अर्थात् निर्मल हृदय ९. वर्तमान क्षण १०. अंधेरों से ११. आवेश-पूर्ण और गतिशील उन्माद

अमन-नामा

(एक लम्बी नज़्म का कुछ भाग)

पिला साकिया बादा-ए-खानासाज़[१]
कि हिन्दुस्ता पर रहे हमको नाज़
मुहब्बत है खाके-वतन[२] से हमे
मुहब्बत है अपने चमन से हमे
हमे अपनी सुबहो से शामो से प्यार
हमें अपने शहरों के नामो से प्यार
हमे प्यार अपने हर एक गाव से
घने बरगदो की घनी छाव से
हमें प्यार अपनी इमारात से[३]
हमें प्यार अपनी रिवायात से[४]
उठाये जो कोई नज़र क्या मजाल
तेरे रिंद[५] लें बढके आँखें निकाल
सलामत रहे अपने दश्तो-दमन[६]
रहे गुनगुनाता हमारा गगन
निगाहे हिमालय की ऊँची रहें
सदा चाद तारो को छूती रहे
रहे पाक[७] गगोत्री की फबन
मचलती रहे जुल्फे-गंगो-जमन[८]
रहे जगमगाता ये सगम का रूप
चमकती खुनक[९] चांदनी, नर्म धूप

---

१. घर की खेंची हुई शराब (तेज़) २ देश की मट्टी ३. भवनो से ४ परम्पराओं से ५ पियक्कड ६ जगल और टीले ७ पवित्र ८. गगा-जमुना के केश ९ शीतल

झलकती रहे ये अशोका की लाट
ये गोकुल की गलियां, ये काशी के घाट
लुटाती रहे अपने नैनों का मद
ये सुबहे-बनारस, ये शामे-अवध
नहाता रहे नर्म किरनों मे ताज
रहे ता-कयामत मुहब्बत की लाज
अजनता के बुत रक़्स[1] करते रहे
हसी गार[2] तारो से भरते रहे
रहें मुस्कराती हसी वादियां
रहें शाद[3] जंगल की शहजादियां
हरी खेतियां लहलहाती रहे
जवां लडकियां गीत गाती रहे
लहकता रहे सब्ज़ मैदां मे धान
ज़मीनों पे बिछते रहे आसमान
फज़ा[4] मे घटाएं गरजती रहें
जवा छागलें तट पे बजती रहें
उड़ाती रहे आचलों को हवा
मल्हारो की बूंदो मे गूंजे सदा
महकते रहे सब्ज़ आमो के बौर
चढाती रहे पीग झूले की डोर
पपीहे की पी-पी तो, कोयल की कूक
उठाती रहे नर्म सीनो में हूक
दहकती रहे फाग होली की आग
रहें खेलती नारियां पी से फाग
सदा गाये राधा कन्हैया के गुण
मचलती रहे बन में मुरली की धुन

---

१. नृत्य २. सुन्दर गुफायें ३. प्रसन्न ४. आकाश

सलामत ये मथुरा की नगरी रहे
छलकती ये रगो की गगरी रहे
रहे ये दिवाली की जगमग बहार
मडेरो पे जलते दियो की कतार
फ़ज़ा रोशनी मे नहाती रहे
हमारी ज़मी जगमगाती रहे
रहे ये बसन्तो के मेले की धूम
रहें शाद ये गीत गाते हुजूम
हसीनो के लहकें बसन्ती लिबास
रहें नर्म चेहरो पे हल्की मिठास
हसी राखिया झलझलाती रहे
झमाझम सितारे लुटाती रहे
रहे अपने भाई पे बहनो को नाज़
ये मासूम नर्मी, ये मीठा गुदाज़[1]
घरो का तकद्दुस[2] रहे बरकरार
ये बेटो के माथे पे माओ का प्यार
रहे शादो-आबाद सहनो की धूम
रहे आगनो मे चहकते नजूम[3]
सलामत रहे दुल्हनो की फबन
सलामत रहें दिल मे खिलते चमन
सलामत रहे अखड़ियो को हया[4]
सलामत रहे घू घटो की अदा
सलामत दोपट्टो की रगी बहार
सलामत जवा आचलो का वकार[5]
सलामत रहे पाक अफशा[6] का नूर
सलामत रहे बीदियो का ग़रूर

---

१ नर्मी २ पवित्रता ३ सितारे (बच्चे) ४. लज्जा ५. शान (गौरव) ६ माथे का पवित्र सिंदूर ७ प्रकाश

सलामत रहे काजलों की लकीर
सलामत रहे नर्म नज़रो के तीर
सलामत रहे चूड़ियों की खनक
सलामत रहे कंगनों की चमक
सलामत हसीनो के सोलह सिंगार
ये जूड़े पे लिपटे चवेली के हार
सलामत रहे मृग-नैनो के वान
सलामत रहे मरने वालो की शान
सलामत वफाओ के अरमां रहे
सलामत मुहब्बत के पैमां[1] रहे
सलामत रहे हीर-रांझे के गीत
रहे हार मे भी मुहब्बत की जीत
लजाना रहे, मुस्कराना रहे
मनाना रहे और रूठ जाना रहे
मुहब्बत के चश्मे उबलते रहे
जवां-साल[2] नगमों मे ढलते रहे
रहे 'जोश'[3] की शवनमी शायरी
मै-ओ-गुल की मौजूं हसी साहरी[4]
दिलो पर रहे वज्द-आगी सुकूत[5]
रहे गुनगुनाता हुआ 'मेघदूत'
रहे धूम 'टैगोरो - इक़वाल' की
रहे शान पंजावो - वंगाल की
रहे नाम अपने अदव[6] का वुलंद[7]
दिलो मे समाया रहे 'प्रेमचन्द'

---

१. प्रण २. नवीनतम ३. 'जोश' मलीहाबादी ४. शराब और फूलो की सुन्दर जादूगरी ५. नगीनी चुप्पी ६. साहित्य ७. ऊंचा

कितने लम्हे कि ग़मे-ज़ीस्त के[1] तूफ़ानो मे
ज़िन्दगानी की जलाये हुए बाग़ी मशअल
तू मेरा अज़्मे-जवां[2] बन के मेरे साथ रही

कितने लम्हे कि ग़मे-दिल से उभर कर हमने
इक नई सुबहे-मुहब्बत[3] की लगन अपनाई
सारी दुनिया के लिए, सारे ज़माने के लिए

इन्ही लम्हो के गुलावेज़[4] शरारो का तुझे
गूंध कर आज ,कोई हार पहना दू आजा
चूम कर मांग तेरी तुझ को सजा दूं आजा।

[अख़तर ने यह नज़्म पत्नी के देहात पर लिखी थी]

---

१ जीवन-संघर्ष (दुखों) के २ दृढ संकल्प ३ प्रेम के प्रभात ४ फूलो-ऐसे

क़तए

ये किस का ढलक गया है आंचल
तारों की निगाह झुक गई है,
ये किस की मचल गई हैं ज़ुल्फें
जाती हुई रात रुक गई है।

◇ ◇ ◇

हुस्न का इत्र, जिस्म का संदल
आरिजों के[1] गुलाब, ज़ुल्फ का ऊद[2],
बाज़ औकात सोचता हूँ मैं
एक खुशबू है सिर्फ़ तेरा वुजूद[3]।

◇ ◇ ◇

अब्र[4] में छुप गया है आधा चांद,
चांदनी छन रही है शाखों से,
जैसे खिड़की का एक पट खोले,
झांकता हो कोई सलाखों से,

◇ ◇ ◇

यूं उसके हसीन आरिज़ों पर,
पलकों के लचक रहे हैं साये,
छिटकी हुई चांदनी में 'अख़्तर',
जैसे कोई आड़ में बुलाए।

◇ ◇ ◇

जीवन की ये छाई हुई अंधियारी रात,
क्या जानिये किस मोड़ पे छूटा तेरा साथ,
फिरता हूं डगर-डगर अकेला लेकिन,
शाने पे[5] मेरे आज तलक है तेरा हाथ।

---

१. कपोलों के २. एक सुगंधित काली लकड़ी ३. अस्तित्व ४. बादल
५. कंधे पर

परिचय

कद साढे पाँच फुट, इकहरा वदन, लम्वी-लम्वी लचकीली टाँगें, बडे-बड़े सीधे वाल और चेचकी चेहरे पर उभरी हुई यह लम्वी नाक।

यह शायद १९४३-४४ की वात है कि उपरोक्त हुलिये का एक बीस-वर्षीय युवक, जिसका नाम अब्दुलहई था और जो अपने आपको उर्दू का शायर कहता था लेकिन शायर कम और किसी कालेज का विद्यार्थी अधिक मालूम होता था, सुवह दस-ग्यारह वजे से रात के दो-ढाई वजे तक लाहौर की सडकें नापता नज़र आता था। अपनी जान-पहचान के लोगो से लेकर, जिनकी सख्या वहुत अधिक थी, राह चलते लोगो तक को चाय और सिग्रेट पिलाना उसकी आदत थी और इस वीच मे अपनी समस्त नज्मे-गज़लें, जो उसे ज़वानी याद थी, लम्वी-चौडी भूमिकाओ के साथ सुनाते चले जाना शायद उसका पेशा था। लेकिन एक प्रकाशक से दूसरे प्रकाशक के यहाँ और एक मित्र से दूसरे मित्र के यहाँ सैकडो चक्कर लगाने और चायपानी मे सैकडों रुपये लुटाने पर भी जब किसी भले-मानस ने उसका कविता-सग्रह प्रकाशित करने की हामी न भरी तो अपनी इस उत्कट अभिलाषा को मन मे दवाये वह वापस लुध्याना चला गया और लोग-वाग वहुत शीघ्र उसे भूल गये।

लुध्याने का यह विद्यार्थी आज का 'साहिर' लुध्यानवी है और उसके जिस कविता-सग्रह 'तलखियाँ'* को किसी प्रकाशक ने एक नज़र देखने तक का कष्ट न किया था, अव तक उसी कविता-सग्रह के नौ-दस सस्करण प्रकाशित हो

---

* प्रगति प्रकाशन (दिल्ली) से देवनागरी लिपि मे भी छप चुका है।

चुके हैं और वह उर्दू पढ़े-लिखे 'युवक वर्ग' का इष्ट शायर है।

'साहिर' लुध्यानवी को उर्दू पढ़े लिखे 'युवक वर्ग' का इष्ट शायर कहते हुए जो मैंने शब्द 'युवक' का प्रयोग किया है तो इससे मेरा अभिप्राय एक तो यह है कि इस युवक वर्ग में अधिक सख्या मध्यवर्ग और ऊपर के मध्यवर्ग के कालेज के विद्यार्थियो की है और दूसरे यह कि उसकी शायरी का केन्द्रीय-बिन्दु 'प्रेम' है। और चूंकि इस सम्बंध मे उसे आपबीती को जगबीती बनाने का बहुत अच्छा गुर आता है इसलिए हमारे युवक वर्ग को 'साहिर' की लगभग वे सब नज्मे ज़बानी याद हैं जिनमे एक असफल प्रेमी की दुखी आत्मा बेतरह छटपटाती है और टूटे हुए दिल की धड़कन बडे कातर स्वर में गुनगुना उठती है :

जब भी राहो मे नज़र आये हरीरी मलबूस[1]।
सर्द आहो मे तुझे याद किया है मैंने॥

या

तू किसी और के दामन की कली है लेकिन,
मेरी रातें तेरी खुशबू से बसी रहती हैं।
तू कही भी हो तेरे फूल-से आरिज़ की[2] कसम,
तेरी पलकें मेरी आँखो पे झुकी रहती है।

और उसकी नज्म 'ताजमहल' तो हर युवक-युवती के लिए 'किताबे-इश्क' का सा दर्जा रखती है।

'साहिर' को मैंने बहुत निकट से देखा है। उससे मुलाकात से पहले भी मैंने 'तलखियाँ' की समस्त-नज्मे गजलें पढी थी और कुछ अवसरो पर उसे अपने शेर सुनाते हुए भी सुना था, लेकिन उसके व्यक्तित्व के आधार पर उसकी शायरी को परखने का अवसर मुझे उस समय मिला जब १६४८ ई० मे 'शाहराह' और 'प्रीतलड़ी' (दिल्ली से प्रकाशित होने वाली दो मासिक पत्रिकायें) के सम्पादन के सिलसिले मे हम दोनो एक साथ काम करने लगे और एक ही घर मे रहने लगे।

'साहिर' अभी-अभी सोकर उठा है (सुबह दस-ग्यारह बजे से पहले वह कभी नहीं उठता) और नियमानुसार घुटनो मे सिर दिये चुपचाप किसी भी ओर निहारे चला जा रहा है (इस समय वह किसी प्रकार की खटपट पसन्द नहीं करता, यहाँ तक कि उसकी अम्मी, जिसे वह बेहद चाहता है और अपने जागीर-

---

१ रेशमी लिबास २. कपोलो की

दार पति से विवाह-विच्छेद के बाद से जिसके जीवन का वह एकमात्र सहारा है, वह भी इस समय उसके कमरे मे आने का साहस नही कर सकती) कि एकाएक जैसे उस पर एक दौरा-सा पडता है और वह चिल्लाता है "चाय !"

और उस समय की इस 'ललकार' के बाद दिन-भर बल्कि रात गये तक वह निरन्तर बोले चला जाता है। आधे घण्टे से अधिक किसी जगह टिक कर नही बैठता। मित्र-मुलाकातियो मे घिरे रहने से उसे एक प्रकार का मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है और उसके मित्र-मुलाकाती भी उसकी सगति मे किसी तरह की थकान या उकताहट महसूस नही करते। वह उन्हे सिग्रेट पर सिग्रेट पेश करता है। चाय के प्यालो के प्याले उनके कण्ठ के नीचे उतारता है, उन्हें खाना खिलाता है और अपनी नज्मो, गजलो के अतिरिक्त दर्जनो दूसरे शायरो के हजारो शेर, जो उसे जबानी याद हैं, बडी सुन्दर भूमिकाओ के साथ सुनाता चला जाता है। उसे अपनी नज्मे-ग़ज़लें और अन्य शायरो के हजारो शेर ही नही, अपने जीवन की हर छोटी-बडी घटना भी याद है। उसे अपने मित्रो के किसी भी जमाने मे लिखे हुए पूरे के पूरे पत्र याद हैं। आजतक उसकी शायरी के पक्ष या विपक्ष मे जितने लेख लिखे गये हैं, उनकी हर पक्ति याद है यहाँ तक कि मेडन थियेटर की 'इन्द्रसभा' और 'शाह बहराम' नामक फिल्मो के पूरे के पूरे डायलॉग जबानी याद हैं।

और रात के नौ, दस, गयारह या बारह बजे, जब उसके मित्र-मुलाकाती दूसरे दिन मिलने का वायदा करके उसका साथ छोड जाते हैं और यद्यपि कम से कम एक मित्र उस समय भी उसके साथ अवश्य होता है, उसे विचित्र प्रकार के एकाकीपन का अनुभव होने लगता है। उस समय न जाने कहाँ से उसमे 'बोहीमियनिज्म' के कीटाणु घुस आते हैं जो उसे ससार का प्रत्येक व्यक्ति अपने सामने तुच्छ नजर आने लगता है। दिन भर का हँस-मुख और सरल-स्वभाव 'साहिर' इस समय एकदम बदल जाता है। दिन भर की बातें दोहरा-दोहरा कर वह अपने मित्रो की हठबुद्धि पर, जिसकी दिन भर वह प्रशसा कर चुका होता है, व्यग के तीर छोडता है और "क्या पिद्दी क्या पिद्दी का शोरबा" कहकर उनका मजाक़ उडाता है और यों स्वय ही एक प्रश्न-चिह्न बन जाता है।

यह प्रश्न-चिन्ह चलते-चलते साथियो से कभी बहुत आगे बढ जाता है और कभी बहुत पीछे रह जाता है। एक जरा-सी बात पर उकता जाना, शर्मा जाना या घबरा जाना उसका स्वभाव है और जहा तक कोई फैसला करने का सम्बन्ध

है, जीवन की बडी-बडी समस्याएँ तो एक ओर, किसी मुशायरे मे शेर सुनाने से पूर्व वह यह फैसला भी नही कर पाता कि उस समय उसे कौनसी नज्म या गज़ल सुनानी चाहिये। यहा तक कि किस पतलून पर वह कौनसी कमीज़ पहने—इसके लिए भी उसे अपनी अम्मी या पास बैठे मित्रो की सहायता लेनी पडती है।

उर्दू के एक शायर 'कैफी' आज़मी ने 'नये अदब के मेमार' सीरीज की पुस्तिका मे 'साहिर' की इस स्थिति का बडा सुन्दर चित्रण किया है। लिखते हैं :

'जिन लोगो ने साहिर को करीब से नही देखा शायद उनको यह मालूम नही कि माहौल (वातावरण) से मायूसी और तरक्कीपज़ीर कुव्वतो (प्रगतिशील शक्तियो) से दूरी ने 'साहिर' के मिज़ाज मे बेइन्तिहा शक पैदा कर दिया है। प्रोड्यूसर तनख्वाह बढा दे तो सोचने लगते हैं कोई खास बात तो नही ? कोई लड़की सलाम कर ले तो फिक्र पैदा हो जाती है कि मेरी नाकामियो मे कोई और इज़ाफा तो नही होने वाला है ! और कोई लडकी वाकई मुहब्बत करने लगे तो दिल धडकने लगता है कि :

तेरी सासो की थकन, तेरी निगाहो का सुकूत[1],
दरहकीकत कोई रगीन शरारत ही न हो।
मैं जिसे प्यार का अन्दाज़ समझ बैठा हूँ,
वो तबस्सुम वो तकल्लुम[2] तेरी आदत ही न हो।"

और मैं समझता हूँ आत्मनिर्णय की इसी कमी ने, जो उसके व्यक्तित्व का बहुत बडा अग है और इसलिए उसकी शायरी का भी अग है, उसे मध्य वर्ग के युवक-युवतियो का इष्ट शायर बना दिया है। हमारे मध्य वर्ग के युवक-युवतिया जिस ढग से जीवन की समस्याओ, असफलताओ और रिक्तताओ को लेते हैं उसी भावावेश के साथ 'साहिर' इन अनुभूतियो को अपनी शायरी मे समोकर प्रस्तुत करता है। और चूंकि उसके पास समाज की नैतिकता और व्यवस्था को परखने और उसके खोटेपन को प्रमाणित करने की कसौटी 'प्रेम' है इसलिए कम या अधिक किसी हृदय पर भी उसका वार खाली नही जाता।

लेकिन इससे मेरा आशय बिल्कुल यह नहीं है कि 'साहिर' का प्रेम केवल सौदर्य तथा आसक्ति और मिलन तथा विद्रोह तक सीमित है। यदि ऐसा होता तो वह केवल औरत का शायर होकर रह जाता और उसकी शायरी जिन्दगी और इन्सानियत से दूर रहती। लेकिन सौभाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। 'साहिर' का

---

१. चुप्पी २. बात करने का ढग

प्रेम नारी से शुरू ज़रूर होता है, लेकिन यह प्रेम बढते-बढ़ते अन्त मे उस स्थान पर जा पहुँचता है जहा व्यक्तिगत प्रेम सामूहिक प्रेम मे परिवर्तित हो जाता है और शायर केवल अपनी प्रेमिका ही का नहीं, मनुष्य-मात्र का आशिक बन जाता है और

तुमको ख़बर नही मगर इस सादा-लौह[1] को।
बर्बाद कर दिया तेरे दो दिन के प्यार ने॥

कहते-कहते पहले अपनी प्रेमिका से दबे स्वर मे यह कहता है :

मैं और तुझ से तर्के-मुहब्बत की[2] आरज़ू ?
दीवाना कर दिया है गमे-रोज़गार ने[3]॥

और फिर बडे स्पष्ट शब्दो मे कह उठता है कि

तुम्हारे ग़म के सिवा और भी तो गम हैं मुझे,
निजात[4] जिनसे मैं एक लहज़ा[5] पा नही सकता,
ये ऊचे-ऊचे मकानो की ड्योढियो के तले,
हर एक गाम[6] पे भूखे भिखारियो की सदा,
ये कारख़ानो मे लोहे का शोरो-गुल जिसमे,
है दफन लाखो गरीबो की रूह का नगमा,
गली-गली मे ये बिकते हुए जवा चेहरे,
हसीन आखो मे अफसुर्दगी[7] सी छाई हुई,
ये शोला-बार फज़ाएँ[8] ये मेरे देस के लोग,
ख़रीदी जाती हैं उठती जवानिया जिनकी।

ये गम बहुत है मेरी ज़िन्दगी मिटाने को,
उदास रहके मेरे दिल को और रज न दो॥

"तुम्हारे ग़म के सिवा और भी तो गम हैं मुझे"—और यही पर बस नही, 'साहिर' की शायरी मे एक ऐसा मोड भी आता है जब उसमे एक सघर्ष-शीलता उत्पन्न होती है। इस सघर्ष-शीलता की दबी-दबी चिंगारिया यद्यपि उसकी प्रारम्भिक रचनाओ मे भी मिलती हैं और जीवन की निराशाओ के साथ-साथ

---

१ सरल स्वभाव वाला २ प्रेम करना छोड देने की ३ सासारिक चिन्ताओ ने ४ मुक्ति ५ क्षण ६ क़दम ७ उदासी ८ आग बरसाने वाला वातावरण

आशाओं और मौत के कदमों की आहट के साथ-साथ[1] जिन्दगी की अंगड़ाई की झलक भी विद्यमान है लेकिन दो-टूक ढंग से वह केवल उस समय हमारे सामने आता है जब वह कहता है कि :

आज से ऐ मजदूर किसानो ! मेरे राग तुम्हारे हैं।
फाकाकश इन्सानो ! मेरे जोग विहाग तुम्हारे हैं ॥
जब तक तुम भूखे नंगे हो ये शोले खामोश न होंगे।
जब तक बे-आराम हो तुम ये नगमे राहतकोश[1] न होंगे ॥
तुम से कुव्वत[2] लेकर अब मैं तुम को राह दिखाऊँगा।
तुम परचम लहराना साथी, मैं बरबत पर गाऊँगा ॥
अब से मेरे फन[3] का मकसद[4] जंजीरें पिघलाना है।
आज से मैं शबनम के बदले अंगारे बरसाऊँगा ॥

लेकिन उसी 'तरक्की-पजीर कुव्वतों' (शायद इन से 'कैफी' आजमी का अभिप्राय 'मजदूर किसान' से है) की दूरी ने उनके इस सङ्कल्प के बावजूद उसे मजदूरों किसानों के लिये वैसी कोई रचना नहीं रचने दी जैसी रचनायें उसने मध्यवर्ग के लोगों के लिए रची हैं। मेरे विचार में 'साहिर' से इस प्रकार की कोई माग करना उसकी सीमाओं को देखते हुए उस पर ज्यादती करना होगा। फिर यह भी तो जरूरी नहीं है कि केवल मजदूर और किसान के बारे में लिख कर ही कोई कवि या लेखक अपनी प्रगतिशीलता का प्रमाण दे सकता हो। यदि कोई कवि अथवा लेखक किसी कारण से अपनी सीमाओं से बाहर नहीं निकल सकता लेकिन वह सचेत तथा सूक्ष्मग्राही है तो अपनी सीमाओं में रहते हुए भी वह प्रगतिशील साहित्य का निर्माण कर सकता है। बल्कि इस के विपरीत यदि वह अपनी सीमाओं में रहते हुए अपनी सीमाओं से बाहर के किसी विषय पर कलम उठायेगा, तो उसकी रचना में वह वास्तविकता और अर्थ-गाम्भीर्य उत्पन्न नहीं हो सकेगा जो अनुभव तथा प्रेक्षण पर आधारित होता है और अनिवार्य रूप से श्रेष्ठ साहित्य का मूल।

'साहिर' का जन्म लुध्याने के एक जागीरदार घराने में ८ मार्च १९२२ को हुआ। उसकी माता के अतिरिक्त उनके पिता की कई पत्नियाँ और थीं लेकिन एकमात्र संतान होने के कारण उसका पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार में हुआ। उस वातावरण के कारण उसमें अपनी हर उचित-अनुचित बात मनवाने, अपनी हठ पर अड़े रहने और बहुत ठाठदार जीवन व्यतीत करने की अभिरुचियाँ

१. सुखप्रद २. शक्ति ३. कला ४. उद्देश्य

उत्पन्न हुईं जिनके कुछ अश आज भी उसके व्यक्तित्व मे मौजूद हैं। लेकिन अभी वह वच्चा ही था कि पति की विलासताओ के कारण 'साहिर' की माता ने उससे विवाह-विच्छेद कर लिया और चूकि 'साहिर' ने अदालत मे पिता पर माता को प्रधानता दी थी, इसलिए उस घटना के वाद अपने पिता से और उसकी जागीर से उसका कोई सम्वन्ध न रहा। इस पर जीवन की तावडतोड कठिनाइयो और निराशाओ ने उसे समय से बहुत पहले प्रौढ़ बना दिया। उसने प्रेम किया और असफल रहा। कालेज के जमाने मे विद्यार्थियो के आन्दोलनो मे भाग लिया तो कालेज से निकाल दिया गया और फिर बहुत शीघ्र उसे अपना और अपनी माता का पेट पालने के लिए कमर कसनी पडी। अतएव प्रौढ होते ही उसकी उस घृणा का मुंह स्वय ही उस पूरे वर्ग की ओर मुड गया जिसका एक प्रतिनिधि उसका पिता था और जिसका वर्णन उसने अपनी एक नज्म 'जागीर' मे इन शव्दो मे किया है

मैं उन अजदाद[1] का वेटा हूँ जिन्होने पैहम[2]।
अजनवी कौम के साये की हिमायत की है ॥
गदर की साअते-नापाक[3] से लेकर अव तक।
हर कडे वक्त मे सरकार की खिदमत की है ॥

कालेज से निकाले जाने के वाद वह लाहौर चला गया जहाँ उसने 'शाहकार' और 'अदवे-लतीफ' का सपादन किया लेकिन इससे सिगरेट-पानी का खर्च तक निकलता न देख वह वम्वई फिल्म जगत मे चला गया। उसका जीवन कुछ-कुछ ढर्रे पर आ चला था कि भारत-विभाजन ने एक वार फिर उसे अपने अड्डे से उखाड फेंका। माता लुध्याने से शरणार्थी वनकर लाहौर चली गई थी, इसलिए 'साहिर' भी जैसे-तैसे खून की नदियाँ फलाँगता लाहौर चला गया। पजाव के खून-खरावे ने उसके दिल पर जो कुठाराघात किया उसे हम उसकी नज्म 'आज' मे आज भी हरे घाव के रूप मे देख सकते हैं। उसे लाहौर का वातावरण वडा विचित्र लगा जिसमे चारो ओर केवल एक ही धर्म के लोग नजर आते थे। फिर 'सवेरा' मे, जिसका वह सपादक वन गया था, उसने कुछ ऐसे लेख लिखे कि पाकिस्तान सरकार ने उसके विरुद्ध वारट गिरफ्तारी जारी कर दिये और यो लाहौर को छोडकर पहले उसने दिल्ली मे शरण ली और फिर अपने पुराने अड्डे फिल्म जगत वम्वई मे चला गया और आश्चर्य है कि वरावर आठ साल से वही है।

---

१. पितृगण २ निरन्तर ३. अपवित्र क्षण

ताजमहल

ताज, तेरे लिए इक मज़हरे-उलफत[1] ही सही
तुझ को इस वादी-ए-रंगी[2] से अकीदत[3] ही सही

मेरी महबूब ! कही और मिलाकर मुझ से !

बज़्मे-शाही[4] मे गरीबो का गुज़र क्या माने ?
सब्त[5] जिस राह पे हो सतवते-शाही[6] के निशा
उस पे उलफत भरी रूहो का सफर क्या माने ?

मेरी महबूब पसे - पर्दा - ए - तशहीरे - वफा[7]
तूने सतवत के निशानो को तो देखा होता
मुर्दा शाहो के मकाबिर से[8] बहलने वाली
अपने तारीक[9] मकानो को तो देखा होता

अनगिनत लोगो ने दुनिया मे मुहब्बत की है
कौन कहता है कि सादिक[10] न थे जज़्बे उनके
लेकिन उनके लिए तशहीर का सामान[11] नही
क्योकि वो लोग भी अपनी ही तरह मुफ़लिस थे

ये इमारातो - मक़ाबिर, ये फ़सीलें, ये हिसार[12]
मुतलक़-उल-हुक्म[13] शहनशाहो की अज़मत[14] के सतू[15]

---

१. प्रेम का प्रतिरूप २ रंगीन वादी ३. श्रद्धा ४. शाही महफिल
५. अंकित ६ शाहाना शान-शौकत ७. प्रेम के प्रदर्शन (विज्ञापन) के पीछे
८. मक़बरो से ९. अंधेरे १०. सच्चे ११. विज्ञापन की सामग्री १२ दुर्ग
१३. पूर्ण सत्ताधारी १४. महानता १५. सतून

सीना-ए-दहर के[1] नासूर हैं कुहना[2] नासूर
जज्ब है इन मे तेरे और मेरे अजदाद का[3] खूँ

मेरी महबूब ! उन्हे भी तो मुहब्बत होगी
जिनकी सन्नाई[4] ने बख्शी है इसे शक्ले-जमील[5]
उनके प्यारो के मकाबिर रहे बे-नामो-नमूद[6]
आज तक उन पे जलाई न किसी ने कदील[7]

ये चमनज़ार[8], ये जमना का किनारा ये महल
ये मुनक्कश[9] दरो-दीवार, ये महराब, ये ताक
इक शहनशाह ने दौलत का सहारा लेकर
हम गरीबो की मुहब्बत का उड़ाया है मज़ाक

मेरी महबूब ! कही और मिला कर मुझसे !

---

१ ससार की छाती के २ पुराने ३ पूर्वजो का ४ कारीगरी ५ सुन्दर रूप ६ गुमनाम ७ दिया ८ बाग़ ९ चित्रित

मता-ए-ग़ीर[1]

मेरे ख़्वाबो के झरोको को सजाने वाली।
तेरे ख़्वाबो मे कही मेरा गुज़र है कि नही ?
पूछ कर अपनी निगाहो से बतादे मुझको।
मेरी रातों के मुकद्दर मे[2] सहर[3] है कि नही ?

चार दिन की ये रफ़ाक़त[4] जो रफ़ाक़त भी नही।
उम्र भर के लिए आज़ार[5] हुई जाती है॥
ज़िन्दगी यूं तो हमेशा से परेशान सी थी।
अब तो हर सास गिरांबार[6] हुई जाती है॥

मेरी उजड़ी हुई नीदों के शबिस्तानो मे[7]।
तू किसी ख़्वाब के पैकर की तरह[8] आई है॥
कभी अपनी सी, कभी ग़ैर नज़र आती है।
कभी इख़लास की[9] सूरत, कभी हरजाई है॥

प्यार पर बस तो नही है मेरा, लेकिन फिर भी।
तू बता दे कि तुझे प्यार करूं या न करूं ?
तूने ख़ुद अपने तबस्सुम से जगाया है जिन्हे।
उन तमन्नाओ का इज़हार करू या न करूं ?

तू किसी और के दामन की कली है, लेकिन।
मेरी रातें तेरी ख़ुशबू से बसी रहती हैं॥

---

१. दूसरे की दौलत २. भाग्य मे ३. प्रभात ४. साथ ५. मुसीबत ६. बोझल ७. शयनगृहों मे ८. प्रतिरूप की तरह ९ सच्चे प्रेम की

तू कही भी हो तेरे फूल से आरिज की[१] कसम।
तेरी पलकें मेरी आँखो पे झुकी रहती हैं ॥

तेरे हाथो की हरारत[२] , तेरे सांसों की महक।
तैरती रहती है अहसास की पहनाई[३] मे ॥
ढूंडती रहती है तखईल[४] की बाँहे तुझको।
सर्द रातो की सुलगती हुई तनहाई में ॥

तेरा अलताफो-करम[५] एक हकीकत[६] है मगर।
ये हकीकत भी हकीकत में[७] फसाना हो न हो ॥
तेरी मानूस[८] निगाहो का ये मोहतात पयाम।
दिल के खूं करने का इक और बहाना ही न हो।

कौन जाने मेरे इमरोज[९] का फर्दा[१०] क्या है?
कुरबतें[११] बढ के पशेमान भी हो जाती हैं ॥
दिल के दामन से लिपटती हुई रगी नज़रें।
देखते-देखते अनजान भी हो जाती है ॥

मेरी दरमांदा[१२] जवानी की तमन्नाओ के।
मुजमहिल[१३] ख्वाब की ताबीर[१४] बतादे मुझको ॥
तेरे दामन मे गुलिस्ता भी हैं वीराने भी।
मेरा हासिल[१५] मेरी तकदीर बता दे मुझको ॥

---

१ कपोलो की २ गर्मी ३. फैलाव ४ कल्पना ५ कृपायें ६. वास्तविकता ७ वास्तव मे ८ परिचित ९ आज (वर्तमान) १०. कल (भविष्य) ११. निकट सम्बन्ध (प्रेम) १२ बेबस १३. शिथिल १४ स्वप्न-फल १५ मुझे क्या मिलेगा

तेरी आवाज़

रात सुनसान थी, बोझल थीं फजा की सांसे ।
रूह पर छाये थे बेनाम गमो के साये ।।
दिल को ये ज़िद थी कि तू आये तसल्ली देने ।
मेरी कोशिश थी कि कम्बख्त को नींद आ जाये ।।

देर तक आखों में चुभती रही तारो की चमक ।
देर तक जहन सुलगता रहा तनहाई मे ।।
अपने ठुकराये हुए दोस्त की पुरसिश[1] के लिए ।।
तू न आई मगर इस रात की पहनाई[2] में ।

यूं अचानक तेरी आवाज़ कही से आई ।
जैसे परवत का जिगर चीर के झरना फूटे ।।
या ज़मीनों की मुहब्बत में तड़प कर नागाह[3] ।
आसमानो से कोई शोख़ सितारा टूटे ।।

शहद-सा घुल गया तल्खाबा-ए-तनहाई मे[4] ।
रंग-सा फैल गया दिल के सियाखाने मे[5] ।।
देर तक यूं तेरी मस्ताना सदायें[6] गूंजी ।
जिस तरह फूल चटकने लगें वीराने में ।।

---

१. कुशल पूछना २. फैलाव ३. अचानक ४. एकान्त के कड़वेपन में
५. अंधेरेपन मे ६. आवाज़ें

तू बहुत दूर किसी अंजुमने-नाज़[1] में थी।
फिर भी महसूस किया मैंने कि तू आई है॥
और नग़मों में छुपाकर मेरे खोये हुए ख्वाब।
मेरी रूठी हुई नींदों को मना लाई है॥

रात की सतह[2] पे उभरे तेरे चेहरे के नुकूश[3]।
वही चुप-चाप-सी आंखें, वही सादा-सी नज़र॥
वही ढलका हुआ आंचल, वही रफ्तार का ख़म[4]।
वही रह-रह के लचकता हुआ नाज़ुक पैकर[5]॥

तू मेरे पास न थी, फिर भी सहर[6] होने तक।
तेरा हर सांस, मेरे जिस्म को छूकर गुज़रा॥
क़तरा-क़तरा तेरे दीदार की शबनम टपकी।
लम्हा-लम्हा तेरी ख़ुशबू से मुअत्तर[7] गुज़रा॥

अब यही है तुझे मंज़ूर तो ऐ जाने-बहार।
मैं तेरी राह न देखूंगा सियाह रातों में॥
ढूंढ लेंगी मेरी तरसी हुई नज़रें तुझ को।
नग़मा-ओ-शेर की उमड़ी हुई बरसातों में॥

अब तेरा प्यार सतायेगा तो मेरी हस्ती।
तेरी मस्ती भरी आवाज़ में ढल जायेगी॥
और ये रूह जो तेरे लिए बेचैन-सी है।
गीत बनकर तेरे होंटों पे मचल जायेगी।

तेरे नग़मात[8], तेरे हुस्न की ठंडक लेकर।
मेरे तपते हुए माहौल में आ जाएँगे॥
चन्द घड़ियों के लिए हो, कि हमेशा के लिए।
मेरी जागी हुई रातों को सुला जाएँगे॥

---

१ महफ़िल २ स्तर ३. नैन-नक्श ४ चाल की लचक ५. वदन
६. सुवह ७ सुगंधित ८ नग़मे

चकले

ये कूचे ये नीलाम - घर दिलकशी के,
ये लुटते हुए कारवां जिन्दगी के,
कहां हैं कहां हैं मुहाफ़िज़ खुदी के,
सनाख्वाने - तकदीसे - मशरिक कहां हैं[1] ?
ये पुरपेच गलियां, ये बेख्वाब बाज़ार,
ये गुमनाम राही, ये सिक्कों की झंकार,
ये अस्मत के सौदे, ये सौदों पे तकरार,
सनाख्वाने - तकदीसे - मशरिक कहां हैं ?
तअ़फ़्फ़ुन से[2] पुर नीम-रोशन ये गलियां,
ये मसली हुई अध - खिली ज़र्द कलियां,
ये बिकती हुई खोखली रंग - रलियां,
सनाख्वाने - तकदीसे - मशरिक कहां हैं ?
वो उजले दरीचों में पायल की छन-छन,
तनफ़्फ़ुस की[3] उलझन पे तबले की धम-धम,
ये बेरूह कमरों में खांसी की ठन-ठन,
सनाख्वाने - तकदीसे - मशरिक कहां हैं ?
ये गूंजे हुए कहकहे रास्तों पर,
ये चारों तरफ भीड़ - सी खिड़कियों पर,
ये आवाज़े खिंचते हुए आंचलों पर,
सनाख्वाने - तकदीसे - मशरिक कहां हैं ?

---

१. पूर्वी देशों की पवित्रता के गुण गाने वाले कहां हैं ? २. दुर्गंध से
३. श्वासों की

ये फूलो के गजरे, ये पीकों के छीटे,
ये बेबाक नजरे, ये 'गुस्ताख फिक्रे,
ये ढलके बदन और ये मदकूक[1] चेहरे,
सनाख्वाने - तक़दीसे - मशरिक कहा हैं ?
ये भूखी निगाहे हसीनो की जानिब,
ये बढते हुए हाथ सीनो की जानिब,
लपकते हुए पाव ज़ीनो की जानिब,
सनाख्वाने - तकदीसे - मशरिक कहाँ है ?
यहाँ पीर[2] भी आचुके हैं जवा भी,
तनूमद[3] बेटे भी, अब्बा मियाँ भी,
ये बीवी भी है और बहिन भी है मा भी,
सनाख्वाने - तकदीसे - मशरिक कहा हैं ?
मदद चाहती है ये हव्वा की बेटी,
यशोधा की हमजिंस[4], राधा की बेटी,
पयम्बर[5] की उम्मत[6], जुलेखा की बेटी,
सनाख्वाने - तकदीसे - मशरिक कहा हैं ?
बुलाओ खुदायाने - दी को[7] बुलाओ,
ये कूचे, ये गलिया, ये मन्ज़र दिखाओ,
सनाख्वाने-तकदीसे - मशरिक को लाओ,
सनाख्वाने - तकदीसे - मशरिक कहा हैं ?

---

१ क्षय रोग के मारे हुए २ बूढे ३. कडियल ४ सह-जातीय ५ पैगम्बर ६ अनुयायी समुदाय ७. धर्म के भगवानो को

फुटकर शेर

हयात[1] इक मुस्तकिल गम[2] के सिवा कुछ भी नही ।
खुशी भी याद आती है, तो आंसू बन के आती है ।।

◇ ◇ ◇

अपनी तबाहियो का मुझे कोई गम नही ।
तुमने किसी के साथ मुहब्बत निभा तो दी ।।

◇ ◇ ◇

फिर न कीजे मेरी गुस्ताख-निगाही[3] का गिला ।
देखिये आपने फिर प्यार से देखा मुझ को ।।

◇ ◇ ◇

गर जिन्दगी मे मिल गये फिर इत्तफाक से ।
पूछेगे अपना हाल तेरी बेबसी से हम ।।

◇ ◇ ◇

अभी तक रास्ते के पेचो-ख्रम से दिल धड़कता है ।
मेरा ज़ौके-तलब शायद अभी तक खाम[4] है साकी ।।

◇ ◇ ◇

ऐ गमे-दुनिया तुझे क्या इल्म[5] तेरे वास्ते ।
किन बहानो से तबीयत राह पर लाई गई ।।

◇ ◇ ◇

अब ऐ दिले-तबाह तेरा क्या खयाल है ?
हम तो चले थे काकुले-गेती[6] सँवारने ।।

---

१. जीवन २. स्थायी दुख ३. नजरो ४. कच्चा ५. मालूम ६. संसार के केश (संसार)



'वामिक़' जौनपुरी

रबाबे-ज़िन्दगी में जितने टूटे तार होते हैं
उन्हीं को जोड़कर नग़मे मेरे तैयार होते हैं

परिचय

कहा जाता है कि एक सुहानी सुवह को जव 'वायरन' सोकर उठा तो उसे मालूम हुआ कि अपनी कविता 'Pilgrimage of Child Herold' द्वारा वह अंग्रेजी भाषा का एक विख्यात कवि बन चुका है। लगभग ऐसी ही एक घटना 'वामिक' के साथ घटी। जनवरी १९४४ की एक सध्या को पूरे उर्दू जगत मे उसका नाम वच्चे-बच्चे की ज़वान पर था। उसका अमर गीत 'भूखा वगाल' देश के कोने-कोने मे गाया जा रहा था। विभिन्न भाषाओ मे उसका अनुवाद हो रहा था। गीत के एक-एक वोल पर बच्चे अपने खिलौने, स्त्रियाँ अपने आभूपण और पुरुष अपनी जेवो से नोट और सिक्के निकाल-निकाल कर गाने वालों के कदमो पर डाल रहे थे। 'वामिक' ने उसके वाद भी कई सुन्दर कलाकृतियाँ प्रस्तुत की जैसे 'मीना वाज़ार',' जोया तानिया', 'रात के दो वजे', 'मीरे-कारवा' (गाधी), 'तकसीमे-पजाव', 'रक्से-विसमिल', 'ज़मीन' इत्यादि। लेकिन मुझे यह कहते हुए कोई सकोच नही हो रहा कि यदि 'वामिक' 'भूखा वगाल' के वाद और कुछ न लिखता तब भी आधुनिक उर्दू शायरी के इतिहास मे उसका नाम मोटे अक्षरो में मौजूद रहता।

अहमद मुजतवा 'वामिक़' का जन्म १९१२ ई० मे जौनपुर (यू० पी०) के एक गाव मे हुआ। घर का वातावरण विल्कुल सरकारी और जागीरदारी था। घर वाले या तो ज़मीदार-पेशा थे या अंग्रेज़ी सरकार के समर्थक तथा उच्चाधि-कारी। 'वामिक' की शिक्षा-दीक्षा उसी वातावरण मे हुई और अपने वचपन मे

ही उसे अपने इर्द-गिर्द होने वाले अत्याचार, अन्याय और वर्ग-संघर्ष का अनुभव होने लगा। उसके मस्तिष्क पर चोटें पड़ती जिन्हें वह भीतर ही भीतर दवाने पर विवश होता, लेकिन इस प्रकार दवाने ने उसके हृदय में विद्रोही भावनायें पनपती रहीं और आखिर प्रौढ़ होते ही पहले उसने अपना कलम उठाया और फिर उसके कदम भी उठ गये। उसके शायर बनने की कहानी भी काफी रोचक है जिसे उसकी अपनी जवान से सुनिये :

"१९४० में मेरे एक मित्र ने मुझ से बड़े स्नेह से पूछा कि तुम्हें इतने ज्यादा शेर याद हैं और तुम मुश्किल से ही गद्य में बात करते हो तो फिर तुम स्वयं क्यों शेर नहीं कहते ? मैंने इस खयाल से कि कौन गद्य में जवाब देकर बात को लम्बा करे उन पर अपनी योग्यता का सिक्का जमाने के लिए वही पुराना फारसी का शेर—'शेर गुफ्तन गर्चे दुर सुफ्तन बुअद' (शेर कहना यद्यपि मोती पिरोने से भी कठिन काम है लेकिन शेर समझना उनसे भी कठिन काम है) पढ़ दिया। लेकिन महानुभाव इस आसानी से मानने वाले कब थे। हाथ धोकर पीछे पड़ गये। बात यह थी कि मैं शेर को हमेशा एक चमत्कार और शायर को कोई अलौकिक व्यक्ति समझता था और यद्यपि शेर कहने की एक दबी-दबी-सी इच्छा अपने दिल में भी पाता था लेकिन इस भावना को क्रियात्मक रूप देने का साहस कभी न किया था। उन्हें फिर समझाया कि जनाब शेर कहने के लिए चाहे दो वक्त का खाना न मिले लेकिन इश्क करना बहुत जरूरी है। वे बोले, पहले शेर कहना शुरू कर दो बाद में इश्क भी हो जाएगा। कम से कम तुम्हारे शेर पढ़ने वाले तो तुम्हें जरूर आशिक समझने लगेंगे। मुहब्बत करने को मेरा भी दिल चाहता था इसलिए मैंने गजलें कहना (गढ़ना) शुरू कर दीं। बिल्कुल परम्परागत ढंग के पद्यों में भक्तिरस, शृंगाररस इत्यादि को अपने शेरों में समोने का प्रयत्न करने लगा। साल भर में ही मुझे अनुभव हो गया कि सचमुच मैं किसी पर आशिक हो गया हूँ और अपने आयु-अनुपात से मुझे जो भी अच्छी सूरत नजर आती उसे देखकर यह खयाल होता कि कहीं मैं उसी पर तो आशिक नहीं हूँ ? यह सिलसिला दो साल तक जारी रहा······

"उस समय दूसरा महायुद्ध पूरे जोबन पर था। सारे देश में भूख-नंग की आंधियां चल रही थीं। अंग्रेजी और अमरीकी सिपाही सड़कों, गलियों को रौंदते फिर रहे थे। निचले मध्य-वर्ग और निर्धनों के घर वीरान और चकले आबाद हो रहे थे··· "चारों ओर जीवन और उसके सुन्दर मूल्य पूंजीपतियों के हाथों दम तोड़ रहे थे। ऐसे में मुझे लगा कि जिस प्रकार की परम्परागत

शायरी मैं कर रहा हूँ वह एक अक्षम्य नैतिक अपराध है······मैं इस परिणाम पर पहुँच गया कि साहित्य को जीवन से अलग नही किया जा सकता। अब मैं केवल अपने व्यक्तिगत अनुभवों से काम ले रहा था· · "

उन दिनों 'वामिक' अपने जीवन और अपनी शायरी के उस मोड पर आ गया था जहाँ पहुँचकर कोई भी कलाकार नये सिरे से जन्म लेता है। वह कहता है कि वह भावुक नहीं है लेकिन वह स्वाभाविक रूप से भावुक और रसिक है। उस पर उसकी सामाजिक और राजनीतिक चेतना ने सोने पर सुहागे का काम किया और वह—

ये रजो-खुशी खुद कुछ भी नही एहसासो-नजर के धोखे हैं

कहते-कहते चीख उठा .

दरिया मे तलातुम वर्पा है कश्ती का फसाना क्या माने ?
गिरदाव[1] से जब लडना है तुम्हे तिनके का सहारा क्या माने ?
ये नौहा-ए-कश्ती[2] बन्द करो, खुद मौजे-तूफा[3] बन जाओ।
पैरो के तले साहिल होगा, साहिल की तमन्ना क्या माने ?

समय के साथ-साथ उसमे हर अनुचित प्रतिबन्ध के प्रति विद्रोही-भावना वढती गई जैसा कि वह अपनी नज्म 'पापी' मे कहता है

जी में आता है कि कानूनी हदो को तोड दूँ,
ताके-जिदाने-तमद्दुन की[4] सलाखें मोड दूँ,
शीशा-ए-मजहव को सगे-मासियत से[5] फोड दूँ,
ऐसी हालत मे भी क्या मुझसे मुहव्वत है तुम्हें ?

उसने तीन साल तक वकालत की और छोड दी—शायद इसलिए कि वकालत उसके समीप स्वतन्त्र और सच्चा पेशा नही था। फिर कुछ समय तक इधर-उधर भटकने के वाद उसने सरकारी नौकरी करली, लेकिन सात साल वाद उसे भी छोड दिया। उसका कहना है कि नौकरी मे रहते हुए वह अपनी कला का खून होते नहीं देख सका। उसके वाद वह अपने गाँव में वापस चला गया और किसानो मे काम करने लगा। इस वीच मे उसने महसूस किया कि प्रगतिशील कवि जनता के सम्बन्ध मे तो वहुत कुछ लिख रहे हैं लेकिन जनता के लिए वहुत कम अपना कलम उठाते हैं। अतएव उसने अपने प्रात की सहल और ग्रामीण भाषा में किसानों तथा अन्य श्रमजीवियो के लिए वहाँ की पुरानी

---

१. भवर २ नाव के डूबने का शोकालाप ३ तूफानी लहर
४ सस्कृति के कारावास की खिड़की की ५ पाप-रूपी पत्थर

शैली मे आल्हा, बिरहा, रसिया, कजली, चेती आदि लिखी जिन्हे पर्याप्त प्रशसा प्राप्त हुई। उसका कहना है कि लोक चीन के नेता 'माओ' के कला-सम्बन्धी विचारो ने उसके सिद्धातो पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है।

कला के सम्बन्ध मे 'वामिक' एक अपना सिद्धात भी रखता है। उसका कहना है कि विषय स्वय कलात्मक अथवा अकलात्मक नही होता। वह तो कलाकार का दृष्टिकोण है और कहने का ढग है जो विषय को अच्छा या बुरा बनाता है। उदाहरणत: अपने एक शेर मे वह मजदूर और किसान को इस प्रकार प्रस्तुत करता है :

नज़र आ रहा है पस्ती से अरूजे-इब्ने-आदम[1]।
कि ज़मीरे-ख़ाको-आहन हुए ज़िन्दगी के महरम[2]॥

'वामिक' ने तुकान्त नज्मे अधिक और निर्बंध तथा अतुकान्त नज्मे कम कही हैं। इस सम्बन्ध मे एक स्थान पर उसने कहा था कि "निर्बंध तथा अतुकांत नज्म लिखने के इरादे से निर्बंध तथा अतुकात नज्म लिखना एक अकलात्मक कार्य है। मैं जब मानसिक उलझनो और काव्य-विषय की मांगो से विवश हो जाता हूँ तो उसे निर्बंध तथा अतुकात अथवा अर्ध निर्बंध तथा अर्ध-तुकात रूप मे प्रस्तुत करता हूँ। लेकिन इस विवशता मे भी कला के तकाज़ों से विमुख नही होता। निर्बंध तथा अतुकात शायरी मे जो एक प्रकार कासपाटपन उत्पन्न हो जाने का भय होता है मैं उसे साहित्य की अन्य कला-सम्बन्धी विभूतियों से पूरा करने की चेष्टा करता हूँ।" मेरे विचार मे अपनी इस चेष्टा के कारण ही उसकी निर्बंध तथा अतुकात नज्मों मे नये-नये सकेत और नई-नई प्रक्रियाएँ मिलती हैं। इस रूप मे उसकी सक्षिप्ततर नज्म यह है :

मेरे एवाने-तख़य्युल[3] के सरासीमा[4] नुक़ूश,
यूं उभरते हैं, चमकते हैं, बिखर जाते हैं,
जैसे ये चांद ये तारे ये शिहाबे-साक़िब[5]।
ज़िन्दगी अपनी मगर पा-ए-हवादिस के तले[6],
रेंगती, डरती, सिसकती ही चली जायेगी।
मेरे हसते हुए चेहरे पे न जाना ऐ दोस्त,

---

१. मानव-उत्थान २ मिट्टी और लोहे का अन्तःकरण (मजदूर-किसान) जीवन के जानकार हो गये ३. कल्पना-महल ४. विक्षुब्ध ५. टूटते हुए तारे ६. दुर्घटनाओ के पैरो (बोझ) के नीचे

ज़हर को ज़हर समझ कर ही पिये बैठा हूँ,
एक अबार दहकते हुए अगारो का,
अपने सीने मे ब-हर-हाल लिये बैठा हूँ।

'वामिक' उर्दू के उन शायरो में से हैं जो सामयिक विषयो पर बडी तेज़ी से कलम चलाते हैं, लेकिन वह सामयिक विषयो पर कलम चलाते हुए कही से कही भटक जाने वाले शायरो मे से नही है। उसकी शायरी का प्रारम्भ ही बगाल के अकाल ऐसे सामयिक विषय से हुआ और वह आज भी अपनी कला-निपुणता से सामयिक विषयो को सुन्दर कला-कृतियो के साचे मे ढाल रहा है। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि उसने अन्य विषय नही लिये। उसके दोनो कविता-सग्रहो ('चीखें' और 'जर्स') मे विभिन्न विषयो की पर्याप्त मात्रा मिलती है और सच तो यह है कि कुछ स्थानो को छोडकर उसने जिस विषय पर भी कलम उठाया है, उसके साथ पूरा-पूरा न्याय किया है।

भूखा बंगाल

पूरब देस मे डुग्गी बाजी फैला सुख का काल,
दुख की अग्नि कौन बुझाये सूख गये सब ताल,
जिन हाथो ने मोती रोले आज वही कगाल रे साथी,
आज वही कगाल !
भूखा है बगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

पीठ से अपने पेट लगाये लाखो उल्टे खाट
भीख-मंगाई से थक-थक कर उतरे मौत के घाट
जीवन-मरन के डाडे मिलाये बैठे है चंडाल रे साथी
बैठे हैं चंडाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल ।

नद्दी-नाले गली-डगर पर लाशो के अबार,
जान की ऐसी महंगी शै का उलट गया व्योपार,
मुट्ठी-भर चावल से बढकर सस्ता है ये माल रे साथी,
सस्ता है ये माल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

कोठरियो मे गांजे बैठे बनिये सारा नाज,
सुन्दर नारी भूख की मारी बेचे घर-घर लाज,
चौपट नगरी कौन सभाले चार तरफ भूचाल रे साथी,
चार तरफ भूचाल !
भूखा है बगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

पुरखो ने घरबार लुटाया छोड के सब का साथ,
मायें रोईं बिलक-बिलक कर बच्चे भये अनाथ,
सदा सुहागन विधवा बाजे खोले सिर के बाल रे साथी,
खोले सिर के बाल !
भूखा है बगाल रे साथी भूखा है बगाल !

अत्ती-पत्ती चबा-चबा कर जूझ रहा है देश,
मौत ने कितने घूघट मारे बदले सौ-सौ भेस,
काल विकट फैलाय रहा है बीमारी का जाल रे साथी,
बीमारी का जाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बगाल !

धरती माता की छाती मे चोट लगी है कारी,
माया काली के फदे में वक्त पडा है भारी,
अब तो उठ जा नीद के माते देख तो जग का हाल रे साथी,
देख तो जग का हाल !
भूखा है बगाल रे साथी भूखा है बगाल !

प्यारी माता चिन्ता मत कर हम हैं आने वाले,
कुन्दन-रस खेतो से तेरी गोद बसाने वाले,
खून पसीना हल हसिया से दूर करेंगे काल रे साथी,
दूर करेंगे काल !
भूखा है बगाल रे साथी भूखा है बगाल !

मीना बाज़ार

मीनारों पर अज़ां हुई
ये शाम भी कहा हुई
पुजारी मन्दिरो में आके शख फूंकने लगे
ये शाम भी कहां हुई
गजर वजा—वटन दवे
वो कुमकुमे चमक उठे
दुकानें जगमगा गईं
निगाहो मे समा गईं
वो महवशाने-सीम-वर[1]
फुसूं-तराज़े - रहगुज़र[2]
दरो मे[3] अपने आ गईं
और अपनी कायनाते-गम पे खुद ही जैसे छा गईं
लवे-ख़मोश मे नई कहानियां लिए हुए
रुखों पे[4] ग़ाज़ो से लदी जवानियां लिए हुए
तपे हुए दिमाग़ो-दिल मे कितने शोले मुशतअ़ल[5]
ये वो ख़िज़ां-रसीदा[6] है वहार जिन से मुनफइल[7]
ज़माने के सुलूक से
ये तग आके भूख से
रगड़ रही हैं एड़ियां
मज़ल्लतों के[8] गार में

. चन्द्रमुखी और चांदी ऐसे वदन वाली सुन्दरियां २. रास्ते मे जादू वाली ३. दरवाजो मे ४. चेहरो पर ५. भडक रहे ६. पतझड़ री हुई ७ लज्जित ८ तुच्छताओ, हीनताओ के

श्रौर इन्तकाम के लिए
खडी हैं इन्तज़ार में
समाज की ये बेटियां
समाज ही की बीविया
नज़र के तेज़ भालो से
शराब के पियालो से
फरिश्तो से शरीफ-तर
ज़मी के रहने वालो से
खिराजे - हुस्न पायेंगी
हँसेंगी श्रौर हँसायेंगी
ये वो हैं जिनकी ज़िन्दगी
मुसर्रतो से दूर है
ये वो हैं जिनकी हर हँसी
जराहतो से[1] चूर है
ये वो हैं जिनका घर बुलदियो पे रह के पस्त है
ये वो हैं जिनकी फतह भी शिकस्त ही शिकस्त है
मगर इन्ही पे सगसारियो[2] का हुक्म श्राम है
"वुजूद मे ये कब से श्रौर किस तरह से श्रा गईं ?"
जवाब इसका फिर मिलेगा ये तो वक्ते-शाम है
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहा हुई ?
चलो श्रब श्रागे बढ चलें
यहां ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफर न जाने किस तरफ चले गये
श्रकेला हमको छोडकर
मगर दिले-हज़ी ठहर

---

१ घावों मे २ व्यभिचारिणी को पत्थर मार-मारकर मार डालने की प्राचीन परम्परा

वो सामने दोराहे पर
ये कैसा अज़दहाम[1] है
ये कैसा इन्तज़ाम है
ये वादे-पा[2] सवारियों पे कैसा एहतमाम है
उरूसी धूम - धाम[3] है
ये बेबसी की रुख़सती
उजाले में ये तीरगी[4]
सदाए-नै[5] से किस की हर फुग़ा[6] लिपट के रह गई
ये शाम भी कहां हुई
अभी अभी जवानसाल
एक ज़िन्दा लाश को
हरीर[7] में लपेट कर
मुसर्रतों के दोश पर[8]
किसी तिलाई[9] कुहनासाल[10] मक़बरे को सौंपने
ये लोग ले के जायेंगे
और इसके बाद होगा क्या
ये लोग भूल जायेंगे
किसी ने ग़ैज़[11] में कहा
"ये कौन बद - शुगून है
ज़बान इसकी खेंच लो
ग़रीबे-शहर[12] हो कोई
तो शहर से निकाल दो"
उधर निगाहे - अहरमन[13]
हवेलियों पे ख़ंदाज़न[14]

१. जमघटा २ हवा से बातें करने वाली ३. विवाह की धूम-धाम ४. अन्धकार ५ शहनाई की आवाज़ ६ विलाप ७. रेशम ८. कांधो ९. सुनहले १०. पुराने ११ क्रोध १२. परदेशी १३. नाशकारी देवता की दृष्टि १४. हंस रहा है

इधर सवादे-वक़्त पर[१]
उम्मीदो-बीम की[२] किरन
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहा हुई
चलो अब आगे बढ चलें
यहां ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफर न जाने किस तरफ चले गये
अकेला हम को छोड कर
किधर से आ गया किधर
ये तगो - तार[३] रास्ते
मगर ये किस की चीख पर
कदम हमारे रुक गये
किसी निहानखाने[४] का लुटा हुआ शबाब है
कि हाथ मे समाज के शिकस्ता इक रबाब है
मुगन्नियो को[५] दो खबर
कि इस के तार-तार मे
दबे हुए शरार मे
न जाने कौन राग है
न जाने कितनी आग है
मगर ये किस के वास्ते
ये तगो - तार रास्ते
सदाओ पर सदायें[६] दी
यहा पर अब कोई नही
बस इक चिराग़ झिलमिला रहा था वो भी बुझ गया
पलक लरज़[७] के रह गई
और इक निगाहे - वापसी[८]

---

१ समय रूपी नगर पर २ आशा और निराशा की ३ तग और अधेरे
४ गुप्त स्थान ५. सगीतकारों को ६ आवाज़ो पर आवाज़ें ७. काप
८ पलटती हुई नजर

फसाने कितने कह गई
चिता भी खाक हो चुकी
जवानी खून रो चुकी
ये कौन शै दबे कदम ठिठक के दूर हट गई
दरिंदे बढते आ रहे हैं मरघटों की राह मे
सियाही बढती जा रही है फ़िक्र मे, निगाह मे
ये मुख्तसर सी दास्ता
और इस मे इतनी तलखियां
तलू-ए-शब[1] मे अलअमां[2]
ये आधी रात का समां
थके हुए निजाम की ये शाम भी कहां हुई
चलो अब आगे बढ़ चले
यहां ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफर न जाने किस तरफ चले गये
अकेला हम को छोड़ कर ।

---

१. संध्या समय २. हे भगवान !

इधर सवादे-वक्त पर[१]
उम्मीदो-बीम की[२] किरन
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहा हुई
चलो अब आगे बढ चलें
यहा ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफर न जाने किस तरफ चले गये
अकेला हम को छोड कर
किधर से आ गया किधर
ये तगो - तार[३] रास्ते
मगर ये किस की चीख पर
कदम हमारे रुक गये
किसी निहानखाने[४] का लुटा हुआ शबाब है
कि हाथ मे समाज के शिकस्ता इक रबाब है
मुग़न्नियो को[५] दो खबर
कि इस के तार-तार में
दबे हुए शरार में
न जाने कौन राग है
न जाने कितनी आग है
मगर ये किस के वास्ते
ये तगो - तार रास्ते
सदाओ पर सदायें[६] दी
यहा पर अब कोई नही
बस इस चिराग झिलमिला रहा था वो भी बुझ गया
पलक लरज़[७] के रह गई
और इक निगाहे - वापसी[८]

---

१ समय रूपी नगर पर २ आशा और निराशा की ३. तग और अधेरे
४. गुप्त स्थान ५. सगीतकारो को ६ आवाजो पर आवाजें ७. काप
८ पलटती हुई नजर

फसाने कितने कह गई
चिता भी खाक हो चुकी
जवानी ख़ून रो चुकी
ये कौन शै दबे कदम ठिठक के दूर हट गई
दरिंदे चढते आ रहे हैं मरघटो की राह मे
सियाही बढती जा रही है फिक्र मे, निगाह मे
ये मुख्तसर सी दास्ता
और इस मे इतनी तलखियां
तलू-ए-शब[1] मे अलअमा[2]
ये आधी रात का समां
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहां हुई
चलो अब आगे बढ़ चले
यहा ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफर न जाने किस तरफ चले गये
अकेला हम को छोड़ कर ।

---

१. सध्या समय २. हे भगवान !

फुटकर शेर

यकीनन आ गया है मैकदे मे तश्नालब[1] कोई।
कि पीता जा रहा हू, कैफ़ियत[2] कम होती जाती है॥

◇ ◇ ◇

मेरी खामोशी पे वरहम न हो मुझ से ऐ दोस्त।
चलने वाले ही तो दम लेते हैं चलने के लिए॥
पी लिया करते हैं जीने की तमन्ना मे कभी।
डगमगाना भी ज़रूरी है सभलने के लिए॥

◇ ◇ ◇

उनमे समझौते पे दिल मायल नही।
हम अधूरी बात के कायल नही॥

◇ ◇ ◇

उम्मीद ही पर जीते रहना तौहीन है जीने वाले की।
इस इल्मो-यकी[3] की दुनिया मे जीने के सहारे और भी हैं॥
इन चलती-फिरती लाशो पर मौकूफ[4] नही गम का मज़र।
कागज़ के कफन मे लिपटे हुए दस्तूर के माने और भी हैं॥

◇ ◇ ◇

सुर्ख दामन में शफक[5] के कोई तारा तो नही?
हम को मुस्तकबिले-ज़र्री ने[6] पुकारा तो नही?
दस्तो-पा[7] शल है किनारे से लगा बैठा हू।
लेकिन इस शोरिशे-तूफान से हारा तो नही॥
इस ग़मे-दोस्त ने क्या कुछ न सितम ढाये मगर।
ग़मे-दौरा की तरह जान से मारा तो नही॥

---

१ प्यासा २ नशा ३ ज्ञान और विश्वास (श्रद्धा) ४ आधारित
५ गोधूलि समय का आकाश ६. सुनहले भविष्य ने ७. हाथ-पैर



गुलाम रब्बानी 'ताबां'

मेरा सोज़े-दिल भी शामिल है निगारे अंजुमन में
मैं चिरागे-आर्ज़ी हूँ, मेरी रोशनी दवामी

श्रोपेन्द्रनाथ अश्क

'ताबां' मेरा बहुत प्रिय मित्र है, इसलिए उसके विषय मे कुछ लिखते हुए मैं डर सा रहा हूँ कि कहीं मेरी यह मित्रता उसके और मेरे दोनों के पक्ष मे अहितकर सिद्ध न हो।

मेरी उसकी मित्रता आज से छः सात साल पहले उन दिनो हुई जब फतहगढ (उत्तर-प्रदेश) जेल से रिहा होकर और अपना वकालत का पेशा त्याग कर वह मकतबा जामिया (जामियानगर) मे काम करने के लिये दिल्ली आया था। पहली बार मैंने उसे एक साहित्यिक बैठक मे देखा और मैंने देखा कि उसकी उपस्थिति मे सभा के सदस्य एक विचित्र प्रकार का हीनता-भाव अनुभव कर रहे हैं। कारण इसका यह नही था कि वह कोई बहुत बडा और बहुत प्रसिद्ध शायर था बल्कि इसका कारण उसका छः फुट का कद, भरा-भरा बदन, सफेद और सुर्ख रग, सिर पर सियाह, सफेद और सुनहले बालो का यह बडा छत्ता, आँखो पर चढा बल्कि मढा हुआ सियाह चश्मा और मुह मे दबा हुआ आयरिश पाइप था और यो शायर की बजाय वह सेना का कोई जनरल दिखाई देता था, जिससे उसके मातहत लोग तो भय खाते ही हैं, आम नागरिक भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। लेकिन यदि मेरी स्मरण-शक्ति मेरा साथ दे रही है तो मुझे अच्छी तरह याद है कि दो-तीन मुलाकातों मे ही पहले इस सैनिक के तमगे, फिर वर्दी यहां तक कि खोल की तरह चेहरे का रोब भी उतर गया और भीतर से एक अत्यन्त अहानिकारक, सहानुभूतिपूर्ण और कोमल-भावना निकल आई। और आज केवल मैं ही उसे पसन्द नहीं करता, वह

दिल्ली के पूरे सास्कृतिक क्षेत्र मे बड़ी प्रियता की दृष्टि से देखा जाता है।

शरीर तथा आत्मा का यह अंतर उसके अपने पक्ष मे, उस सस्था के पक्ष मे जिसमे वह काम करता है, और उस साहित्यिक आदोलन के पक्ष मे, जिससे वह तन-मन से सम्बंधित है, बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। आप उसके जिम्मे कोई कठिन से कठिन कार्य डाल दीजिये, किसी सरकारी अफसर से ऐसा घी लाने को कह दीजिये जो टेढी उगलियो से भी न निकलता हो, किसी ऐसे व्यक्ति से भिडा दीजिये जो उसके सिद्धातों का कट्टर विरोधी हो और किसी ऐसी सभा मे भेज दीजिये जिसका प्रत्येक सदस्य किसी गलतफहमी के आधार पर एक-दूसरे का शत्रु बना बैठा हो, वह चुटकियो मे सब को राम कर लेगा।

दूसरो को राम करने का यह सिलसिला, जो आज इस स्तर पर पहुँच चुका है कि उसे कभी मात नही होती, बहुत पहले से शुरू हो चुका है, उस समय से, जब वह अभी बच्चा ही था और उसे प्राय मात हुआ करती थी। उसका घराना एक जागीरदार घराना[1] था। पिता 'खान साहब' थे और बडे भाई 'खान बहादुर', लेकिन बड़े मियाँ सो बडे मियाँ छोटे मियाँ सुबहानअल्ला के विपरीत 'छोटे मियाँ' काग्रेस के जलसो-वलसो मे जा पहुँचते थे। घर मे लगे हुए अंग्रेज अधिकारियो के चित्रो की आँखे फोड देते थे और फिर पाठशाला के ज़माने मे तो छोटे मियाँ और भी गुल खिलाने लगे। एक बार फरुखाबाद के मिशन स्कूल से छुट्टियाँ बिताने घर आये हुए थे कि उन्ही दिनो डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट का तबादला हो गया और चूँकि उसे कायमगज से होकर गुजरना था, इसलिए कायमगज के इस अग्रेज-दोस्त खानदान ने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहब के सम्मान मे स्टेशन पर चाय की दावत का प्रबन्ध किया और घर के सब लोगो को सख्त ताकीद कर दी कि वे गुलाम रब्बानी पर कडी नज़र रखें ताकि वह स्टेशन पर न पहुँचने पाए। उसे स्टेशन पर तो न जाने दिया गया लेकिन जब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट महोदय ने चाय की प्याली होंटो से लगाई तो ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी बिच्छू ने उन्हे डंक मार दिया हो। 'छोटे मियाँ' ने स्टेशन भेजी जाने वाली शक्कर का डब्बा साल्ट आफ मैगनेशिया से भर दिया था।

अग्रेज-शासको के प्रति घृणा के इस विष को मन में दबाये गुलाम रब्बानी शिक्षा ग्रहण करता रहा। घर के प्राणी उसे डाँटने-डपटने के साथ-साथ इस विचार से प्रसन्न भी होते रहे कि पूरे खानदान मे वही पहला व्यक्ति था जो

---

१. 'ताबां' १४ फरवरी १९१४ को पितौरा (गांव) कायमगज, ज़िला फ़रुख़ाबाद के एक आफरीदी पठान घराने मे पैदा हुआ।

परिचय

'ताबां' मेरा बहुत प्रिय मित्र है, इसलिए उसके विषय मे कुछ लिखते हुए मैं डर सा रहा हूँ कि कही मेरी यह मित्रता उसके और मेरे दोनों के पक्ष मे अहितकर सिद्ध न हो।

मेरी उसकी मित्रता आज से छ सात साल पहले उन दिनो हुई जब फतहगढ (उत्तर-प्रदेश) जेल से रिहा होकर और अपना वकालत का पेशा त्याग कर वह मकतबा जामिया (जामियानगर) मे काम करने के लिये दिल्ली आया था। पहली बार मैंने उसे एक साहित्यिक बैठक मे देखा और मैंने देखा कि उसकी उपस्थिति मे सभा के सदस्य एक विचित्र प्रकार का हीनता-भाव अनुभव कर रहे हैं। कारण इसका यह नही था कि वह कोई बहुत बडा और बहुत प्रसिद्ध शायर था बल्कि इसका कारण उसका छ फुट का कद, भरा-भरा बदन, सफेद और सुर्ख रग, सिर पर सियाह, सफेद और सुनहले बालो का यह बडा छत्ता, आंखो पर चढा बल्कि मढ़ा हुआ सियाह चश्मा और मुह मे दबा हुआ आयरिश पाइप था और यो शायर की बजाय वह सेना का कोई जनरल दिखाई देता था, जिससे उसके मातहत लोग तो भय खाते ही हैं, आम नागरिक भी प्रभावित हुए विना नही रह सकते। लेकिन यदि मेरी स्मरण-शक्ति मेरा साथ दे रही है तो मुझे अच्छी तरह याद है कि दो-तीन मुलाकातो मे ही पहले इस सैनिक के तमगे, फिर वर्दी यहां तक कि खोल की तरह चेहरे का रोब भी उतर गया और भीतर से एक अत्यन्त अहानिकारक, सहानुभूतिपूर्ण और कोमल-आत्मा निकल आई। और आज केवल मैं ही उसे पसन्द नही करता, वह

दिल्ली के पूरे सास्कृतिक क्षेत्र मे वडी प्रियता की दृष्टि से देखा जाता है ।

शरीर तथा आत्मा का यह अतर उसके अपने पक्ष मे, उस सस्था के पक्ष मे जिसमे वह काम करता है, और उस साहित्यिक आदोलन के पक्ष मे, जिससे वह तन-मन से सम्वधित है, वहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। आप उसके ज़िम्मे कोई कठिन से कठिन कार्य डाल दीजिये, किसी सरकारी अफसर से ऐसा घी लाने को कह दीजिये जो टेढी उगलियो से भी न निकलता हो, किसी ऐसे व्यक्ति से भिडा दीजिये जो उसके सिद्धातो का कट्टर विरोधी हो और किसी ऐसी सभा मे भेज दीजिये जिसका प्रत्येक सदस्य किसी गलतफहमी के आधार पर एक-दूसरे का शत्रु वना वैठा हो, वह चुटकियो मे सव को राम कर लेगा ।

दूसरो को राम करने का यह सिलसिला, जो आज इस स्तर पर पहुँच चुका है कि उसे कभी मात नही होती, वहुत पहले से शुरू हो चुका है, उस समय से, जव वह अभी वच्चा ही था और उसे प्राय मात हुआ करती थी । उसका घराना एक जागीरदार घराना[1] था । पिता 'खान साहव' थे और वडे भाई 'खान वहादुर', लेकिन वड़े मियाँ सो वडे मियाँ छोटे मियाँ सुवहानअल्ला के विपरीत 'छोटे मियाँ' काग्रेस के जलसो-वलसो मे जा पहुँचते थे । घर मे लगे हुए अग्रेज़ अधिकारियो के चित्रो की आँखें फोड देते थे और फिर पाठशाला के ज़माने मे तो छोटे मियाँ और भी गुल खिलाने लगे । एक वार फरुखावाद के मिशन स्कूल से छुट्टियाँ विताने घर आये हुए थे कि उन्ही दिनो डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट का तवादला हो गया और चूँकि उसे कायमगज से होकर गुजरना था, इसलिए कायमगज के इस अग्रेज़-दोस्त खानदान ने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहव के सम्मान मे स्टेशन पर चाय की दावत का प्रवन्ध किया और घर के सव लोगो को सख्त ताकीद कर दी कि वे गुलाम रव्वानी पर कडी नज़र रखें ताकि वह स्टेशन पर न पहुँचने पाए । उसे स्टेशन पर तो न जाने दिया गया लेकिन जव डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट महोदय ने चाय की प्याली होंटो से लगाई तो ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी विच्छू ने उन्हे डक मार दिया हो । 'छोटे मियाँ' ने स्टेशन भेजी जाने वाली शक्कर का डव्वा साल्ट आफ मैगनेशिया से भर दिया था ।

अंग्रेज-शासको के प्रति घृणा के इस विष को मन मे दवाये गुलाम रव्वानी शिक्षा ग्रहण करता रहा । घर के प्राणी उसे डाँटने-डपटने के साथ-साथ इस विचार से प्रसन्न भी होते रहे कि पूरे खानदान मे वही पहला व्यक्ति था जो

---

१. 'तावां' १४ फरवरी १९१४ को पितौरा (गाँव) कायमगज, जिला फ़रुखावाद के एक आफरीदी पठान घराने मे पैदा हुआ ।

ग्रैजुएट वन रहा था और ग्रैजुएट वनते ही अपने असर-रसूख से वे उसे कोई वडा सरकारी पद दिलवा देंगे। लेकिन उनके दुख की सीमा न रही जव आगरा यूनिवर्सिटी से वी० ए० और फिर एल-एल० वी० करने के बाद वह गाँव लौटा तो उनके विचार मे वह पक्का 'कम्युनिस्ट' बन चुका था। फरुखाबाद मे उसने प्रेक्टिस शुरू की लेकिन उसके कथनानुसार एक वार जो मवक्किल उसके पास पहुँचा फिर कभी उसकी सूरत दिखाई न दी और कारण इसका यह था कि वकालत की प्रेक्टिस की वजाय वह शेरो-शायरी की प्रेक्टिस मे अधिक दिलचस्पी लेता था। वकालत मे उसे झूठ का दौर-दौरा और शायरी मे सच्चाई का वोलवाला नज़र आ गया और शायरी करने के साथ-साथ वह राजनीति मे भी भाग लेने लगा। अत पहली वार मई १९४७ मे किसान आन्दोलन मे और दूसरी वार १९४९ मे कम्युनिस्ट होने के अपराध मे उसे गिरफ्तार किया गया और इस वार रिहा होने पर उसने सदैव के लिए वकालत से तौबा करली।

यो तो 'तावा' ने कॉलेज के दिनो मे ही शेर कहने शुरू कर दिये थे लेकिन उसके उन दिनो के शेरो मे और आज के शेरो मे धरती-आकाश का अंतर है। उन दिनो वह

> वेचारे का आखिर को दम ले ही लिया तौवा।
> मजनू पे मुसल्लत[1] थी वो काली[2] वला तौवा॥

प्रकार के शेर कहता था और आज

> कैदे-औहाम[3] से आजाद हुए फ़िक्रो-नज़र[4]।
> जल उठे तीरा-ओ-तारीक[5] दिमाग़ो मे चिराग॥
> आखिरश[6] चाद सितारो मे भटकने वाले।
> पा गये खाक के ज़र्रों ही मे मजिल का सुराग़[7]॥

और

> सवादे-मर्ग[8] मे आखिर हयात[9] ढूढ ही ली।
> गुनाहगारो ने राहे-निजात[10] ढूढ ही ली॥

और

> वाग़े-आलम[11] पे हुए कितने खिज़ा के यलग़ार[12],
> जिन्दगानी पे कई मौत ने छापे मारे,

---

१ छाई हुई २ लैला (लैला काली थी) ३ भ्रमो की जकड ४ विचार और दृष्टि ५ अधकारमय ६ अन्तत ७ पता, निशान ८ मृत्यु के आसमान ९ जीवन १० मुक्ति-मार्ग ११ ससार १२. आक्रमण

कभी यूना से कभी रोम से तूफान उठे,
वादी-ए-नील से उबला कभी खूनी सेलाव,
आग भड़की कभी आतिशकदा-ए-फारिस[1] से,
ज़िन्दगी शोलो मे तप-तप के निखरती ही गई,
जितनी ताराज[2] हुई और सवरती ही गई।

ऐसे शेर कहता है। उन दिनो वह 'मैकश' अकबराबादी से प्रभावित था, इन दिनो वह देश की जनता से, मानव-स्वतंत्रता के उस सग्राम से जो देश-देश मे लडा जा रहा है, और स्थायी शान्ति के उस महान आन्दोलन से प्रभावित है जो आज पूरी मानव-जाति की सबसे बडी आकाक्षा है।

इतने बड़े-बडे विषयो को शेर के साचे मे ढालते हुए बहुधा उसे सफलता मिलती है, लेकिन कभी-कभी असफलता का सामना भी करना पड़ता है। यह असफलता कोई टैक्नीक की त्रुटि नही है बल्कि यह त्रुटि है उसकी भारी-भरकम 'तरकीबो', लम्बी-लम्बी 'इज़ाफतो'[3] और मोटे-मोटे शब्दो के प्रयोग की, जिनसे शेर का अर्थ समझने मे कठिनाई होती है और प्रभाव भी कम हो जाता है। उदाहरणत. उसकी नज्म 'दीवाने' देखिये। पहली पॉच पक्तियाँ कितनी सुन्दर और गतिशील हैं·

यही वहशी यही सौदाई यही दीवाने
एक दिन मारका-ए-शौक[4] भी सर[5] कर लेंगे
इश्क़—हा इश्क को समझा ही नही है तुमने
हुस्न—हा हुस्न को पावदे-नज़र[6] कर लेंगे
यूही जलते रहे जलते रहे आहो के चिराग़

और फिर एकदम जब वह :

रात को रूकशे-तनवीरे-सहर[7] कर लेंगे
आज खूनाबाफिशा[8] अश्कचका[9] हैं आखें
कल मगर तकमिला-ए-ज़ौके-नज़र[10] कर लेंगे

कहने लगता है तो हम शब्दों और 'तरकीबो' का अर्थ समझने के लिए रुक जाते

---

१. पारसियो का उपासनागृह (फ़ारिस) २. विनष्ट ३. संयुक्त-शब्दो ४. शौक़ का मोर्चा ५. विजय ६. दृष्टि का पाबद ७. सुबह की तरह प्रकाशमान ८. लहू बिखेरने वाली ९ आंसू-भरी १०. अभिरुचि की (दृष्टि की—मन की) प्राप्ति (तृप्ति)

हैं और जब हम रुक जाते है तो नज्म के प्रवाह मे कमी आ जाती है और मस्तिष्क को झटका लगता है।

इसके अतिरिक्त मुझे 'ताबा' से एक और शिकायत है और वह है उसका सामयिक विषयो पर अधिक लिखना। इस प्रसग मे तर्क करने पर यद्यपि वह मेरी सन्तुष्टि कर देता है (मैं पहले कह चुका हूँ कि उसके पास प्रभावित करने का एक अत्यन्त उपयुक्त शस्त्र उसके श्वेत बाल और जरनैली शरीर है) फिर भी मेरी सन्तुष्टि नही होती। 'ताबा' या आप इसे मेरी ढिठाई कह सकते हैं। विश्व-साहित्य मे से कुछ उदाहरण और रूसी लेखक इलिया अहरनबर्ग ऐसे साहित्यकारो के इस प्रकार के कथनो का उदाहरण देकर

> "एक लेखक को शताब्दियो के लिए ही न लिखना चाहिये, उसे एक सक्षिप्त क्षण के लिए भी लिखने का ढग आना चाहिये—ऐसा क्षण जिस पर किसी जाति के भाग्य का आधार हो "

आप कह सकते हैं कि लेखक अथवा कवि अपने समय का इतिहासकार होता है (और इससे मुझे भी इन्कार नही) लेकिन मेरे समीप लेखक अथवा कवि, इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ बाद मे होता है, पहले लेखक अथवा कवि होता है। मैं साहित्य के जड मूल्यो का पक्षपाती नही हूँ जिन्हे कुछ लोग साहित्य के 'स्थायी मूल्यो' का नाम देते हैं, न मुझे इससे इन्कार है कि कोई विषय अपने आप मे अच्छा बुरा, तुच्छ या महान नही होता, यह लेखक अथवा कवि की कला-क्षमता है जो उसे छोटा या बडा बनाती है और कल्याणकारी साहित्य का तो मैं बहरहाल पक्षपाती हूँ लेकिन 'ताबा' से मुझे शिकायत यह है कि पर्याप्त कला-मर्मज्ञता रखने पर भी वह व्यक्तिगत् अनुभवो तथा प्रेक्षण की नीव पर बहुत कम शेरो की रचना करता है और बगाल-अकाल, फिसाद, इन्डोनेशिया, कोरिया, वीतनाम, मिश्र, ईरान, रोज़नबर्ग और स्टालिन आदि की मृत्यु ऐसी घटनाओ की प्रतीक्षा अधिक करता है। और मुझे डर है कि यह प्रतीक्षा धीरे-धीरे उसे उस स्तर पर न ले जाये जहाँ लेखक अथवा कवि अनुभव तथा प्रेक्षण की प्रसव-पीडा से बचने के प्रयत्न मे मनोवेग का शिकार होकर रह जाता है और यो लेखक अथवा कवि कहलाने की अपेक्षा राजनीतिज्ञ कहलवाने का अधिक हकदार बन जाता है।

लेकिन मैं जानता हूँ कि वह मेरी बात नही मानेगा और वही करेगा जिसे वह स्वय ठीक समझता है और मैं यह भी जानता हूँ कि यह लेख पढ़ने के बाद

जब वह इस प्रसंग मे मुझसे बहस करेगा तो मैं उसकी हाँ मे हाँ मिलाने पर विवश हो जाऊँगा।

तीन वर्ष पूर्व लिखा हुआ यह लेख छपने से पहले मैंने 'तावां' को भेजा। लेख के साथ-साथ इस सकलन के लिए चुनी हुई उसकी रचनायें भी। उत्तर मे उसने अपनी इधर की कुछ रचनायें मुझे भेजी और लिखा :

"कुछ नज्मे और गजलें भेज रहा हूँ। पिछली तीनो गजलें निकाल दो और उनकी बजाय ये गजले शामिल कर लो। नज्मो मे से 'दीवाली' और 'मित्र' को न निकालो तो अच्छा है। इस तब्दीली की रोशनी मे तुम्हें अपने मज़मून (लेख) मे कवितायें खासी तब्दील करनी होगी। कम-अज़-कम वह हिस्सा जहाँ तुमने 'दवामी' (स्थायी) और हगामी (सामयिक) मौजूआत (विषयो) पर बहस की है। मैं आज भी दवामी और हगामी मौजू के मुतअल्लिक वही राय रखता हूँ। दवामी और हगामी अदब का तअल्लुक मौजू से नहीं वल्कि फॉर्म से है। अदबे-दवामी 'क्या कहा है?' से नही 'कैसे कहा है?' से बनता है।। बहरहाल यह बहस फिर होती रहेगी। इस वक्त तो इतना काफी है कि तुम्हे नये इतिख़ाब (चयन) की रोशनी मे मज़मून तब्दील करना चाहिये।"

मजमून मैंने तब्दील नही किया। उसकी कुछ रचनायें अवश्य तब्दील कर दी हैं।

दीवाली

'वकार' ! रूह के तारो को क्यो छुआ तुमने ?
तुम्हारी नज़्म 'दीवाली' बहुत ही अच्छी है ।
मगर—ये रात की गर्दन मे दीप-मालायें,
सियाहियो मे उजाले के बदनुमा धब्बे,
गरीब हब्शी को जैसे जुज़ाम[1] हो जाये ।
ये टिमटिमाते दिये—
ये टिमटिमाते दिये सुबह का बदल तो नही !
मै सोचता हूँ कि इस रात चीनो-बरमा में,
किसी महाज़ पे कितने दिये जले होगे ?
जवान खून की हर बूँद इक किरन बनकर,
इक ऐसी सुबह की तशकील[2] कर रही होगी,
हज़ार सदियो की तारीको-तीरा[3] रातो मे,
बनी रही है जो इन्सा के ख्वाब का मरकज़[4] ।
वो सुबह दूर नही !
अंधेरी रात के सीने से नूर का चश्मा,
उबलने वाला है ।
ये टिमटिमाते दिये—लक्ष्मी के चरणो मे,
सभी ने हुस्ने-अकीदत[5] के फूल डाले हैं,
वो जिनको लक्ष्मी देवी से कुर्बे-खास[6] नही,
घरो मे अपने भी दीपक जलाये बैठे हैं,

---

१. कोढ़ २ निर्माण ३ अंधकारमय ४. केन्द्र ५ श्रद्धा
६ विशेष निकटता (सम्बन्ध)

शिकस्ता झोंपड़ियों को सजाये बैठे हैं,
कि इस तरफ भी इनायत[1] की इक नज़र हो जाए।
मगर वो भूलते हैं,
शिकस्ता झोंपडियों—टूटे-फूटे खंडरों मे,
कभी भी लक्ष्मी देवी न मुस्करायेगी,
कभी बहार न इनके चमन मे आयेगी,
अगर वो खुद ही निज़ामे-चमन न बदलेंगे।

सियाहियो के नुमाइन्दे[2] —रात के बेटे,
हमारे फ़िक्रो-तख़य्युल को[3] बाधने के लिए,
तवहमात की[4] जजीरें ढाल लेते है,
कभी दीवाली कभी शबबरात आती है।

---

१. कृपा २. प्रतिनिधि ३. विचारो तथा कल्पनाओ को ४. भ्रमो की

मिश्र (मिश्र देश)

कितनी सदियो से अबुलहोल[1] पे तारी था जमूद,
जैसे अहराम[2] के साये मे पडा सोता था।
अहदे-हाजिर का[3] अबुलहोल—फिरगी जरदार,
वादी-ए-नील मे तखरीब[4] का बिष बोता था।

जिस तरह रूप भरे खिज्र[5] का कोई रहज़न[6],
चहरा-ए-खिज्र पे थी हुस्ने-तअल्लुक[7] की निकाब।
कितने यूसुफ विके सरमाये के बाज़ारो मे,
लुट गया कितनी जुलेखाओ[8] का अनमोल शबाब।

आज इदराके - हकीकत[9] की मसीहाई[10] से,
जा पडी जज्बा-ए-मिल्ली की[11] ममी[12] मे जैसे।
जगे - आज़ादी ने ऐ दोस्त किया है पैदा,
रब्ते-ताज़ा[13] अरबो[14] और अजमी[15] मे जैसे।

अब तहफ्फुज़[16] के तराने हो कि इमदाद के राग,
"कोई जामा[17] हो छुपेगा नही कद का अदाज़।"
गीत के बोल बदल जाने से क्या होता है?
वही इफरीत[18] का नगमा वही इबलीस[19] का साज़।

---

१ फराऊन युग मे बना हुआ बुत जिस का चेहरा तो मनुष्य का है लेकिन धड शेर का २ मिश्र देश के बडे-बडे मीनार (जिनमे ममिया बद हैं) ३ वर्तमान काल का ४ तोड-फोड ५ एक पैगबर का नाम (पथ-प्रदर्शक) ६. डाकू ७ सुन्दर सम्बध ८ अजीजे-मिश्र की पत्नी जो यूसुफ़ पर आशिक हो गई थी ९ वास्तविकता की पहचान १०. मुर्दे को ज़िन्दगी प्रदान करने का काम ११ राष्ट्रीयता के जज्बे की १२ वह शव जिन्हे मसाला लगा कर सभाल कर रखा जाता है। १३ नया सम्बन्ध १४ अरब-निवासी १५ वे जो अरब निवासी नहीं हैं १६ रक्षा १७ लिबास १८ भूत १९. शैतान

साफ बतलाते हैं ये अहले-जुनूं के[1] तेवर,
सरनगू होने को है तौको-सलासिल का निज़ाम[2]।
मुन्तज़िर नील है खोले हुए मौजों का किनार,
आज फ़रऊन[3] फ़िरंगी है तो मूसा है अवाम।

१. उन्मत्त लोगों के २. जंजीरें और गले में लोहे के पट्टे डालने वाली व्यवस्था ३. मूसा के ज़माने का मिस्र का बादशाह (बहुत घमंडी)

मिश्र (मिश्र देश)

कितनी सदियो से अबुलहौल[१] पे तारी था जमूद,
जैसे अहराम[२] के साये मे पडा सोता था।
अहदे-हाज़िर का[३] अबुलहौल—फिरगी ज़रदार,
वादी-ए-नील मे तखरीब[४] का बिष बोता था।

जिस तरह रूप भरे खिज्र[५] का कोई रहज़न[६],
चहरा-ए-खिज्र पे थी हुस्ने-तअल्लुक[७] की निकाब।
कितने यूसुफ विके सरमाये के बाज़ारो मे,
लुट गया कितनी जुलेखाओ[८] का अनमोल शबाब।

आज इदराके - हकीकत[९] की मसीहाई[१०] से,
जा पडी जज्बा-ए-मिल्ली की[११] ममी[१२] मे जैसे।
जगे - आज़ादी ने ऐ दोस्त किया है पैदा,
रब्ते-ताजा[१३] अरबी[१४] और अजमी[१५] मे जैसे।

अब तहफ्फुज़[१६] के तराने हो कि इमदाद के राग,
"कोई जामा[१७] हो छुपेगा नही कद का अदाज़।"
गीत के बोल वदल जाने से क्या होता है?
वही इफरीत[१८] का नगमा वही इबलीस[१९] का साज़।

---

१ फराऊन युग मे बना हुआ बुत जिस का चेहरा तो मनुष्य का है लेकिन घट शेर का २ मिश्र देश के बडे-बडे मीनार (जिनमे ममिया बद हैं) ३ वर्तमान काल का ४. तोड-फोड ५ एक पैग़बर का नाम (पथ-प्रदर्शक) ६. डाकू ७ सुन्दर सम्बध ८ अजीजे-मिश्र की पत्नी जो यूसुफ पर आशिक हो गई थी ९ वास्तविकता की पहचान १०- मुर्दे को ज़िन्दगी प्रदान करने का काम ११ राष्ट्रीयता के जज्बे की १२ वह शव जिन्हे मसाला लगा कर सुरक्षित कर रखा जाता है। १३ नया सम्बन्ध १४ अरब-निवासी १५ वे जो अरब निवासी नहीं है १६ रक्षा १७ लिबास १८ भूत १९. शैतान

साफ बतलाते हैं ये अहले-जुनूं के[1] तेवर,
सरनगूं होने को है तौक़ो-सलासिल का निज़ाम[2]।
मुन्तज़िर नील है खोले हुए मौजों का किनार,
आज फरऊन[3] फ़िरंगी है तो मूसा है अवाम।

---

१. उन्मत्त लोगो के २. जजीरें और गले मे लोहे के पट्टे डालने वाली व्यवस्था ३. मूसा के जमाने का मिस्र का बादशाह (बहुत घमंडी)

जेल में किसी का खत पाकर

फस्ले - बहार[1] मे भी असीरे - कफस[2] हू मैं,
गुलज़ार[3] को फज़ा[4] को मेरा इतिज़ार है।
रंगे - फरेब - कोश को है मेरी जुस्तजू,
बू - ए - गुरेज़ - पा को मेरा इतिज़ार है।
तकते हैं मेरी राह खयाबाने - कैफ - खेज़[5] ,
दश्ते - जुनूं - फज़ा को[6] मेरा इतिज़ार है।
जैसे फ़ुसुर्दा[7] हो गई बज़्मे - सदा-ओ - साज़[8],
याराने - खुश - नवा को[9] मेरा इतिज़ार है।
सूने पडे हैं मिंबरो - महरावे - मैकदा[10],
रिंदाने - बासफा को मेरा इतिज़ार है।
ये और बात है कि वो मुंह से न कह सके,
उस पैकरे - हया[11] को मेरा इतिज़ार है।
हैं मेरे इतिज़ार मे गेसूए - शाम - खेज़[12],
चश्मे - सहर - नुमा को[13] मेरा इतिज़ार है।
अब भी खुला है बाबे - इरम[14] मेरे वास्ते,
अब भी मेरे खुदा को मेरा इतिज़ार है।

---

१. वसन्त ऋतु २ पिंजरे का कैदी ३ बाग़ ४ वातावरण ५. आनन्द प्रदान करने वाली फुलवाड़ियां ६ उन्मादोत्पादक वनो को ७ उदास ८ संगीत-सभा ९ मृदुभाषी मित्रो को १० मधुशाला के मिंबर और महरावें (मिंबर और महरावें वास्तव मे मस्जिद की होती हैं) ११ लज्जा-मूर्ति (प्रेमिका) १२ सध्या-रूपी केश १३ जादू-रूपी आंखो को १४ स्वर्ग का दरवाजा

कुछ अपने मुतअ़ल्लिक़

दियारे-जुहद[1] छोड़ा और मैख्वारों मे[2] आ पहुँचा।
गुनाहे-जीस्त[3] की खातिर गुनहगारो मे आ पहुँचा॥
मेरे देरीना हमदम[4] खूब थे पर ये हकीकत है।
सवावित[5] से गुज़र कर आज सय्यारो मे[6] आ पहुँचा॥
शविस्तानो के[7] ख्वाव-आवर[8] मनाजिर कल की वाते थीं।
सहर[9] के जाफिज़ा[10] वेदार नज्ज़ारो[11] मे आ पहुंचा॥
जो तालिव[12] हैं सुकूने-ज़िदगी उनको मुवारिक हो।
हलाके - जुस्तजू[13] था मैं तो आवारो मे आ पहुँचा॥
नज़र को खीरा[14] कर सकती थी सीमो-जर[15] की तावानी[16]।
नज़र पलती है जिनमे ऐसे नज्ज़ारो मे आ पहुंचा॥
मै वेगाना था यज़दा[17] के पुरस्तारों की महफिल मे।
गनीमत है कि इन्सां के पुरस्तारो मे आ पहुँचा॥
उरूसे-ज़िदगी[18] की नाज़ - वरदारी का सौदा[19] था।
उरूसे - ज़िन्दगी के नाज़-वरदारो मे आ पहुँचा॥
अगर ये ज़िदगी से प्यार भी इक जुर्म है फिर तो।
गुनहगारो मे आ पहुँचा, खताकारो मे आ पहुँचा॥
भटकता फिर रहा था दर-व-दर और कू-व-कू[20] 'तावां'।
ये यारों का तसर्रुफ[21] है कि मैं यारो में आ पहुँचा॥

---

१ भक्ति-रूपी देश २ मद्यपो मे ३ जीवन-रूपी पाप ४. पुराने साथी ५. एक स्थान पर स्थिर रहने वाले सितारे ६ नक्षत्रो मे ७. शयनगृहो के ८. निद्रामय ९ सुवह १०. जीवन-दायक ११. जागृत दृश्य १२. इच्छुक १३. जिज्ञासा द्वारा विनष्ट किया हुआ १४. हैरान १५. धन-दौलत १६. चमक १७ खुदा १८ जीवन-रूपी नववधु १९. उन्माद २०. गली-गली २१. अधिकार (कृपा)

ग़ज़लें

कूचा-ए-शौक[१] रहे-फ़िक्रो-नज़र[२] से गुज़रे ।
नक्शे - पा[३] छोड गये हम तो जिधर से गुज़रे ॥
हम भी मस्जिद के इरादे से चले थे लेकिन ।
मैकदे[४] राह मे हायल थे[५] जिधर से गुज़रे ॥
ये वो मजिल है कि इलियास[६] भी गुम खिज्र[७] भी गुम ।
हाए आवारगी - ए - शौक[८] किधर से गुज़रे ॥
ज़ाहिदो - शैख मे[९] क्या-क्या न हुई सरगोशी ।
मैकदे जाते हुए हम जो उधर से गुजरे ॥
आज 'ताबा' दिले-मरहूम[१०] बहुत याद आया ।
बाद मुद्दत के जब उस राह - गुज़र[११] से गुज़रे ॥

० ० ०

भर आई आख तो अक्सर किसी के नाम के साथ ।
मगर वो अश्क[१२] जो छलका किये हैं जाम के साथ ॥
महे - तमाम की[१३] बातें महे - तमाम के साथ ॥
वो रात हो गई मन्सूब[१४] उनके नाम के साथ ॥
कफस मे रह के भी अक्सर बहार का दामन ।
नज़र से चूम लिया हमने एहतराम[१५] के साथ ॥
चमन पे साया - ए - अब्रे - बहार[१६] क्या कहिये ।
वो जुल्फ रुख पे[१७] बिखरती है इल्तज़ाम[१८] के साथ ॥
कोई समझ न सका राज़े- दिलबरी 'ताबा' ।
ये लुत्फे - खास[१९] है इक शाने - इतिकाम के साथ ॥

---

१ प्रेमिका की गली २ चिंतन-मार्ग ३ पदचिन्ह ४ मधुशालाएं ५ मार्ग मे पडते थे ६-७ पैग़म्बरो के नाम (पथ-प्रदर्शक) ८ जिज्ञासा (इश्क) सम्बधी आवारगी ९ धर्मोपदेशको मे १० मरा हुआ दिल (जो कभी आशिक होने के कारण जीवित था) ११ मार्ग (प्रेमिका की गली) १२ आंसू १३ पूरे चाद की १४ सम्बधित १५ श्रद्धा १६. बहार के बादलों की छाया १७ चेहरे पर १८ अनिवार्य रूप से १९ विशेष अनुकम्पा



जगन्नाथ 'आज़ाद'

जहां जुल्मत का मरकज़, आंधियों का आशियाना है
वहां 'आज़ाद' पैग़ामे-चिराग़ां ले के आया हूँ

ग़ज़लें

कूचा-ए-शौक[1] रहे-फिक्रो-नज़र[2] से गुज़रे ।
नक्शे - पा[3] छोड गये हम तो जिधर से गुज़रे ॥
हम भी मस्जिद के इरादे से चले थे लेकिन ।
मैकदे[4] राह मे हायल थे[5] जिधर से गुज़रे ॥
ये वो मजिल है कि इलियास[6] भी गुम खिज्र[7] भी गुम ।
हाए आवारगी - ए - शौक[8] किधर से गुज़रे ॥
ज़ाहिदो - शैख मे[9] क्या-क्या न हुई सरगोशी ।
मैकदे जाते हुए हम जो उधर से गुजरे ॥
आज 'ताबा' दिले-मरहूम[10] बहुत याद आया ।
बाद मुद्दत के जब उस राह - गुज़र[11] से गुज़रे ॥

◇ ◇ ◇

भर आई आख तो अक्सर किसी के नाम के साथ ।
मगर वो अश्क[12] जो छलका किये हैं जाम के साथ ॥
महे - तमाम की[13] बातें महे - तमाम के साथ ॥
वो रात हो गई मन्सूब[14] उनके नाम के साथ ॥
कफस मे रह के भी अक्सर बहार का दामन ।
नज़र से चूम लिया हमने एहतराम[15] के साथ ॥
चमन पे साया - ए - अब्रे - बहार[16] क्या कहिये ।
वो जुल्फ रुख पे[17] बिखरती है इल्तज़ाम[18] के साथ ॥
कोई समझ न सका राज़े- दिलबरी 'ताबा' ।
ये लुत्फे - खास[19] है इक शाने - इतिकाम के साथ ॥

---

१. प्रेमिका की गली २ चिंतन-मार्ग ३ पदचिन्ह ४ मधुशालाएं ५ मार्ग मे पडते थे ६-७ पैग़म्बरो के नाम (पथ-प्रदर्शक) ८ जिज्ञासा (इश्क) सम्बधी आवारगी ९ धर्मोपदेशको मे १० मरा हुआ दिल (जो कभी आशिक होने के कारण जीवित था) ११ मार्ग (प्रेमिका की गली) १२ आंसू १३ पूरे चाद की १४ सम्बधित १५ श्रद्धा १६. बहार के बादलों की छाया १७ चेहरे पर १८ अनिवार्य रूप से १९ विशेष अनुकम्पा



जगन्नाथ 'आज़ाद'

जहां जुल्मत का मरकज़, आंधियों का आशियाना है
वहां 'आज़ाद' पैग़ामे-चिराग़ां ले के आया हूं

परिचय

जगन्नाथ 'आज़ाद' की शायरी के सम्बन्ध मे इस समय मेरे सम्मुख 'जोश' मलीहाबादी, 'फिराक' गोरखपुरी, एहतिशाम हुसैन, ख्वाजा अहमद अब्बास और बहुत से अन्य साहित्यकारो की रायें रखी हैं और मुझे समझ नही आ रही है कि मैं 'आज़ाद' के व्यक्तित्व और उसकी शायरी के सम्बन्ध मे अपने इस लेख की शुरूआत कहाँ से करूँ ?

'जोश' मलीहाबादी की नज़र मे 'आज़ाद' इस ससार के हगामो का एक निश्चित दर्शक या एक अनुत्तरदायी सगीतधर्मी शायर की तरह अध्ययन नहीं करता बल्कि वह परिस्थितियो की आत्मा मे डूबकर मानव-जीवन का गहरी नज़र से प्रेक्षण कर ऐसी शायरी करता है जो रोचक भी होती है और मानव जाति के लिए हितकर भी।

'फिराक' गोरखपुरी के शब्दो मे 'आज़ाद' की शायरी किताबी नही, बल्कि जिन्दगी की आवाज़ है। एक चोट खाये हुए और सोचने वाले दिल की पुकार!

एहतिशाम हुसैन उसे आधुनिक काल के सफल उर्दू शायरो की तरह जीवन की समस्याओ को शायरी के साँचे मे सुरीति से ढालने वाला शायर कहता है और उनकी शैली मे रचाव के साथ-साथ कही-कही व्यग की झलक भी देखता है।

और ख्वाजा अहमद अब्बास की राय मे 'आज़ाद' अपनी नज़्मो और ग़ज़लो मे प्रोपेगण्डा के घटिया नारे नही लगाता। उसके रोमाटिक शेरों मे भी

अवसन्नता नही होती और न ही वह कभी राजनीतिक आवश्यकता से शेर का गला घोटता है।

प्रत्यक्ष है कि इन मतो के बाद 'आज़ाद' की शायरी के बारे मे कुछ और कहने की आवश्यकता नही रह जाती, लेकिन मेरे लेख का विषय चूंकि 'आज़ाद' की शायरी के साथ-साथ उसका व्यक्तित्व भी है इसलिए इन मतो को उनके स्थान पर छोड़ते हुए मैं उस 'आज़ाद' की ओर देखता हूँ जो 'आज़ाद' की बजाय कभी केवल जगन्नाथ था। पश्चिमी पजाब मे सिंध नदी के उस पार एक छोटा-सा शहर है ईसाखील। उसी ईसाखील मे ५ दिसम्बर १९१८ को उसका जन्म हुआ। पिता तिलोकचद 'महरूम' स्वय एक प्रसिद्ध शायर थे (हैं) इसलिए जगन्नाथ को जगन्नाथ 'आज़ाद' बनने मे अधिक प्रतीक्षा नही करनी पडी। अपनी काव्य-अभिरुचि के प्रारम्भ के बारे मे स्वय उसने एक जगह लिखा है कि :

"पाँच वर्ष का था जब पिता का तबादला ईसाखील से कलोरकोट के स्कूल मे हो गया। ईसाखील से कलोरकोट जाने के लिए काला बाग के स्थान पर सिंध नदी पार करनी पडती है। हमारी नाव चली ही थी कि पहाड़ पर बने हुए मकानो को देखकर पिता ने कहा :

पहाड़ो के ऊपर बने हैं मका।

और मुझसे गिरह (दूसरी पक्ति) लगाने को कहा। मैंने तुरन्त गिरह लगाई :

अजब इनकी सूरत अजब इनकी शां।

पिता ने कहा 'सूरत' नही 'शौकत' कहो। उस समय तो मैं सूरत और शौकत का भेद न समझ सका लेकिन कुछ समय के बाद जब मैंने दोनो शब्दो का फर्क जान लिया तो मुझे पता चला कि शेर कहने मे नेतृत्व और परामर्श का महत्व कितना अधिक होता है।"

इसी नेतृत्व और परामर्श के महत्व को समझ लेने से अपने कालेज के जमाने (लाहौर) मे उसने डाक्टर 'इकबाल', सय्यद आबिदअली 'आबिद', सूफी गुलाम मुस्तफा 'तबस्सुम' और डाक्टर सय्यद मोहम्मद अब्दुल्ला ऐसे साहित्यकारो की शरण ली और डाक्टर 'इक्बाल' की शायरी से तो वह इतना प्रभावित हुआ कि उसकी आज की शायरी मे भी 'इक्बाल' का लबो-लहजा देखा जा सकता है।

कलोरकोट से आठवी और मियांवाली से दसवीं श्रेणी की परीक्षा पास

करने के बाद १९३३ ई० मे जब वह उच्च शिक्षा के लिए रावलपिंडी आया और उसके पिता ने भी कोशिश करके अपना तबादला वहाँ करवा लिया तो तीन वर्ष तक उसे पिता के मित्रो अब्दुलहमीद 'अदम' और अब्दुलअज़ीज़ 'फितरत' ऐसे सिद्धहस्त शायरों की महफिल में उठने-बैठने का अवसर मिला और उन लोगो की साहित्य-सम्बन्धी चर्चा से उसने पूरे उर्दू जगत का चित्र देख लिया। उस ज़माने मे उसने अपने कालेज मे एक साहित्य-सभा (बज़्मे-अदब) की नींव डाली और कालेज मैगज़ीन का सपादन भी किया। कालेज मैगज़ीन मे तो खैर उसकी रचनाओ को प्रकाशित होना ही था लेकिन कलात्मक रूप से चूँकि उसके शेरो मे दूसरे तरुण शायरो की अपेक्षा अधिक पटुता होती थी इसलिए मौलाना सलाहुद्दीन अहमद और दयानारायण 'निगम' ऐसे सपादको ने 'अदबी दुनिया' और 'ज़माना' मे उसकी रचनाओ को उचित स्थान दे उसको प्रोत्साहन दिया और यह सिलसिला उसके ओरिएटल कालेज लाहौर से एम ए करने के बाद तक जारी रहा।

यहाँ मैं एक बात कहने का साहस करना चाहता हूँ कि कलात्मक पटुता के बावजूद उसकी उन दिनो की शायरी मे उसकी सामाजिक सूझ-बूझ का कुछ पता नही चलता था और उसकी अधिकतर नज्मे ठीक वैसी ही होती थी जैसी हम आज भी दैनिक पत्रो मे प्रतिदिन देखते हैं और शायद इसीलिए 'अदबे-लतीफ' और 'सवेरा' उच्चकोटि की उर्दू पत्रिकाओ के सपादको ने उन दिनो उसकी कोई नज्म या ग़ज़ल प्रकाशनार्थ स्वीकार नही की और व्यग्य-लेखक कन्हैयालाल कपूर के कथनानुसार तो उन दिनो 'आज़ाद' का हर दूसरा शेर पहले शेर की पैरोडी होता था।

लेकिन कभी-कभी मनुष्य के जीवन मे केवल एक घटना या दुर्घटना उसके जीवन के धारे को मोडकर रख देती है और उस एक कचोके से ही आत्मालोचन की क्षमता उत्पन्न हो जाने से उसे अपनी त्रुटिया स्वीकार करते हुए कोई झिझक नही होती और अपने गुणो को वह और अधिक निखारने का प्रयत्न करने लगता है।

१९४९ मे भारत स्वतन्त्र हुआ और उसके दो टुकडे कर दिए गए और हज़ारो-लाखो लोग न केवल बेघर हो गए बल्कि उन्होंने एक-दूसरे के खून से ऐसी होली खेली जिसका उदाहरण पूरे विश्व-इतिहास मे नही मिलता और स्वय 'आज़ाद' भी इस गटबट और रक्तपात का शिकार हुआ और उसे अपना प्यारा देश छोडना पडा। और सैकडो कष्ट झेलता हुआ जब वह दिल्ली पहुँचा

तो उसके मस्तिष्क मे एक प्रश्न उत्पन्न हुआ .

"क्यो ?"

"ये सब क्यो ?"

और हम देखते हैं कि शीघ्र ही उसने न केवल इस 'क्यो' का उत्तर पा लिया बल्कि अपनी रचनाओं द्वारा उसने इसका ठीक-ठीक उत्तर भी प्रस्तुत किया। अतएव यदि मैं यह कहूँ कि सही अर्थों मे 'आज़ाद' की शायरी का प्रारम्भ १९४७ के बाद हुआ और विशेषकर इस प्रकार के शेरो के साथ :

अभी तो चश्मे-इबरत वक्त की रफ्तार देखेगी।
अभी ये किस तरह कह दें सितमरानो पे[1] क्या गुज़री ?

तो मैं समझता हूँ मैं किसी गलत-बयानी से काम नही ले रहा।

'आज़ाद' से मैं लाहौर मे भी अक्सर मिलता रहा हूँ और यहाँ दिल्ली मे तो आए दिन उससे मुलाकातें रहती है लेकिन मुझे १९४९ की वह शाम कभी नही भूलती जब देश-विभाजन के बाद हम पहली बार दिल्ली मे एक-दूसरे से मिले थे और उसके साधारण से वस्त्र और मोरी गेट के इलाके मे छोटा-सा अन्धकारमय मकान देखकर मैंने उससे पूछा था :

"यह तुम्हे क्या हो गया है ?"

और उसने व्यग्य की हँसी हँसते हुए (जिसे मैंने पहले कभी उसके होंठो पर नही देखा था) कहा था "और तुम्हे क्या हो गया है ?"

उस समय मैं समझता था कि वह केवल अपनी झिझक दूर कर रहा है क्योकि देखने मे मुझे कुछ नही हुआ था, मैंने काफी अच्छे वस्त्र पहन रखे थे और एक अच्छे मकान मे रहता था। लेकिन फिर मेरे कहने पर जब उसने अपनी कुछ-एक नज़्मे मुझे सुनाई तो मुझे अनुभव हुआ कि यदि सचमुच मुझे कुछ नही हुआ है तो मैं झूठ बोल रहा हूँ।

आज जगन्नाथ 'आज़ाद' भारत सरकार के इन्फ़रमेशन ब्यूरो मे इन्फरमेशन अफसर है। अच्छा लिबास पहनता है, अच्छा खाना खाता है और अच्छे घर मे रहता है, लेकिन इस परिवर्तन मे और उस परिवर्तन मे जो भारत-विभाजन के बाद उसमे पैदा हुआ था, धरती-आकाश का अन्तर है। आज किसी साहित्य-सभा मे चुपचाप बैठने या केवल पिंगल आदि पर बातचीत करने की बजाए वह जीवन और साहित्य के परस्पर सम्बन्ध पर बड़ी

---

१. अत्याचारियो पर

सैद्धान्तिक बहस करता है और उसने जान लिया है कि :

जिस नज्म मे मौजूद न फर्दा[1] की तडप हो।
वो नज्म है 'आजाद' फकत[2] मर्सिया-ख्वानी[3] ॥

और यही कारण है कि छ-सात वर्ष के इस सक्षिप्त से काल मे ही उसने आधुनिक उर्दू शायरी मे अपना एक विशेष स्थान बना लिया है और बडी से बडी पत्रिकाओ के सम्पादक उसकी रचनाओ को बडे गौरव से प्रकाशित करते हैं।

---

१ भविष्य २ केवल ३ शोकगाथा

१५ अगस्त १९४७ ई०

न पूछो जब बहार आई तो दीवानों पे क्या गुज़री ?
ज़रा देखो कि इस मौसम मे फ़रज़ानों[1] पे क्या गुज़री ?
बहार आते ही टकराने लगे क्यों सागरो-मीना ?
बता ऐ पीरे-मैख़ाना ! ये मैखानो पे क्या गुज़री ?
फ़ज़ा मे हर तरफ क्यों धज्जियां आवारा है उनकी ?
जुनूने - सरफ़रोशी तेरे अफ़सानों पे क्या गुज़री ?
विसाले-शम्मअ़[2] की हसरत मे सब बेताब फिरते थे।
मै क्या जानूँ हज़ूरे-शम्मअ़ परवानों पे क्या गुज़री ?
कहो दैरो-हरम वालो[3] ! ये तुम ने क्या फ़ुसूं फ़ूका[4] ?
ख़ुदा के घर पे क्या बीती सनमख़ानो[5] पे क्या गुज़री ?
निशाने-बर्गो-गुल[6] तक भी नज़र आता नही हमको।
समझ मे कुछ नही आता गुलिस्तानो पे क्या गुजरी ॥
जहां नूरे-सहर के[7] भी क़दम जमने न पाते थे।
बताये कौन आखिर उन शबिस्तानों पे[8] क्या गुज़री ?
वो रंगो-नूर से भरपूर बसतानों पे[9] क्या बीती ?
शबाबे-शेर से मामूर[10] काशानो पे क्या गुजरी ?
अभी तो चश्मे - इबरत वक़्त की रफ्तार देखेगी।
अभी ये किस तरह कह दे सितमरानो पे क्या गुज़री ?
न पूछ 'आज़ाद' अपनों और बेगानो का अफसाना।
हुआ था क्या ये अपनो को ये बेगानों पे क्या गुज़री ?

---

१. बुद्धिमानो २. शम्मअ़ के मिलाप (स्वतन्त्रता) ३. काबे और बुतख़ाने वालो ४. जादू ५ बुतख़ानो (मन्दिरो) ६. फूल और पत्ती तक का निशान ७ कृपा के प्रकाश के ८. शयनगृहो पर ९. फुलवाड़ियों पर १०. परिपूर्ण

ग़ज़लें

हमारे रब्ते-बाहम[1] की कहा तक बात जा पहुँची।
हकीकत[2] से चली थी दास्ता[3] तक बात जा पहुची॥
उठी दिल से यकीने-बाहमी[4] पर जिसकी बुनियादें।
ताज्जुब है वही आखिर गुमा तक बात जा पहुची॥
गुलिस्ता के किसी गोशे पे इक कौंदा सा लपका था।
मगर आखिर हमारे आशिया तक बात जा पहुची॥
रफीको! दोस्तो! दावे मुहब्बत के बजा, लेकिन।
अगर मेरी बदौलत इम्तिहा तक बात जा पहुची॥
वही तक राज़े-सरबस्ता[5] रही जब तक रही दिल मे।
ज़रा आई जबा तक और कहाँ तक बात जा पहुची॥
शमीमे-गुल[6] ने जिस की इब्तिदा की थी गुलिस्ता मे।
वहा ज़िदा[7] मे ज़जीरे-गिरां[8] तक बात जा पहुंची॥
किया था ज़िक्र सा बेमेहरी-ए-अहबाब का[9] मैने।
मगर नाकदरी-ए-हिन्दोस्ता तक[10] बात जा पहुँची॥

---

१. परस्पर सम्बन्ध (प्रेम) २ वास्तविकता ३ कथा-कहानी ४. परस्पर ध्यान ५ गुप्त भेद ६ फूल की महक ७. कारागार ८ बोझल और ९. मित्रों की बेरुखी का १० भारत का निरादर करने तक

जो दिल का राज बे-आहो-फुगाँ कहना ही पड़ता है।
तो फिर अपने क़फ़स को आशियाँ कहना ही पड़ता है॥
तुझे ऐ तायरे-शाखे-नशेमन[1] ! क्या खबर इसकी ?
कभी सय्याद को भी बागवाँ कहना ही पड़ता है॥
ये दुनिया है यहाँ हर काम चलता है सलीक़े से।
यहा पत्थर को भी लाले-गिरा[2] कहना ही पड़ता है॥
व-फ़ैज़े-मसलहत[3] ऐसा भी होता है ज़माने मे।
कि रहज़न को[4] अमीरे-कारवाँ[5] कहना ही पडता है॥
ज़बानों पर दिलो की बात जब हम ला नही सकते।
जफा को फिर वफा की दास्ताँ कहना ही पडता है॥
न पूछो क्या गुज़रती है दिले-खुद्दार पर अक्सर।
किसी बेमेहर[6] को जब मेहरबाँ कहना ही पड़ता है॥

१. घोंसले की टहनी पर बैठने वाले पक्षी २. बहुमूल्य हीरा ३. समय की माँग के अनुसार ४. डाकू को ५. काफ़िले का पथ-प्रदर्शक ६. निर्दयी

रुबाई

अब किसकी थी उस वक्त खता, याद नही।
किस तरह से हम हुए जुदा, याद नही॥
है याद वो गुफ्तगू की तल्खी लेकिन।
'आज़ाद' वो गुफ्तगू थी क्या, याद नही॥

फुटकर शेर

कही मजाके-नज़र[1] को करार[2] मिल न सका।
कभी चमन से कभी कहकशा[3] से गुजरा हू॥
तेरे करीब से गुजरा हू इस तरह कि मुझे।
खबर भी हो न सकी मै कहा से गुज़रा हूँ?

◇ ◇ ◇

क्या जानिये 'आज़ाद' मेरा इश्के-जुनूं-खेज़[4]।
जीने का सहारा है कि मरने का बहाना?

◇ ◇ ◇

तेरे वस्ल मे कहा था ये सरूरे-तश्नाकामी।
मेरे काम आई आखिर, मेरी आरज़ू की खामी॥

◇ ◇ ◇

वज्मे-खिरद में[5] कद्रे-जुनू का[6] सवाल क्या?
हम आ गये थे चाके-गरेबा सिये हुए॥

---

१ नजर की रुचि (स्वाद, रस) २ चैन ३ आकाश-गगा
४. उन्मादोत्पादक ५ बुद्धिजीवियो की सभा में ६ उन्माद के मूल्यो का



'अर्श' मल्सियानी

ऐ 'अर्श' गुनाह भी हैं तेरे दाद के क़ाबिल
तुझको कफ़े-अफ़सोस भी मलते नहीं देखा

रुबाई

अब किसकी थी उस वक़्त खता, याद नही।
किस तरह से हम हुए जुदा, याद नही॥
है याद वो गुफ्तगू की तल्खी लेकिन।
आज़ाद ! वो गुफ्तगू थी क्या, याद नही॥

फुटकर शेर

कही मजाके-नज़र[1] को करार[2] मिल न सका।
कभी चमन से कभी कहकशा[3] से गुजरा हू॥
तेरे करीब से गुजरा हू इस तरह कि मुझे।
खबर भी हो न सकी मै कहा से गुज़रा हूँ?

◇ ◇ ◇

क्या जानिये 'आज़ाद' ! मेरा इश्के-जुनूं-खेज़[4]।
जीने का सहारा है कि मरने का बहाना?

◇ ◇ ◇

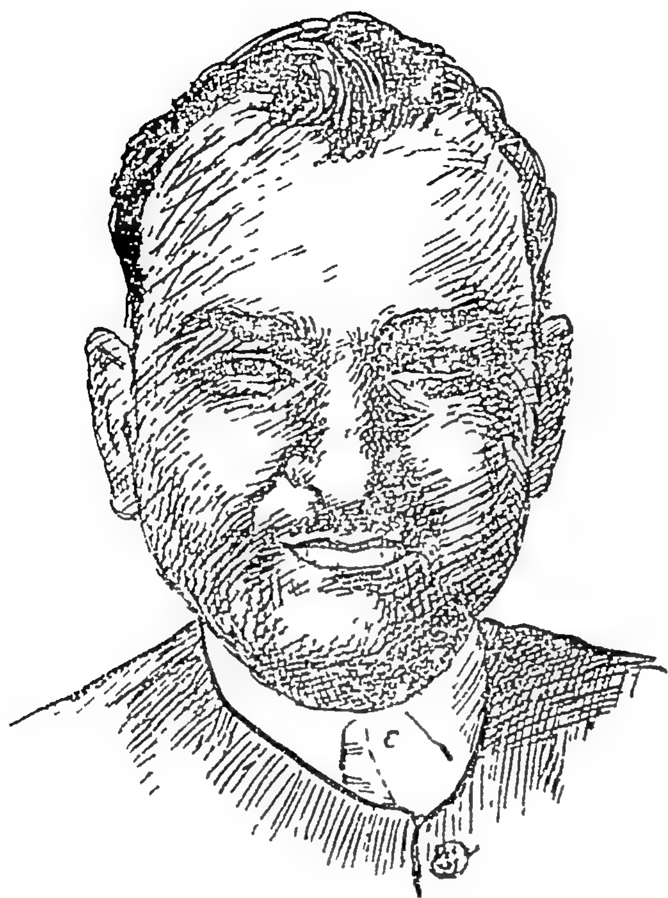
तेरे वस्ल मे कहा था ये सरूरे-तश्नाकामी।
मेरे काम आई आखिर, मेरी आरज़ू की खामी॥

◇ ◇ ◇

बज़्मे-खिरद में[5] कद्रे-जुनूं का[6] सवाल क्या?
हम आ गये थे चाके-गरेवा सिये हुए॥

---

१ नजर की रुचि (स्वाद, रस) २ चैन ३. आकाश-गंगा
४. उन्मादोत्पादक ५ बुद्धिजीवियो की सभा में ६. उन्माद के मूल्यो का



'अर्श' मलसियानी

ऐ 'अर्श' गुनाह भी हैं तेरे दाद के क़ाबिल
तुमको कफ़े-अफ़सोस भी मलते नहीं देखा

रुबाई

अब किसकी थी उस वक़्त ख़ता, याद नही।
किस तरह से हम हुए जुदा, याद नही ॥
है याद वो गुफ़्तगू की तल्ख़ी लेकिन।
आजाद! वो गुफ़्तगू थी क्या, याद नही ॥

फुटकर शेर

कही मजाके-नज़र[1] को करार[2] मिल न सका।
कभी चमन से कभी कहकशा[3] से गुजरा हू ॥
तेरे करीब से गुज़रा हूं इस तरह कि मुझे।
खबर भी हो न सकी मै कहा से गुज़रा हूँ ?

◇ ◇ ◇

क्या जानिये 'आज़ाद'! मेरा इश्के-जुनूं-खेज़[4]।
जीने का सहारा है कि मरने का बहाना ?

◇ ◇ ◇

तेरे वस्ल मे कहा था ये सरूरे-तश्नाकामी।
मेरे काम आई आखिर, मेरी आरजू की खामी ॥

◇ ◇ ◇

बज्मे-खिरद में[5] कद्रे-जुनू का[6] सवाल क्या ?
हम आ गये थे चाके-गरेबा सिये हुए ॥

---

१ नजर की रुचि (स्वाद, रस) २ चैन ३ आकाश-गगा
४. उन्मादोत्पादक ५ बुद्धिजीवियों की सभा मे ६ उन्माद के मूल्यो का

तो वालिद साहब ने न केवल इस्लाह देने से इन्कार कर दिया वल्कि डाट पिलाई कि शायरी का जौहर (गुण) तुम मे मौजूद ही नही, इसे छोड दो।"

शायरी का जौहर, जैसा कि वाद मे सिद्ध हुआ, 'अर्श' मे पर्याप्त मात्रा मे मौजूद था। उनके पिता ने शायद इसलिए उनकी पीठ न थपथपाई थी कि शेरो-शायरी मे पडकर उनका वेटा अपने शिक्षण से मुँह न मोड ले। क्योकि कुछ समय वाद ही जव किसी व्यक्ति ने 'अर्श' का नाम लिये विना उन्हे यह शेर सुनाया .

मरकर भी गिरफ़्तारे-सफ़र[1] है मेरी हस्ती।
दुनिया मेरे आगे है तो उक़्वा[2] मेरे पीछे ॥

तो उन्होने जी खोलकर दाद दी और कहा कि यह शेर जरूर किसी उस्ताद का है। लेकिन जव इन महाशय से उन्हे पता चला कि किसी उस्ताद का नही, स्वय उनके सुपुत्र का है तो एक वार फिर उनके माथे पर वल पड़ गया और उन्होने यह कहकर शेर की प्रशसा करनी वन्द कर दी कि एक अच्छा शेर कहने से कोई शख्स शायर नही हो जाता। इस प्रकार प्रोत्साहन न मिलने का, 'अर्श' के कथनानुसार, उन पर यह प्रभाव पड़ा कि अपनी नज़्मो-ग़ज़लो पर वे और भी अधिक मेहनत और फिर स्वय ही प्रत्यालोचन करने लगे। वाक़ायदा इस्लाह किसी से न ली और शनैः-शनै मल्सियान ऐसी शायरी के लिहाज़ से मरुभूमि पर शायर की हैसियत से स्वय ही अपने पैरो पर खड़े हो गए।

अपने जन्म और जन्म-भूमि के वारे मे एक स्थान पर वह स्वयं ही लिखते हैं कि "पजाव के ज़िला जालन्धर का एक छोटा-सा क़स्वा जिसे मेरे पिता अक्सर 'ख़रावावाद' के नाम से याद करते हैं, मेरा जन्म-स्थान है। इस कस्वे का नाम मल्सियान है। ज्ञान तथा विद्वत्ता की दृष्टि से इस कस्वे मे मेरे माननीय पिता से पूर्व कोई व्यक्ति ऐसा नही हुआ जिसे थोडा-वहुत भी विद्वान् कहा जा सके। २० सितम्वर १६०८ ई० को इसी दूरदराज़ और असाहित्यिक वातावरण मे मेरा जन्म हुआ।"

मल्सियान ही नही 'अर्श' की युवावस्था का अधिकाश भाग ऐसे ही असाहित्यिक वातावरण और शेरो-शायरी की शत्रु नौकरियो मे व्यतीत हुआ जिनसे अपना पिंड छुडाने के लिए वे वेतरह छटपटाते रहे—"एफ़० ए० मे शिक्षा ग्रहण कर रहे थे कि स्वभाव के विरुद्ध गवर्नमेंट एन्जीनियरिंग स्कूल की

---

१. सफर मे गिरफ्तार (गतिशील) २. परलोक

अर्श

"... न खाने की चीज़ें खाते हैं न पीने की चीज़ें पीते हैं। न सूंघने की चीज़ें सूंघते, न टटोलने की चीज़ें टटोलते, न बरतने की चीज़ें बरतते और न झपट पडने की चीज़ो पर झपटते हैं। चारे और घास-फूँस से विटामिन हासिल करते हैं और बेज़रर चरिंद (अहानिकारक पशु) की ज़िन्दगी जीते हैं।"

यह है 'जोश' मलीहाबादी की भाषा मे 'अर्श' मल्सियानी के व्यक्तिगत जीवन का साराश। 'अर्श' मल्सियानी जो मुखाकृति, शरीर और वस्त्रो के आधार पर, वार्तालाप और उलझी हुई जीवन-समस्याओ को चुटकियो मे सुलझा देने के आधार पर और ससार की प्रत्येक वस्तु पर निरन्तर तीस वर्ष से शतरज को प्रधानता देने के आधार पर शायर कम और किसी गाँव के पटवारी अधिक मालूम होते हैं। इस पर भी जब मैंने उनके उपनाम के बारे मे उनसे बात की तो मुझे उत्तर मिला कि "घटिया क़िस्म का तखल्लुस रखने से चूंकि शायरी पर उसका असर पडने का अन्देशा था इसलिए मैंने 'अर्श' (आकाश या ईश्वर के बैठने का सिहासन) तखल्लुस चुना।" लेकिन इसके साथ ही उन्होंने यह भी अभिव्यक्ति की कि "१९२५ ई० मे जब मैंने अपनी पहली नज़्म अपने वालिद साहब[1] को इस्लाह (सशोधन) की ग़र्ज़ से दिखाई

---

१ श्री 'जोश' मल्सियानी—उर्दू और फारसी के प्रसिद्ध विद्वान् और शायर। भारत सरकार की ओर से हाल ही मे उनकी साहित्य-सेवाओ के उपलक्ष मे उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है।

तो वालिद साहव ने न केवल इस्लाह देने से इन्कार कर दिया वल्कि डाट पिलाई कि शायरी का जौहर (गुण) तुम मे मौजूद ही नही, इसे छोड दो।"

शायरी का जौहर, जैसा कि वाद मे सिद्ध हुआ, 'अर्श' मे पर्याप्त मात्रा मे मौजूद था। उनके पिता ने शायद इसलिए उनकी पीठ न थपथपाई थी कि शेरो-शायरी मे पडकर उनका वेटा अपने शिक्षण से मुँह न मोड ले। क्योकि कुछ समय वाद ही जव किसी व्यक्ति ने 'अर्श' का नाम लिये विना उन्हे यह शेर सुनाया :

> मरकर भी गिरफ्तारे-सफर[1] है मेरी हस्ती।
> दुनिया मेरे आगे है तो उक्वा[2] मेरे पीछे॥

तो उन्होंने जी खोलकर दाद दी और कहा कि यह शेर ज़रूर किसी उस्ताद का है। लेकिन जव इन महाशय से उन्हे पता चला कि किसी उस्ताद का नही, स्वय उनके सुपुत्र का है तो एक वार फिर उनके माथे पर वल पड गया और उन्होने यह कहकर शेर की प्रशसा करनी वन्द कर दी कि एक अच्छा शेर कहने से कोई शख्स शायर नही हो जाता। इस प्रकार प्रोत्साहन न मिलने का, 'अर्श' के कथनानुसार, उन पर यह प्रभाव पडा कि अपनी नज्मो-गज़लो पर वे और भी अधिक मेहनत और फिर स्वय ही प्रत्यालोचन करने लगे। वाकायदा इस्लाह किसी से न ली और शनै.-शनै. मल्सियान ऐसी शायरी के लिहाज़ से मरुभूमि पर शायर की हैसियत से स्वय ही अपने पैरो पर खड़े हो गए।

अपने जन्म और जन्म-भूमि के वारे मे एक स्थान पर वह स्वय ही लिखते हैं कि "पजाव के जिला जालन्धर का एक छोटा-सा कस्वा जिसे मेरे पिता अक्सर 'खरावावाद' के नाम से याद करते हैं, मेरा जन्म-स्थान है। इस कस्वे का नाम मल्सियान है। ज्ञान तथा विद्वत्ता की दृष्टि से इस कस्वे मे मेरे माननीय पिता से पूर्व कोई व्यक्ति ऐसा नही हुआ जिसे थोड़ा-वहुत भी विद्वान् कहा जा सके। २० सितम्वर १६०८ ई० को इसी दूरदराज़ और असाहित्यिक वातावरण मे मेरा जन्म हुआ।"

मल्सियान ही नही 'अर्श' की युवावस्था का अधिकाश भाग ऐसे ही असाहित्यिक वातावरण और शेरो-शायरी की शत्रु नौकरियो मे व्यतीत हुआ जिनसे अपना पिंड छुडाने के लिए वे वेतरह छटपटाते रहे—"एफ० ए० मे शिक्षा ग्रहण कर रहे थे कि स्वभाव के विरुद्ध गवर्नमेंट एन्जीनियरिंग स्कूल की

---

१ सफर मे गिरफ्तार (गतिशील) २. परलोक

कमज़र्फ[1] दुनिया

ये दौरे-खिरद[2] है दौरे-जुनूं[3], इस दौर में जीना मुश्किल है।
अंगूर की मै के धोखे मे ज़हराब[4] का पीना मुश्किल है॥

जब नाखुने-वहशत[5] चलते थे रोके से किसी के रुक न सके।
अब चाके-दिले-इन्सानियत[6] सीते है तो सीना मुश्किल है॥

जो 'धर्म' पे बीती देख चुके, 'ईमा' पे जो गुज़री देख चुके।
इस रामो-रहीम की दुनिया में इन्सान का जीना मुश्किल है॥

इक सब्र के घूंट से मिट जाती सब तश्नालबो की[7] तश्नालबी।
कमज़र्फी-ए-दुनिया के सदके ये घूंट भी पीना मुश्किल है॥

वो शोला नही जो बुझ जाये, आंधी के एक ही झोंके से।
बुझने का सलीका आसा है, जलने का करीना[8] मुश्किल है॥

करने को रफू कर ही लेंगे, दुनिया वाले सब ज़ख्म अपने।
जो ज़ख्म दिले-इन्सा पे[9] लगा, उस ज़ख्म का सीना मुश्किल है॥

वो मर्द नही जो डर जाये माहौल के[10] खूनी मन्ज़र[11] से।
उस हाल मे जीना लाज़िम[12] है जिस हाल मे जीना मुश्किल है॥

मिलने को मिलेगा बिल-आखिर[13] ऐ 'अर्श' सुकूने-साहिल[14] भी।
तूफाने-हवादिस मे[15] लेकिन बच जाये सफीना[16] मुश्किल है॥

---

१ ओछी २ बुद्धि-काल ३ उन्माद-काल ४ पानी मे घुला हुआ विष ५ पशुता के नाखून ६ मानवता के हृदय का घाव ७ प्यासो की ८ सुन्दर ढंग ९ मानव-हृदय पर १० वातावरण के ११ दृश्य १२ आवश्यक १३ अन्तत १४ तट की शान्ति १५ दुर्घटनाओं के तूफ़ान से १६ नौका

नवाए-इश्क़[1]

मोहब्बत सोज भी है साज़ भी है।
ख़मोशी भी है, ये आवाज भी है॥

नशेमन के[2] लिए बेताव तायर[3]।
वहां पाबदी-ए-परवाज़[4] भी है॥

मेरी खामोशी-ए-दिल[5] पर न जाओ।
कि इस मे रूह की आवाज भी है॥

ख़मोशी पर भरोसा करने वाले!
खमोशी दर्द की गम्माज़[6] भी है॥

दिले-बेगाना-ख़ू[7], दुनिया मे तेरा।
कोई हमदम कोई हमराज़ भी है?

तराना-हाए-साज़े-ज़िन्दगी[8] मे।
इक आवाज़े-शिकस्ते-साज़[9] भी है॥

है मेअराजे-ख़िरद[10] भी 'अर्श'-आज़िम[11]।
जुनूं[12] का फर्शे-पा[13] अंदाज़ भी है॥

---

१. इश्क का नग्मा २. घोसले के ३. पक्षी ४. उड़ने की पाबंदी ५. हृदय की चुप्पी ६. चुग़ल-ख़ोर ७ दूसरो को पसद करने वाले दिल ८. जीवन के साज के सगीत ६ टूटे हुए साज का स्वर १०. बुद्धि की चरम सीमा ११. सातवा आकाश (जहा ख़ुदा रहता है) १२. उन्माद १३. पैरों के नीचे का फ़र्श

ग़ज़लें

बिगड़ी हुई किस्मत को बदलते नही देखा।
आजाये जो सिर पर उसे टलते नही देखा॥

क्यो लोग हवा बाधते है हिम्मते-दिल की[१]।
हमने तो इसे गिर के सभलते नही देखा॥

हम जौर[२] भी सह लेंगे मगर डर है तो ये है।
ज़ालिम को कभी फूलते-फलते नही देखा॥

अरबाब की[३] ये शाने-हरीफ़ाना[४] सलामत[५]।
दुश्मन को भी यूं ज़हर उगलते नही देखा॥

वो राह सुझाते हैं हमे हज़रते-रहबर[६]।
जिस राह पे उनको कभी चलते नही देखा॥

ऐ 'अर्श' गुनाह भी है तेरे दाद के[७] काबिल।
तुझको कफ़े-अफ़सोस[८] भी मलते नही देखा॥

◇ ◇ ◇

इश्के-बुता[९] का लेके सहारा कभी-कभी।
अपने ख़ुदा को हमने पुकारा कभी-कभी॥

आसूदह्-ख़ातिरी[१०] ही नही मतमअ्-ए-वफ़ा[११]।
ग़म भी किया है हमने गवारा कभी-कभी॥

---

१. दिल के साहस की २ अत्याचार ३ मित्रों की ४. प्रतिद्वन्द्विता की शान ५ बनी रहे ६ पथ-प्रदर्शक ७ प्रशंसा के ८ अफ़सोस से हाथ मलना ९ सुन्दरियों का इश्क़ १०. सुख-सन्तोष की इच्छा ११. वफ़ा का लक्ष्य या लालच

इस इन्तिहा-ए-तर्के-मुहब्बत के[1] बावजूद।
हमने लिया है नाम तुम्हारा कभी कभी॥
तूफां का खौफ है अभी शायद करिश्माकार[2]।
आता है सामने जो किनारा कभी कभी॥
तनहा-रवी ने[3] रक्खी हमारे जुनूं को[4] लाज।
गो अहले-कारवां ने[5] पुकारा कभी कभी॥
अब क्या कहें दिले-मुतलव्विन-मिज़ाज को[6]।
अक्सर ये आपका है, हमारा कभी कभी॥
पैहम सितम से[7] इश्क की तस्कीन[8] हो न जाये।
ऐ दोस्त, इल्तिफात[9]! खुदा-रा[10] कभी कभी॥
फरियादे-गम से[11] 'अर्श' सभलता है दिल मगर।
लेते हैं अहले-दिल[12] ये सहारा कभी कभी॥

इक फकत[13] मज़लूम का[14] नाला[15] रसा[16] होता नही।
ऐ खुदा दुनिया मे तेरी वर्ना क्या होता नहीं!
क्यो मेरे ज़ौके-तसव्वुर पर[17] तुम्हे शक हो गया।
तुम ही तुम होते हो, कोई दूसरा होता नही॥
हमको राहे-ज़िन्दगी मे[18] इस कदर रहज़न[19] मिले।
रहनुमा पर भी गुमाने-रहनुमा[20] होता नहीं॥
सजदे[21] करते भी हैं इन्सां खुद दरे-इन्सां पे[22] रोज़।
और फिर कहते भी हैं, बन्दा खुदा होता नही॥

---

१. प्रेम से मुंह मोडने की चरम-सीमा २. चमत्कार दिखा रहा है ३. अकेला चलने ने ४. उन्माद की ५ कारवान वालों ने ६. अनेक-चित्त हृदय को ७. निरन्तर अत्याचार ८. सन्तुष्टि ९. कृपा-दृष्टि १० भगवान् के लिए ११. ग़म की फ़रियाद से १२. दिल वाले १३ केवल १४. पीड़ित का १५. आर्तनाद, फरियाद १६. भगवान तक पहुँचना १७ कल्पना की अभिरुचि पर १८. जीवन-मार्ग मे १९. लुटेरे २०. पथप्रदर्शक का अनुमान २१. माथा टेकना २२. मनुष्य के दरवाजे पर

नाखुदा को[1] ढूंढ जाकर हल्का-ए-गिरदाब मे[2] ।
बन्दा-ए-साहिल-नशी[3] तो नाखुदा होता नही ॥
'अर्श' पहले ये शिकायत थी खफा होता है वो ।
अब ये शिकवा है कि वो ज़ालिम खफा होता नही ॥

पहला सा वो जुनूने-मोहब्बत[4] नही रहा ।
कुछ-कुछ सभल गये हैं तुम्हारी दुआ से हम ॥
यूं मुत्मइन से[5] आए है खाकर जिगर पे चोट ।
जैसे वहां गये थे इसी मुद्दआ[6] से हम ॥
आने दो इल्तिफात मे[7] कुछ और भी कमी ।
मानूस[8] हो रहे हैं तुम्हारी जफा से[9] हम ॥
खू-ए-वफा[10] मिली दिले-दर्द-आशना[11] मिला ।
क्या रह गया है और जो मागें खुदा से हम ।
पाए-तलब[12] भी तेज़ था, मज़िल भी थी करीब ।
लेकिन निजात[13] पा न सके रहनुमा से[14] हम ॥

दर्द की इब्तिदा[15] भी है, जब्त की[16] इन्तिहा भी है ।
कतरा-ए-अश्क[17] आख मे आके रुका हुआ भी है ॥
राहे-फना पे[18] हर जगह खा न फरेबे-बदगी[19] ।
देख कि इस मुकाम पर[20] सजदा-ए-दिल[21] रवा[22] भी है ?
ऐ दिले-कमनज़र[23] ज़रा उस पे भी कुछ नज़र रहे ।
दुश्मने-मुद्दआ[24] है जो, खालिके-मुद्दआ[25] भी है ।

---

१ नाविक को २ भंवर के घेरे मे ३ तटवासी ४ प्रेमोन्माद ५ सन्तुष्ट मे ६ उद्देश्य ७ कृपा मे ८ अभ्यस्त ९ अत्याचार से १० प्रेम निभाने की आदत ११ पीडित हो उठने वाला हृदय १२ तलाश करने वाला पाव १३ मुक्ति १४ पथप्रदर्शक से १५ शुरुआत १६ सहनशक्ति की १७ आसू की बूद १८ विनाश-मार्ग में १९ उपासना का धोखा २० स्थान पर २१ दिल का प्रणाम २२ उचित २३ सकुचित दिल २४ मनोकामना का शत्रु २५ मनोकामना का उत्पत्ति-कर्त्ता

फुटकर शेर

तहय्युर[1] है हुजूरी में तो बेताबी है दूरी में ।
मुसीबत में ये जाने-नातवाँ[2] यूँ भी है औ[3] यूँ भी ॥

◇ ◇ ◇

तवाज़न[4] खूब ये इश्को-सजा-ए-इश्क में[5] देखा ।
तबीयत एक बार आई, मुसीबत बार-बार आई ॥

◇ ◇ ◇

दागे-दिल से[6] भी रोशनी न मिली ।
ये दिया भी जला के देख लिया ॥

◇ ◇ ◇

ततन्नोअ़ की[7] फुसूंकारी का[8] कुछ ऐसा असर देखा ।
कि ये दुनिया मुझे दुनियानुमा[9] मालूम होती है ॥

◇ ◇ ◇

न हरम[10] में है वो न दैर[11] में है ।
हम तो दोनों जगह पुकार आये ॥

◇ ◇ ◇

खयाले-तामीर के असीरो[12], करो न तख़रीब की[13] बुराई ।
बगौर[14] देखो तो दुश्मनी के करीब ही दोस्ती मिलेगी ॥
अ़ताब[15] करने दो 'अर्श' उनको कि इनमें भी मसलहत[16] निहाँ[17] है ।
मिज़ाज को बरहमी[18] मिलेगी तो हुस्न को दिलकशी[19] मिलेगी ॥

---

१ विस्मय २. अशक्त जान ३. और ४ सन्तुलन ५. इश्क़ और इश्क़ के दण्ड में ६. दिल के दाग़ से ७ बनावट की ८ जादू फूकने का ९ दुनिया जैसी १०. काबे की चार-दीवारी ११. मन्दिर १२. निर्माण के इच्छुक व्यक्तियो १३. विनाश १४. ध्यान से १५. कोप १६ हित १७ निहित १८ क्रुद्धता १९. मनोहरता

न नशेमन[१] है, न है शाखे-नशेमन[२] बाकी।
लुत्फ जब है कि करे अब कोई बर्बाद मुझे ।।

◇ ◇ ◇

है देखने वालो को सभलने का इशारा।
थोडी सी नकाब आज वो सरकाये हुए हैं।

◇ ◇ ◇

मेरे दिल की नैरगो[३] पूछते हो क्या मुझसे ?
तुम नही तो वीराना तुम रहो तो वस्ती है ।।

◇ ◇ ◇

किस का कुर्ब[४] कहा की दूरी अपने आप से गाफिल[५] हो।
राज़ अगर पाने का पूछो, खो जाना ही पाना है ।।

◇ ◇ ◇

ख्वाहिशे-मादूम[६] अच्छी ख्वाहिशे-नाकाम से[७]।
हैफ[८] उस पर फूल बनकर जो कली मुर्झा गई ।।

◇ ◇ ◇

ज़िन्दगी कशमकशे-इश्क के आग़ाज़[९] का नाम।
मौत अजाम इसी दर्द के अफसाने का ।।

१ घोंसला २ घोंसले वाली शाखा ३ हालत, जादूगरी ४ समीपता ५ असावधान ६ अप्राप्य इच्छा ७ असफल इच्छा से ८. अफसोस ९ इश्क की तीव्रता की शुरूआत



'मख़्मूर' जालंधरी

जंग लड़ते हैं सदाक़त की, मुसावात की, एलान करो !

ग्रामिचाय

यह १६४० ई० की बात है, उधर दूसरा महायुद्ध भयानक रूप धारण करता जा रहा था और इधर उर्दू साहित्य मे विषय और रूप सम्बन्धी नित नये प्रयोग किए जा रहे थे—जो लेखक भी सामान्य स्तर से हटकर कोई नई बात कहता था, उसकी गणना प्रथम श्रेणी के साहित्यकारो मे होने लगती थी। फ्रायड के सिद्धात, जेम्स-जॉयस और डी० एच० लॉरेंस की शैली और टी० एस० इलियट के भावो का अनुसरण जोरो पर था। काम (विषय—Sex) पर बड़ी बेबाकी से क़लम उठ रहे थे और उस समय की धारा के अनुसार उन रचनाओ पर उन्नति तथा प्रगतिशीलता का लेबल लगाया जा रहा था और 'शिष्ट पाठक' उन पर झल्ला रहे थे—यह युग उर्दू शायरी मे निर्बंध तथा अतुकान्त शायरी का युग था—उन्ही दिनो 'मख्मूर' जालधरी अपने व्यक्तिगत अनुभव तथा प्रेक्षण और अपनी विशेष शैली के साथ साहित्य-क्षेत्र मे उत्तीर्ण हुआ। वह हमारे समाज के चेहरे पर से कुछ ऐसी निर्दयता से नोच-नोच कर झिल्लियाँ उतारने लगा कि नैतिकता की रूढिगत-परम्पराओ से प्रभावित मस्तिष्क उत्तेजित हो उठे। उनकी ओर से जिन उर्दू लेखको और कवियो को खुल्लम-खुल्ला गालियाँ दी गईं, 'मख्मूर' जालधरी उनमे से एक था। वास्तव मे 'मख्मूर' जालधरी जिस वातावरण मे आया था, वह वातावरण ही ऐसा था कि अपनी नज्मो मे समय तथा समाज की किसी बुराई, किसी घिनावने पात्र को सुधारवादी दृष्टिकोण से नग्न करते हुए भी आप-ही-आप उसकी नज्मो मे ऐन्द्रीय आनन्द का अश उभर आता था।

गुरबख्शसिंह 'मख्मूर' जालंधरी १८ अक्तूबर १९१५ को लालकुर्ती बाज़ार, जालंधर छावनी में एक साधारण दुकानदार के घर पैदा हुआ। जालंधर छावनी में लालकुर्ती बाजार आलीशान दोमंज़िला बारकों की भयावह भुजाओं में घिरा हुआ है। आज उन बारकों में अंग्रेज साम्राज्य के अवमवर्गीय (Proletariate) सैनिकों की बजाय हमारे अपने अनपढ़, आधे भूखे और आधे नंगे सैनिक आबाद हैं। जिन दिनों 'मख्मूर' जालंधरी ने इस वातावरण में आँख खोली लोगों के दिलों में अपनी पराधीनता की बड़ी खटक थी। अधमवर्गीय गोरे यद्यपि साम्राज्यशाही गोरों के वैसे ही दास थे जैसे हम उनके, फिर भी साम्राज्यशाही गोरों ने अपने सैनिकों के मन-मस्तिष्क में उनके भारतवासियों के शासक होने का जो विचित्र विचार डाल रखा था, उससे वशीभूत वे जब चाहते सिक्खों की पगड़ी, मुसलमानों की टोपी और हिन्दुओं की धोती उतार लेते। गोरे पर हाथ उठाने का दण्ड मृत्यु था। लालकुर्ती बाज़ार में गिने-चुने साधारण दुकानदारों के अतिरिक्त वहाँ नक्के-सब गोरों के 'खिदमतगार' बसते थे—भंगी, धोबी, नाई, बहिश्ती, बावर्ची, बैरे, खानसामे, चौकीदार, खलासी, साईस, इत्यादि। और इस निचले वर्ग को खुशामद, जी-हुजूरी, स्थायी भय, भाग्य-विमूढ़ता, संतोष आदि प्रवृत्तियों ने नितांत पंगु बना दिया था। वे सब गोरों के फटे हुये जूते, उधड़ी हुई वर्दियाँ और घिसी हुई जर्सियाँ पहनते। शराब पीकर लड़ते-झगड़ते और पुलिस वालों का पेट भरते। घरों में चूल्हे कभी सुलगते, कभी बुझ जाते। छः महीने काम करते, छः महीने निठल्ले रहते। किसी की बेटी भाग जाती तो किसी का बेटा। 'मख्मूर' को इस वातावरण की भुखमरी और सड़ाँद ने अत्यन्त प्रभावित किया और यही वातावरण उसकी शायरी का आधार बना। उसकी कुछ नज़्मों के शीर्षक देखिये: 'महतरानी', 'भूखी जवानियाँ', 'वीरान चेहरे', 'धोबन आई'।

उसकी शायरी का श्रीगणेश और विकास किस प्रकार हुआ उसके बारे में वह स्वयं कहता है :

"मुझे मेरे बचपन के साथी 'इसी' निचले वर्ग से मिले। मेरे साथियों के बड़े-बूढ़े राग-रंग, नाच, कथा आदि के बड़े प्रेमी थे। वे अक्सर थानेदारों, गोरा पुलिस और मेम साहिब के सम्बन्ध में 'बिरहा' गढ़ते, दोहे और चौपाइयाँ गाते। उनकी देखा-देखी मैं भी 'बिरहा' कहने लगा—शेखीखोर, झूठे और शेखचिल्ली ढंग के लड़कों के बारे में। यह मनोरंजन मुझे बहुत पसंद आया, क्योंकि इस प्रकार दूसरों पर चोट करने का अवसर और आनन्द मिलता था।

नवी कक्षा मे अपने फारसी के अध्यापक प्रभुसिंह के प्रोत्साहन पर, जिन्होंने मुझे पिंगल आदि सिखाया, मैं विरहा और दोहो को छोडकर ग़ज़लें कहने लगा। अब मेरे शेरो की अनियमितता की त्रुटि तो दूर हो गई लेकिन घिसे-पिटे और परम्परागत विषयो को शेर मे बांधने की त्रुटि अभी तक मौजूद थी और इसका एक कारण यह था कि अध्यापक प्रभुसिंह ने मुझे मीर 'दर्द' आदि सूफी शायरो के 'कलाम' के अध्ययन तक ही सीमित रखा और मैं एक समय तक शब्दाडबर मे फँसा रहा, और न जाने आज भी फँसा होता यदि 'बशीर' नामक एक गुमनाम शायर से मेरी भेंट न होती '

"बशीर से मेरा परिचय बम्बई मे हुआ जहाँ कालेज से निकलने के बाद मैं इजीनियरिंग पढने के लिए भेजा गया था। मेरी ग़ज़लें सुनकर 'बशीर' ने उन पर परम्परागत होने का दोष लगाया और मुझे नज्मे लिखने को कहा। वह स्वय बडी रगीन नज्मे लिखता था और इस प्रसग मे 'अख्तर' शीरानी का रग अपनाने की कोशिश किया करता था। वह एक बोहीमियन और रोमाटिक टाइप का शायर था। बाल बढाना, उल्टा-सीधा लिबास पहनना, बातचीत मे जान-बूझ कर व्यग और उपहास का पहलू लाना, प्रात देर से सोकर उठना, महीने मे एक बार नहाना, बेतहाशा चाय पीना, साथियो के स्वभाव और कलात्मक बोध से बेनियाज़ होकर ख्वाहमख्वाह विशेषज्ञ बनने और ऊँचे स्तर की बात करने का प्रयास करना, पन्द्रह दिनो मे एक-आध सक्षिप्त-सी नज्म लिखना और यह समझ लेना कि जीवन का कोई महान कर्तव्य पूरा कर दिया है। अध्ययन नाम-मात्र करना, लेकिन शेक्सपियर और मिल्टन से लेकर अग्रेज़ी के आधुनिक कवियो एज़रा पाऊड, स्टीफ़न स्पेंडर और आडन तक की कला का मूल्याकन कर डालना। एक समय तक मैं 'बशीर' की इस प्रकृति से प्रभावित रहा और सुबह-शाम के सपर्क से मुझमे भी बोहीमियनिज़्म के कीटाणु घुस आये, लेकिन 'बशीर' के सपर्क से मुझे एक लाभ अवश्य हुआ—मैं परम्परागत, घटिया और अपभ्रश शायरी से पीछा छुडाने मे सफल हो गया और मैंने विषय और रूप के अनगिनत प्रयोगो की शुरुआत की '।"

अपने उस प्रयोग-काल मे उसने "च्यू टी के पर', 'तालाब', 'एक औरत को कपडे पहनते हुए देखकर', 'अनोखा व्योपारी' आदि नज्मे लिखी और काफी बदनामी और काफी ख्याति प्राप्त की। उनकी नज्मो मे समाज के अभावसूचक पात्रो का एक अनीमित प्रसङ्ग मिलता है। उन दिनो यो भी समाज के नामसूचक पात्रों पर उर्दू लेखको और शायरो की दृष्टि बहुत कम पडती थी

इसलिए कि उस समय के उर्दू साहित्य मे अवसन्नता, व्यक्तिवाद, द्वेषवाद उद्वेगवाद आदि प्रवृत्तियाँ प्रचलित थी। अति असाधारण पात्रो को प्रस्तुत करने वाला यथार्थवादी कहलाता था और इस प्रकार यथार्थवाद के वास्तविक अर्थो को विकृत किया जाता था ('मीराजी' इस प्रकार की शायरी के प्रतिनिधि शायर थे) 'मख्मूर' ने यद्यपि उस समय इन्ही प्रवृत्तियो का साथ दिया तथापि मूलरूप से वह सुधारवादी रहा और अपनी प्रत्येक नज़्म मे कोई न कोई नैतिक परिणाम निकालने का प्रयत्न किया। फिर उसकी निर्बंध और अतुकात नज़्मो मे 'मीराजी' आदि शायरो ऐसी कल्पना, अति-साकेतिकता और अस्पष्टता भी नही होती थी वल्कि कथा-वस्तु वार्तालाप से परिपूर्ण होने के कारण वे और भी सरल तथा सुगम हो जाती थी। उदाहरणार्थ उसकी उन ज़माने की एक नज़्म 'कुन्दन' का एक टुकडा देखिए :

> कुन्दन धीरे चलता है और तेजी से घवराता है
> नन्हे वच्चो की फुर्ती चालाकी पर झुंझलाता है
> जव कोई इस्कूल को जाती फूल-सी शोला-रू[1] लडकी
> देखता है, वोल उठता है, "ये कैसा ज़माना आया है
> रंगरूप के वेचने वाली का-सा स्वांग रचाया है
> अच्छा ईश्वर तेरी मर्जी ये भी मुसीवत सहना थी
> शुक्र है अगले वक्तो की वेटी के ऐसे ढग न थे
> लाज ही उनका जोवन थी और लाज ही उनका गहना थी"
> लेकिन दोशीज़ा के सरापा[2] मे कुन्दन खो जाता है।

१९४२ ई० मे जव 'मख्मूर' का पहला कविता-संग्रह 'जलवागाह' प्रकाशित हुआ तो उस समय के कुछ आलोचको ने उसे अश्लीलतावादी, और कुछ ने यथार्थवादी कहा। उसकी नज़्मो की पैरोडिया की गई। उनकी नज़्मों के सामूहिक प्रभाव को नज़र-अदाज करते हुए उनमे से एक-आध पक्ति लेकर उन्हें आचार-विरोधी सिद्ध किया गया। यह ठीक है कि उस समय 'मख्मूर' की कला यथार्थवाद का विगड़ा हुआ रूप लिये हुए थी लेकिन उसे समाज के मूल्यांकन मे जो निपुणता प्राप्त थी और वह जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से समाज के विभिन्न पात्रो का विश्लेषण करता था, उसने धीरे-धीरे उसे वास्तविक यथार्थवाद की ओर आकृष्ट कर दिया। इस रूप से मैं उसे 'नज़ीर' अकवरावादी

---

१. शोले जैसी २ सिर से पाँव तक का पूरा शरीर

(उर्दू का प्रथम जन-कवि) की सुन्दर परम्पराओं का उत्तराधिकारी कहूँगा क्योंकि 'नज़ीर' अकबराबादी ने भी रूढिगत कविता के विरुद्ध नये-नये प्रयोग किये थे। 'शेफ़्ता' ऐसे गभीर आलोचको ने उसे अश्लीलतावादी और बाज़ारू कवि कहा क्योंकि वह जनसाधारण की भाषा मे बडी बेबाकी से उसकी समस्यायें प्रस्तुत करता था और अपने आत्मानुभव तथा अपनी मनोवृत्ति का नि सकोच वर्णन करता था। 'नज़ीर' की नज़्म 'आधी' का एक टुकडा देखिये :

इस आधी मे अहा-हा-हा अजब हमने मज़े मारे,
फलक पर ऐशो-इशरत से दिखाई दे गये तारे,
रकीबो की है अब ख्वारी, खरावी क्या लिखूँ वारे,
तले कोठे के बैठे अट गये सब गर्द के मारे,
भरी नयनो मे उनके खाक दस-दस सेर आधी मे।

१९४२ ई० के बाद 'मख्मूर' की नज़्मो के दो और सग्रह 'तलातुम' और 'मुख्तसिर नज़्मे' प्रकाशित हुए। 'तलातुम' की नज़्मे उसकी कला-कौशलता को अवश्य प्रकट करती हैं, लेकिन सैद्धान्तिक रूप से उनमे 'मख्मूर' वही का वही दिखाई देता है। हाँ 'मुख्तसिर नज़्मे' उसके एक ठोस प्रयोग का साक्षी है, जिसकी कुछ नज़्मे तो केवल एक पक्ति की नज़्मे हैं। इन अत्यन्त सक्षिप्त नज़्मो मे उसके विचारो की गहराई और जीवन-जिज्ञासा के अश भी मिलते हैं।

१९४४ ई० मे जब 'मक्तबा उर्दू' और 'मक्तबा जदीद' (लाहौर के प्रकाशन-गृह) के लिए 'मख्मूर' ने रूसी साहित्य को उर्दू का जामा पहनाने का कार्य आरम्भ किया (अब तक वह टाल्स्टाय का उपन्यास 'वार एण्ड पीस', गोर्की का 'मदर', शोलोखोफ़ का 'एण्ड क्वायट फ्लोज़ दी डॉन' और 'वर्जन सॉयल अपटर्नड' आदि कई पुस्तको का अनुवाद कर चुका है) तो उसके अपने कथनानुसार उसे पहली बार मालूम हुआ कि जिस यथार्थवाद का वह अनुयायी था वह वास्तविक यथार्थवाद नही था, और उसने समझ लिया कि यथार्थवाद के लिए सामाजिक और राजनीतिक बोध अनिवार्य है। देश के बटवारे ने उसके इस विश्वास को और भी दृढता प्रदान की कि सामाजिक और राजनीतिक बोध के बिना कोई लेखक महान् साहित्य की रचना नही कर सकता। उसे मानव-मित्र तथा मानव-शत्रु शक्तियो का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिये।

१९४८ ई० मे 'मख्मूर' जालधर रेडियो मे नौकर हुआ। यहाँ रहकर साढे तीन वर्ष मे उसने डेढ हज़ार के लगभग पंजाबी तथा उर्दू मे फीचर और

नाटक लिखे। यद्यपि ये नाटक और फीचर सरकार की विशेष पालिसी के आधार पर लिखवाये जाते थे फिर भी प्रौढ 'मख्मूर' ने यहाँ भी अपनी कला से विश्वासघात नहीं किया। वह उन नाटको मे भी अपने इर्द-गिर्द बिखरे हुए समाज के भेद-भाव को समोता रहा, और कदाचित् इसी कारण से उसे साम्यवादी कहकर रेडियो से निकाल दिया गया।

आज 'मख्मूर' जालधरी दिल्ली के एक दैनिक पत्र 'मिलाप' मे काम करने के साथ-साथ अपनी शायरी मे समाज के विभिन्न पात्रो के चित्रण द्वारा सामाजिक क्रान्ति के आगमन की घोषणा कर रहा है।

मगरमच्छ के आंसू

(दूसरे महायुद्ध के अन्त पर)

सुनते हैं याद मुसीबत में खुदा आता है
आसरा इक यही मजबूर की तकदीर मे रह जाता है
"खोल दो, बन्द कलीसाओ के[1] दर खोल भी दो
माना मानूस[2] नही हाथ दुआओ से, दुआयें मागें।
ममलिकत[3] पर कही खुरशीद न हो जाये गुरूब
हुक्म दे दो कि सभी अपने खुदाओ से दुआये मागें।"
जी पे बन जाये तो ज़िल्लत भी उठा लेते हैं
सुनते हैं बाप गधे को भी मुसीबत मे बना लेते हैं
"नाग है अपना मुआविन[4] तो कोई बात नही
काम लेना है हमे नाग खज़ाने पे बिठालो अपने
शहद का घूंट समझ कर सम्मे-कातिल[5] पी जाओ
किसी कीमत, किसी उजरत पे उसे साथ मिलालो अपने।"
सारा धन जाता हो तो निस्फ लुटा देते हैं
सुनते हैं बच्चे जो चीखें उन्हे अफयून खिला देते हैं
"सब को बख्शेंगे मुसाइब की सलासिल[6] से निजात
जग लड़ते हैं सदाकत की, मुसावात[7] की, एलान करो
अपनी मनमानी ही आखिर मे करेंगे, अब तो
दहर को[8] वादा-ए-पुरकैफ[9] से मिन्नतकशे-अहसान[10] करो!"

---

१. गिरजाघरो के २ परिचित ३ राज्य ४ साथी ५ हलाहल ६ विपत्तियों की जंजीर ७ समानता ८. संसार को ९ सुखद वायदा १० उपकार मे प्रभावित

(२)

नाग डसता है उसे दूध पिलाओ कितना,
सूखी बेरी से कभी बेर नही झडते, हिलाओ कितना
"अहदे - आलाम"[1] भी मादूम[2], खुदा भी मादूम
कोई खदशा नही फिर से सितमो-जौर को अरजा[3] कर लो
फतह का जश्न मनाना है मगर धूम के साथ
अपने घर हुस्न से या खून की बूंदो से चिराग़ा[4] कर लो
अपने महकूमो की हस्ती भी कोई हस्ती है
ये तो वायदो पे भी जी सकते हैं इनसे नये पैमा[5] कर लो।
तीरगी[6] बढती है तूफान उमड आता है
बदलियां छा के बरसती हैं फलक[7] फिर से निखर जाता है

---

१. आपत्तियों का युग २. ग़ायब ३. नम्रता ४. दीपावली ५. प्रण
६. अंधकार ७. आकाश

अग़वा

मलीमा, चान्द की किरन
हर इक खयाल की दुल्हन
नज़र-नज़र की आरज़ू
नज़र-नज़र की जुस्तजू
शरारतो की जलवागाह, शोखियो की अजुमन
तजल्लियो की[1] शाहराह, ज़रनिगार[2] , ज़ूफिगन[3]
सलीमा, उस ज़माने का
हसी फरेब खा गई
मुहब्बत, इस समाज में
कठिन कदम उठा गई
कफस की तीलियो को तोडकर परिन्द उड गये
नज़र जो मोड सामने पड़ा उसी पे मुड़ गये
मुहब्बत, इस समाज में
कठिन कदम उठा गई
मगर कयामत आ गई

(२)

सलीमा, रगो-बू चमन
शराब जिसका बाकपन
सलीमा, जिसके पैरहन[4]
नज़रनवाज, महरफिगन[5]

---

१. प्रकाश की २ कुन्दन-मुखी ३ प्रकाश बिखेरने वाली ४. पह
५. जादू बिखेरने वाला

वड़ी दलेर थी जो अपना राज़ फाश कर गई
रिवायतों का आवगीना[1] पाश-पाश कर गई
छुपे करिश्मे, पाकवाज़
उठे हिजावे-वेसवा[2]
नदी है मै की खुल्द मे[3]
यहां शराव नारवा
हिजाव उठाके-रस्मो-राह तोड़कर चली गई
वुज़ुर्गतर निगाह मे
वड़ा गुनाह कर गई
ग़रीव वालदैन को
यूंही तवाह कर गई
जवी पे[4] कुन्वे की सियाह कश्का[5] इक लगा गई
निसाई[6] हुस्न और वकार[7] खाक मे मिला गई
वो शर्मसार कर गई
लवो पे ताने धर गई
दिलों मे ज़ख़्म सैंकड़ों
सदा-वहार भर गई
दो छोटी वहनों के लिए नुकीले कांटे वो गई
वो उम्र-भर की इज्ज़त अपने मैल मे भिगो गई
वुरी मिसाल वन गई
सलोमा ऐसो नाज़नीं
शफ़क़-जमाल[8], मह-जवी[9]

---

१. पानी का वुलवुला २. वेसवा की ३. स्वर्ग मे ४. माथे पर ५. कलंक का टीका ६. स्त्रीत्व ७ शान ८. डूवते सूरज की लालिमा ऐसी सुन्दर ९. चन्द्रमुखी

(३)

सलीमा, खुश-जमाल[1] थी
नही वो वदखसाल[2] थी
हुसूले-आरज़ू[3] की धुन मे घर से क्यो चली गई
वो दूर वालदैन की नज़र से क्यो चली गई
सलीमा, फूल वेल थी,
नही नही, चुडेल थी
हयाते-पुर-अलम[4] को खुशगवार करने क्यो गई ?
नज़र मे, दिल मे मुस्कराते फूल भरने क्यो गई ?
सलीमा, चान्द की किरन
नही-नही, वो वद-चलन
घराने मे 'हमीद' था, 'कमाल' था, 'वुलद' था
मगर वो गुडा 'आफताव' उसको क्यो पसद था ?
सलीमा, हीरे की कनी
नही-नही वो कुश्ती[5]
वजुर्गो की पसन्द, उस पे मुतमईन न क्यो हुई ?
जो उसका इन्तिखाव था वो उसके साथ क्यो गई ?
सलीमा ऐसी नाज़नी
शफक-जमाल, मह-जवी
वडा गुनाह कर गई !

---

१. सुन्दर २ वदचलन ३ कामना की प्राप्ति ४. दुखो-भरा जीवन
५. मार डालने के योग्य

चे-मे-गोइयां

अरी कुछ सुना तूने क्या हो गया ?
वहन नास-पीटा ये चूल्हा तेरा ?
कभी एक पल को न ठडा हुआ
अभी वरतनों का भरा टोकरा
तेरे सामने है पड़ा !

वहन जां लडाओ तो कुछ लुक़मे खाओ
हुआ तेज़ इतना ज़माने का ताओ
कि अब हड्डिया अपनी पीसो तो खाओ
चलो छोड़ो क़िस्मत पे क्यो सर खपाओ
कोई ताज़ा किस्सा सुनाओ !

वहन कुछ न पूछो हया उठ गई
चहेती वो नाज़ों पली लाडली
नवेली वहू लाजपत राय की
करेगी कही आज कल नौकरी
नही लोभ की हद कोई !

ऊई राम ! पूछो तो हम सच वतायें
पढ़ी और लिखी सर-वरहना[1] वलाये
न मर्दों से जिस रोज़ शाना भिड़ायें
न जव तक इन्हें देख कर मुस्करायें
वो घर अपने तव तक न आयें !

---

१. नगे सिर वाली

वहन गैर का हाथ हम पर पडे
तो लगता है यूं जैसे नश्तर गडे
यही चाहते हैं वही पर खडे
वो उतनी जगह या गले या सडे
बुरे हाथ जिस जा पडे !

वहन मर्द की शान है वो कमाये
कमाया हुआ उसका कुल कुनबा खाये
जो कुछ रूखा-सूखा सा बाहर से लाये
उसे बीवी धोये, सवारे, पकाये
सुघड और चतुर नाम पाये !

मुझे देखो ये कोई दावा नही
कभी घर में तिनका भी होता नही
अगर भूखे सोये तो परवा नही
ज़बां पर कभी शिकवा आया नही
गिला अपना शेवा नही !

वहन तुम से क्या अपनी विपता छुपाऊँ
हया रोके है वरना कुर्ता उठाऊँ
तो शलवार की खस्ता हालत बताऊँ
कई खिडकिया और रोज़न[1] दिखाऊँ
कहा और टाके लगाऊँ !

अरी नौकरी तो बहाना है बस
नई पौद सचमुच हविस है हविस
इरादे गुनहगार नीयत नजिस[2]
सदा पायें मर्दों की क़ुरबत[3] मे रस
कि घेरे रहे पाच दस !

१. झरोके २. अपवित्र ३ सामीप्य

हमे तो वहन नखरे आते नही
कभी सुर्खी पाउडर लगाते नहीं
दोपट्टे को सिर से हटाते नही
ये वालों में चिड़ियां बनाते नही
ये सीना दिखाते नही !

हमारी कनाअ़त[1] हमारा सिगार
भला कुछ भी लगता नही रगदार
वो शादी के जोड़े जो थे तीन-चार
लिया है सब उन पर से गोटा उतार
कि है सादगी ख़ुद वहार !

वहन अब तो गहना भी फवता नही
सुनो तुम से तो कोई पर्दा नही
इक आवेज़ा[2] भी घर मे रक्खा नही
किसी चोर-उचक्के का खटका नहीं
ज़रा दिल धड़कता नही !

वहन वात मेरी अधूरी रही
ये अंधेर है औरत और नौकरी
जभी तो ज़माने की ये गत बनी
न देखा न ऐसा सुना था कभी
अभी उलटी गंगा वही !

चलें देके मर्दों के हाथो मे हाथ
अगर आज इसके तो कल उसके साथ
करें भौंडे फैशन मे मेमों को मात
वस इक वच्चे के वाद पायें निजात
कि औलाद है दुख की राह !

---

१. सन्तोष २. कानो की वाली

वहन बात फिर बीच मे कट गई
नवेली बहू लाजपतराय की
महीनो सुसर से झगड़ती रही
"कि घर मे बढी जाती है भुखमरी
मुझे करने दो नौकरी!"

वहन ठीक है पेट भरता नही
महीना गुज़ारे गुज़रता नही
मगर आदमी इससे मरता नही
कोई वेहयाई तो करता नही
कुए मे उतरता नही!

वहन तेरा मुह क्यो है उतरा हुआ
लहू जैसे सारा निचोडा हुआ
तुझे वैठे-वैठे भला क्या हुआ
अरी फोडा निकली तू रिस्ता हुआ
कोई आज झगड़ा हुआ?

वहन कोई दिन ऐसा कटता नही
कि जब आसमा सर पे फटता नही
घटाया वहुत खर्च घटता नही
इसी वास्ते झगड़ा हटता नही
घिरा अब्र[1] छटता नही!

वहन भूख का गर्म वाज़ार है
फ़िरगी न अब उस का व्योपार है
सिरो पर टगी फिर भी तलवार है
यक़ीनन कोई हम में वटमार है
हमी में रियाकार[2] है!

---

१. वादल २ धोखेवाज़

वहन उस निगोड़े के गोली लगे
कही से कोई तेज़ आंधी उठे
महल उसका हो जाये ऊपर-तले
सदा के लिए उसका दीपक बुझे।
जो दिन-रात हमको छले!

अहाहा तेरे मुह मे मिसरी वहन
तेरी बात हो जल्द पूरी वहन
वने तू कई पोतों वाली वहन
जिये तू जुगों तक चहेती वहन
लगे उम्र मेरी वहन!



'अख्तर' उल-ईमान

चुनते-चुनते आंसू जग के अपने दीप बुझा डाले

[illegible]

बम्बई लोकल ट्रेन के एक बुकिंग-आफिस की खिडकी मे झाकते हुए उसने कहा "बादरा के दो फर्स्ट क्लास के टिकट।"

पाच का नोट उसके हाथ मे था और पाच ही नही, उस समय बादरा पहुँचने के लिए वह पचास रुपये तक खर्च कर सकता था, लेकिन बुकिंग-क्लर्क ने एक बार दोनो हाथो के पजे और दूसरी बार एक हाथ की चार उगलिया दिखाते हुए बडे व्यग्यात्मक स्वर मे कहा "चौदह आने होंगे मिस्टर।"

'मिस्टर' ने पाच का नोट उसकी ओर बढाते हुए मुस्कराकर अपने साथी से कहा "लो, यह भी मुझे उजड्ड और गँवार समझ रहा है।"

"इस मे इसका कोई क़ुसूर नही" उसके साथी ने मजा लेते हुए कहा, "तुम्हारी शक्ल ही ऐसी है। इस पर तुम लिबास भी ऐसा पहनते हो जिससे तुम्हारे हब्शी होने का शक होता है।"

'अख्तर' उल-ईमान की शक्ल तो खैर इतनी बुरी नही, रग जरूर बहुत काला है और लिबास भी वह कुछ ऐसा नही पहनता जिससे उसके हब्शी होने का सदेह हो, क्योकि इसी लिबास, अर्थात् खद्दर के कुर्ते, पायजामे और चप्पल के साथ दक्षिणी भारत के पार्लियामेंट के मेम्बर दिल्ली मे भारत का भाग्य बिगाड़ने-सँवारने में योग देते हैं। लेकिन इसमे उसके साथी का भी कोई क़ुसूर न था क्योकि 'अख्तर' उल-ईमान पार्लियामेंट के मेम्बर की बजाय बेचारी उर्दू भाषा का शायर-मात्र था।

इसी प्रकार की एक और घटना उसके एक और मित्र ने मुझसे बयान की। उसने बताया कि एक बार वह, 'अख्तर' उल-ईमान और उसकी पत्नी के साथ कोई फिल्म देखने गया। 'अख्तर' टिकट लेने गया और वह और अख्तर की पत्नी गेट-कीपर से इस बारे मे कहकर सिनेमा-हाल मे चले गये। उनके भीतर जाने पर गेट-कीपर को याद आया कि साहब के हाथ मे सिग्रेट है और सिनेमाहाल मे 'धूम्रपान निषिद्ध' था। अतएव जब 'अख्तर' टिकट लेकर उसके पास पहुँचा तो गेट-कीपर ने उसे डपटकर कहा "हे! देखो, तुम्हारा साहब और मेम साहब अन्दर चला गया है। साहब सिग्रेट पी रहा है। उससे कहना सिग्रेट बुझा दे।"

ये तो खैर इन दिनो की घटनायें हैं जब वह जीवन की छत्तीस 'वसन्त ऋतुएं' देख चुका है और काफी पैसा कमाता है। अपने बाल्यकाल मे तो न जाने उसे क्या कुछ देखना और सहन करना पडा था। उसका जन्म तो (१२ नवम्बर १९१५ के दिन) ज़िला बिजनौर के एक खाते-पीते घराने मे हुआ लेकिन पालन-पोषण दिल्ली के एक अनाथालय मे। ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता उनकी शिक्षा-दीक्षा की ओर कोई ध्यान न दें, बालिग़ होकर प्रायः समाज के माथे का कलक बन जाते हैं—चोर, ज्वारी, डाकू, कातिल! लेकिन इस अधकारमय पहलू के बावजूद इस चित्र का एक उज्ज्वल पहलू भी है। हीनता तथा अभाव और विपत्तियो के आक्रमण ने उसे बिगाडने की बजाय संवार कर उर्दू का एक उल्लेखनीय शायर बना दिया।

ऐंगलो-ऐरेबिक कालेज दिल्ली से, जहा उसकी फीस माफ थी, उसने बी० ए० पास किया। एम० ए० करने के लिए अलीगढ विश्वविद्यालय और मेरठ कालेज की खाक छानी, लेकिन केवल खाक ही छानी। यह १९४४ ई० की बात है जब डब्ल्यू० ज़ैड० अहमद की शालीमार पिक्चर्ज (पूना) मे वह 'जोश' मलीहाबादी, 'सागर' निज़ामी' कृष्णचन्द्र, भरत व्यास आदि साहित्य-कारों के दल मे जा सम्मिलित हुआ और फ़िल्मों के लिए कहानियां और संवाद लिखने लगा। शालीमार पिक्चर्ज के टूटने पर बम्बई चला आया और अब तक वहीं है। इस प्रसग मे यह बात अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि साहित्य-जगत् मे तो वह शायर के रूप मे प्रसिद्ध है लेकिन फिल्म-जगत् में प्रोड्यूसर उसे शायर की बजाय सवाद-लेखक समझते हैं और यह कि उसने आज तक कोई फिल्मी गीत नहीं लिखा।

'अख्तर' उल-ईमान उर्दू शायरो के उस दल से सम्बन्ध रखता है जो प्रयोग तथा

भारीघथ

वम्बई लोकल ट्रेन के एक बुकिंग-आफिस की खिडकी में झाकते हुए उसने कहा "बादरा के दो फर्स्ट क्लास के टिकट ।"

पाच का नोट उसके हाथ मे था और पाच ही नही, उस समय बादरा पहुँचने के लिए वह पचास रुपये तक खर्च कर सकता था, लेकिन बुकिंग-क्लर्क ने एक बार दोनो हाथो के पजे और दूसरी बार एक हाथ की चार उगलिया दिखाते हुए बडे व्यग्यात्मक स्वर मे कहा "चौदह आने होंगे मिस्टर ।"

'मिस्टर' ने पाच का नोट उसकी ओर बढाते हुए मुस्कराकर अपने साथी से कहा "लो, यह भी मुझे उजड्ड और गँवार समझ रहा है ।"

"इस मे इसका कोई कुसूर नहीं" उसके साथी ने मजा लेते हुए कहा, "तुम्हारी शक्ल ही ऐसी है । इस पर तुम लिवास भी ऐसा पहनते हो जिससे तुम्हारे हब्शी होने का शक होता है ।"

'अख्तर' उल-ईमान की शक्ल तो खैर इतनी बुरी नही, रग जरूर बहुत काला है और लिवास भी वह कुछ ऐसा नही पहनता जिससे उसके हब्शी होने का सदेह हो, क्योकि इसी लिवास, अर्थात् खद्दर के कुर्ते, पायजामे और चप्पल के साथ दक्षिणी भारत के पार्लियामेंट के मेम्बर दिल्ली मे भारत का भाग्य बिगाड़ने-सँवारने मे योग देते हैं । लेकिन इसमे उसके साथी का भी कोई कुसूर न था क्योकि 'अख्तर' उल-ईमान पार्लियामेंट के मेम्बर की बजाय बेचारी उर्दू भाषा का शायर-मात्र था ।

इसी प्रकार की एक और घटना उसके एक और मित्र ने मुझसे बयान की। उसने बताया कि एक बार वह, 'अख्तर' उल-ईमान और उसकी पत्नी के साथ कोई फिल्म देखने गया। 'अख्तर' टिकट लेने गया और वह और अख्तर की पत्नी गेट-कीपर से इस बारे मे कहकर सिनेमा-हाल मे चले गये। उनके भीतर जाने पर गेट-कीपर को याद आया कि साहब के हाथ मे सिग्रेट है और सिनेमाहाल मे 'धूम्रपान निषिद्ध' था। अतएव जब 'अख्तर' टिकट लेकर उसके पास पहुँचा तो गेट-कीपर ने उसे डपटकर कहा "हे! देखो, तुम्हारा साहब और मेम साहब अन्दर चला गया है। साहब सिग्रेट पी रहा है। उससे कहना सिग्रेट बुझा दे।"

ये तो खैर इन दिनो की घटनायें हैं जब वह जीवन की छत्तीस 'वसन्त ऋतुए' देख चुका है और काफी पैसा कमाता है। अपने बाल्यकाल मे तो न जाने उसे क्या कुछ देखना और सहन करना पडा था। उसका जन्म तो (१२ नवम्बर १९१५ के दिन) जिला बिजनौर के एक खाते-पीते घराने मे हुआ लेकिन पालन-पोषण दिल्ली के एक अनाथालय मे। ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता उनकी शिक्षा-दीक्षा की ओर कोई ध्यान न दे, बालिग होकर प्रायः समाज के माथे का कलक बन जाते हैं—चोर, ज्वारी, डाकू, कातिल! लेकिन इस अधकारमय पहलू के बावजूद इस चित्र का एक उज्ज्वल पहलू भी है। हीनता तथा अभाव और विपत्तियो के आक्रमण ने उसे बिगाडने की बजाय सवार कर उर्दू का एक उल्लेखनीय शायर बना दिया।

ऐंगलो-ऐरेबिक कालेज दिल्ली से, जहा उसकी फीस माफ़ थी, उसने बी० ए० पास किया। एम० ए० करने के लिए अलीगढ विश्वविद्यालय और मेरठ कालेज की खाक छानी, लेकिन केवल खाक ही छानी। यह १९४४ ई० की बात है जब डब्ल्यू० जेड० अहमद की शालीमार पिक्चर्ज़ (पूना) मे वह 'जोश' मलीहाबादी, 'साग़र' निज़ामी' कृष्णचन्द्र, भरत व्यास आदि साहित्य-कारो के दल मे जा सम्मिलित हुआ और फिल्मो के लिए कहानिया और सवाद लिखने लगा। शालीमार पिक्चर्ज के टूटने पर बम्बई चला आया और अब तक वहीं है। इस प्रसग मे यह बात अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि साहित्य-जगत् मे तो वह शायर के रूप मे प्रसिद्ध है लेकिन फिल्म-जगत् मे प्रोड्यूसर उसे शायर की बजाय संवाद-लेखक समझते हैं और यह कि उसने आज तक कोई फ़िल्मी गीत नहीं लिखा।

'अख्तर' उल-ईमान उर्दू शायरो के उस दल से सम्बन्ध रखता है जो प्रयोग तथा

व्यजना-वाद के अनुयायी हैं और उस चीज़ को जिसे 'प्रत्यक्ष कविता' (Direct Poatry) कहा जाता है, पसद नही करते। शुरू मे वह फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' और मुईन अहसन 'जज्बी' की शायरी से बहुत प्रभावित था और प्रतीकवादी और व्यक्तिवादी शायर 'मीराजी' को तो शायद वह अपना गुरु मानता था। लेकिन धीरे-धीरे उसकी शायरी अपना अलग रग-रूप धारण करती गई और आज उसके समकालीन शायरो में उसकी भावाभिव्यक्ति सबसे अलग है। एक अत्यन्त घायल आवाज़, थकी-थकी शैली जो शायद उसके कटु अतीत की सूचक है, उसकी शायरी की विशेषता है। उसकी नज्मे बडी सँभली-सँभली और मन्द गति से चलती हैं। पाठक को साथ लेते हुए, रास्ते के काटे-ककरो से बचाते हुए अन्त मे वे उसे उस मज़िल पर ले जाती हैं, जहा पहुँचकर किसी प्रकार की थकान की बजाय पाठक स्वय को हल्का-फुल्का महसूस करने लगता है—मानो एक भारी बोझ था, जा उसके कधो से उतर गया हो। ज़रा उसकी एक नज्म 'अदोखता' (सचित) देखिये :

कोहरा, नीला वसीतो-बुलद[१] आसमा
इतना खामोश, ठहरा हुआ, पुरसुकू[२],
इस तरह देखता है मुझे जैसे मैं,
अपने गल्ले से बिछडी हुई भेड हूँ,
तुम कहा हो मेरी रूह की रोशनी,
तुम तो कहती थी ये दर्द पाइदा[३] है,
तुम कहा हो, मेरे रास्तो के दिये,
बुझ गये फिर भी हर चीज़ ताबिदा[४] है,
मैं मिलों-कारखानों के बोझल धुए,
क़हबाखानो[५] का मग़मूम[६] ताबिदगी,
काहनों[७] की मुहब्बत का फ़ुज़ला[८] जिसे,
रब्बे-मौजूदो-मादूम[९] ने बख्श दी,
दायमी[१०] जिदगी, मैं तुम्हारे लिए,

---

१ विशाल तया उच्च २ शात ३ स्थायी ४. प्रकाशमान
५ वेश्याघरों ६ उदास ७ यहूदियो की-सी शक्ल के सेवक (जादूगर)
८. फोक ९. भगवान जो है और अदृश्य है १०. स्थायी

अहदे-क़ारून[1] की गीर[2] और दार[3] से,
अपनी ज़ख्मी मुहब्बत बचा लाया हूँ।

यह तथा 'अख्तर' की ऐसी ही कई और नज़्मे व्याख्या की नही, महसूस करने की माग करती हैं। लेकिन कभी-कभी जान-बूझकर महसूस कराने के उद्देश्य से लिखी गई उसकी नज्मे काफी भ्रमोत्पादक भी हो जाती हैं। और यदि उन पर कोई शीर्षक न हो तो यह समझना कठिन हो जाता है कि शायर ने प्रेमिका की मृत्यु पर नज्म लिखी है या वह बगाल के अकाल से सम्बन्धित है। इस प्रसग मे वह अभी तक 'मीराजी-स्कूल' से पूरी तरह अपना दामन नही छुडा सका जिसकी नज्मो की विशेषता यह होती थी कि उनके रचयिता से पूछे बिना उन्हे समझ लेना दूध की नदी खोद निकालने के तुल्य होता था।

अब तक 'अख्तर' उल-ईमान के तीन कविता-सग्रह 'गिरदाब' 'सब-रंग' और 'तारीक सय्यारा' प्रकाशित हो चुके हैं।

---

१. क़ारून का युग (क़ारून हज़रत मूसा के चचा के बेटे का नाम है जो बहुत बड़ा धनवान लेकिन कंजूस था) २, ३. पकड़-धकड़

व्यजना-वाद के अनुयायी हैं और उस चीज़ को जिसे 'प्रत्यक्ष कविता' (Direct Poatry) कहा जाता है, पसद नही करते । शुरू मे वह फैज़ अहमद 'फैज़' और मुईन अहसन 'जज्बी' की शायरी से बहुत प्रभावित था और प्रतीकवादी और व्यक्तिवादी शायर 'मीराजी' को तो शायद वह अपना गुरु मानता था । लेकिन धीरे-धीरे उसकी शायरी अपना अलग रग-रूप धारण करती गई और आज उसके समकालीन शायरो मे उसकी भावाभिव्यक्ति सबसे अलग है । एक अत्यन्त घायल आवाज़, थकी-थकी शैली जो शायद उसके कटु अतीत की सूचक है, उसकी शायरी की विशेपता है । उसकी नज्मे बडी सँभली-सँभली और मन्द गति से चलती हैं । पाठक को साथ लेते हुए, रास्ते के काटे-ककरो से बचाते हुए अन्त मे वे उसे उस मजिल पर ले जाती हैं, जहा पहुँचकर किसी प्रकार की थकान की बजाय पाठक स्वय को हल्का फुल्का महसूस करने लगता है— मानो एक भारी बोझ था, जा उसके कधो से उतर गया हो । ज़रा उसकी एक नज्म 'अदोखता' (सचित) देखिये .

कोहरा, नीला वसीतो-बुलद[1] आसमा
इतना खामोश, ठहरा हुआ, पुरसुकू[2],
इस तरह देखता है मुझे जैसे मैं,
अपने गल्ले से बिछडी हुई भेड हूँ,
तुम कहा हो मेरी रूह की रोशनी,
तुम तो कहती थी ये दर्द पाइदा[3] है,
तुम कहा हो, मेरे रास्तो के दिये,
बुझ गये फिर भी हर चीज ताबिंदा[4] है,
मैं मिलो-कारखानो के बोझल धुए,
कहवाखानों[5] का मग़मूम[6] ताबिंदगी,
काहनों[7] की मुहब्बत का फ़ुज़ला[8] जिसे,
रब्बे-मौजूदो-मादूम[9] ने बख्श दी,
दायमी[10] जिंदगी, मैं तुम्हारे लिए,

---

१ विशाल तथा उच्च २ शांत ३ स्थायी ४. प्रकाशमान ५ वेदयाघरों ६ उदास ७ यहूदियो की-सी शक्ल के सेवक (जादूगर) ८. फोक ९. भगवान जो है और अदृश्य है १०. स्थायी

अह्दे-कारून[1] की गीर[2] और दार[3] से,
अपनी जख्मी मुहब्बत बचा लाया हूँ।

यह तथा 'अख्तर' की ऐसी ही कई और नज्मे व्याख्या की नही, महसूस करने की माग करती है। लेकिन कभी-कभी जान-बूझकर महसूस कराने के उद्देश्य से लिखी गई उसकी नज्मे काफी भ्रमोत्पादक भी हो जाती हैं। और यदि उन पर कोई शीर्षक न हो तो यह समझना कठिन हो जाता है कि शायर ने प्रेमिका की मृत्यु पर नज्म लिखी है या वह बगाल के अकाल से सम्बन्धित है। इस प्रसग मे वह अभी तक 'मीराजी-स्कूल' से पूरी तरह अपना दामन नही छुडा सका जिसकी नज्मो की विशेषता यह होती थी कि उनके रचयिता से पूछे बिना उन्हें समझ लेना दूध की नदी खोद निकालने के तुल्य होता था।

अब तक 'अख्तर' उल-ईमान के तीन कविता-सग्रह 'गिरदाब' 'सब-रग' और 'तारीक सय्यारा' प्रकाशित हो चुके हैं।

---

१. क़ारून का युग (कारून हज़रत मूसा के चचा के बेटे का नाम है जो बहुत बड़ा धनवान लेकिन कंजूस था) २, ३. पकड़-धकड़

व्यजना-वाद के अनुयायी हैं और उस चीज को जिसे 'प्रत्यक्ष कविता' (Direct Poatry) कहा जाता है, पसद नही करते। शुरू मे वह फैज अहमद 'फैज' और मुईन अहसन 'जज्बी' की शायरी से बहुत प्रभावित था और प्रतीकवादी और व्यक्तिवादी शायर 'मीराजी' को तो शायद वह अपना गुरु मानता था। लेकिन धीरे-धीरे उसकी शायरी अपना अलग रग-रूप धारण करती गई और आज उसके समकालीन शायरो मे उसकी भावाभिव्यक्ति सबसे अलग है। एक अत्यन्त घायल आवाज, थकी-थकी शैली जो शायद उसके कटु अतीत की सूचक है, उसकी शायरी की विशेषता है। उसकी नज्मे बडी सँभली-सँभली और मन्द गति से चलती हैं। पाठक को साथ लेते हुए, रास्ते के कटे-ककरो से बचाते हुए अन्त मे वे उसे उस मजिल पर ले जाती हैं, जहा पहुँचकर किसी प्रकार की थकान की बजाय पाठक स्वय को हल्का-फुल्का महसूस करने लगता है— मानो एक भारी बोझ था, जा उसके कधो से उतर गया हो। जरा उसकी एक नज्म 'अदोखता' (सचित) देखिये

कोहरा, नीला वसीतो-बुलद[१] आसमा
इतना खामोश, ठहरा हुआ, पुरसुकू[२],
इस तरह देखता है मुझे जैसे मैं,
अपने गल्ले से बिछडी हुई भेड हूँ,
तुम कहा हो मेरी रूह की रोशनी,
तुम तो कहती थी ये दर्द पाइदा[३] है,
तुम कहा हो, मेरे रास्तो के दिये,
बुझ गये फिर भी हर चीज ताबिदा[४] है,
मैं मिलो-कारखानो के बोझल धुए,
कहबाखानो[५] का मग्रमूम[६] ताबिदगी,
काहनों[७] की मुहब्बत का फ़ुजला[८] जिसे,
रब्बे-मौजूदो-मादूम[९] ने बख्श दी,
दायमी[१०] जिंदगी, मैं तुम्हारे लिए,

---

१ विशाल तथा उच्च २ शात ३ स्थायी ४. प्रकाशमान ५ वेश्याघरों ६ उदास ७ यहूदियो की-सी शक्ल के सेवक (जादूगर) ८ फोक ९. भगवान जो है और अदृश्य है १० स्थायी

अहदे-क़ारून[1] की गीर[2] और दार[3] से,
अपनी ज़ख्मी मुहब्बत बचा लाया हूँ।

यह तथा 'अख्तर' की ऐसी ही कई और नज्मे व्याख्या की नही, महसूस करने की मांग करती हैं। लेकिन कभी-कभी जान-बूझकर महसूस कराने के उद्देश्य से लिखी गई उसकी नज्मे काफी भ्रमोत्पादक भी हो जाती हैं। और यदि उन पर कोई शीर्षक न हो तो यह समझना कठिन हो जाता है कि शायर ने प्रेमिका की मृत्यु पर नज्म लिखी है या वह बंगाल के अकाल से सम्बन्धित है। इस प्रसग मे वह अभी तक 'मीराजी-स्कूल' से पूरी तरह अपना दामन नही छुडा सका जिसकी नज्मो की विशेषता यह होती थी कि उनके रचयिता से पूछे बिना उन्हें समझ लेना दूध की नदी खोद निकालने के तुल्य होता था।

अब तक 'अख्तर' उल-ईमान के तीन कविता-संग्रह 'गिरदाब' 'सब-रंग' और 'तारीक सय्यारा' प्रकाशित हो चुके हैं।

---

१. क़ारून का युग (क़ारून हज़रत मूसा के चचा के बेटे का नाम है जो बहुत बड़ा धनवान लेकिन कंजूस था) २, ३. पकड़-धकड़

अजनबी

तू है कच्ची कोपल अब तक जिसके लोच मे प्यार
और मैं गर्मी-सर्दी चक्खे डाली पर एक तनहा[1] पात
तू सुच्चा मोती मैं हीरा फिरा जो वर्सो हाथो-हाथ
तू ऊषा की पहली किरन है और मैं जैसे भीगी रात
तू तारो के नूर की धारा मैं गहरा नीला आकाश
मै हू जैसे टूटता नश्शा तू है जैसे शाखे-नबात[2]
तू है एक ऐसी शहनाई जिसकी धुन पर नाचे मौत
तेरी दुनिया जीत ही जीत है, मेरी दुनिया ? छोड़ ये बात

तू है एक पहेली जिसको जो बूझे सो जान से जाये
तू है ऐसी मिट्टी, जिससे लाखो फूल चढें परवान
आ मैं तेरा अग भी छू दू छोड ये भेद और भाव की बात
मैंने वो सरहद[3] छू ली है जहा अमर हो जायें प्राण
ऐ आखो में खुबने वाली जाने ! कौन कहा रह जाये
जीवन की इस दौड मे पगली, हम दोनो हैं आज अनजान
लेकिन ऐ सपनो की दुनिया तू चाहे तो रोग मिटें
मैंने दुनिया देखी है तू मेरी बातें झूठ न जान
जीवन की इस दौड़ मे नादा याद अगर कुछ रहता है
दो आसू, एक दबी हँसी, दो रूहो की पहली पहचान

---

१ अकेला २ मीठे फलो के वृक्ष की शाखा ३ सीमा

जब और अब

कहां तो ये था कि मेरी चाहत मे गुदगुदी सी थी लोरियो की,
नई - नई कोपलो की सुर्खी नये शुगूफो की[1] ताजगी थी
कहां तो ये था कि मेरी चाहत थी गीत उठती जवानियो का,
कहां ये दिन है कि तेरी आवाज़ बन गई है सदा - ए - सहरा[2] ,
न जाने किस गोशा - ए - ज़मी से[3] रुकी-रुकी सी थमी-थमी सी,
घुटी-घुटी सी हज़ार पर्दों से आज छन-छन के आ रही है।

अहदे-वफ़ा

यही शाख[4] तुम जिसके नीचे किसी के लिए चश्मे-नम हो,[5] यहां अब से कुछ साल पहले,
मुझे एक छोटी सी बच्ची मिली थी, जिसे मैंने आग़ोश[6] मे ले के पूछा था बेटी !
यहां क्यो खड़ी रो रही हो ? मुझे अपने बोसीदा[7] आंचल में फूलो के गहने दिखाकर,
वो कहने लगी मेरा साथी, उधर, उसने उंगली उठाकर बताया उधर, उस तरफ ही
(जिधर ऊँचे महलो के गुंबद, मिलो की सियाह चिमनियां आसमां की तरफ सिर उठाये खड़ी हैं)
ये कहकर गया है कि मैं सोने-चांदी के गहने तेरे वास्ते लेने जाता हूँ 'रावी' !

---

१ अधखिली कलियो की २. मरुस्थल की आवाज़ (जिसे सुनने वाला कोई नहीं होता) ३. धरती के कोने से ४. शाखा ५. आंखों को सजल लिये हुए हो ६. गोद ७. फटे-पुराने

आख़िरे-शब[1]

ढली रात तारे झपकने लगे आख, शबनम के नासुफ़ता[2] मोती,
सरे-शाख़े-गुल[3] अपने अजाम से काप उठे, ख़्वाब पूरे-अधूरे,
उडे जैसे ऊदे, रुपहले, सुनहरे, सियाह, मलगुजे, भूरे, बादल,
तहे-आसमा[4] रूई के नरम गालो की मानिंद हर सिम्त[5] उडते—
फिरे, और नद्दाफ की ज़र्ब[6] को भूल कर पल गुज़रते-गुज़रते,
सरे-बालिशे-ख़ाक[7] सब ज़िद्दी बच्चो की मानिंद रोते मचलते,
चढी नीद से चूर होकर वही सो रहे, याद की सब्ज़ परियां,
घने जगलो, लालाज़ारो[8], पहाडो, भरी वादियो से गुज़रती,
कही क़ाफ़े-माज़ी[9] के नमनाक[10] गारो मे रूपोश होने लगी हैं।

मुबारक हो मैंने सुना है तुम फूल सी जान की मा बनी हो,
मुबारक ! सुना है तुम्हारा हर इक ज़ख़्म मुंदमिल हो गया है[11]।

१ रात्रि का अन्त २ अनबिंधा मोती ३ फूल की शाखा कि सिरे पर ४ आकाश के नीचे ५ ओर ६ धुनिये की चोट ७ धूल-मिट्टी के सिरहाने ८ फुलवाड़ियो ९ अतीत का क़ाफ़ (परियो के रहने का कल्पित स्थान) १० सजल ११ अच्छा हो गया है

तब्दीली

इस भरे शहर मे कोई ऐसा नही,
जो मुझ राह चलते को पहचान ले,
और आवाज़ दे "ओ बे, ओ सर-फिरे",
दोनों इक दूसरे से लिपट कर वहीं,
गिर्दो-पेश[1] और माहौल[2] को भूलकर,
गालियां दें, हंसें, हाथापाई करें,
पास के पेड़ की छांव मे बैठकर,
घटों इक दूसरे की सुनें और कहें,
और इस नेक रूहों के बाज़ार में,
मेरी ये क़ीमती बेबहा[3] ज़िन्दगी,
एक दिन के लिए अपना रुख मोड़ ले ।

० ० ०

---

१. आस-पास २. वातावरण ३. बहुमूल्य

अनजान

तुम हो किस वन की फुलवारी अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझ से मेरा भेद न पूछो मैं क्या जानू मैं हू कौन ?
चलता फिरता आ पहुँचा हूँ राही हूँ मतवाला हू,
इन रगो का जिनसे तुमने अपना रूप सजाया है,
इन रगो का जिनसे तुमने अपना खेल रचाया है,
इन गीतों का जिनकी धुन पर नाच रहे हैं मेरे प्राण,
इन लहरो का जिनकी रौ मे डूब गया है मेरा मान,
मेरा रोग मिटाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझसे मेरा भेद न पूछो मै क्या जानू मैं हू कौन ?
मै हू ऐसा राही जिसने देस देस की आहो को,
ले लेकर परवान चढाया और रसीले गीत बुने,
चुनते-चुनते आसू जग के अपने दीप बुझा डाले,
मै हूँ वो दीवाना जिसने फूल लुटाये खार[1] चुने,
मेरे गीतो और फूलो का रस भी सूख गया था आज,
मेरे दीप अधेरा बनकर रोक रहे थे मेरे काज,
मेरी जोत जगाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझसे मेरा भेद न पूछो मै क्या जानू मै हूँ कौन ?
एक घडी एक पल भी सुख का वक्त है इस राही को,
जीवन जिसका बीत गया हो काटो पर चलते चलते,
सब कुछ पाया प्यार की ठडी छाव जो पाई दुनिया में,
उसने जिसकी बीत गई हो बरसो से जलते-जलते,
मेरा दर्द बटाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझ से मेरा भेद न पूछो, मै क्या जानू मैं हू कौन ?

---

१. काँटे



'सलाम' मछलीशहरी

शायद कि इन्किलाबे-ज़माना के साथ-साथ
मेरी तबाहियों में तुम्हारा भी हाथ है

परिशिष्ट

"अगर कोई वैरंग लिफाफ़ा आये तो समझ लीजिये, वह सलाम का है" (—मुमताज़ शीरी)

"जो लड़की उसे खूबसूरत नज़र आती है वह फौरन उस पर एक नज़्म लिख डालता है।" (—कुर्रतुल-ऐन हैदर)

"आप से मिलिये, आप सलाम हैं और आपकी शायरी वालैकुम-अस्सलाम।" (—फ़ुर्क़त काकोरवी)

"तुम घबराओ नही 'सलाम'! दुनिया उस वक्त तुम्हारी शायरी की कदर करेगी जब उसका तर्जुमा अंग्रेजी मे और अंग्रेजी से फ्रेंच मे होगा और फिर फ्रेंच से मैं उसे उर्दू मे तर्जुमा करूंगा" (—'मजाज़' लखनवी)

'सलाम' मछलीशहरी के व्यक्तित्व और उसकी शायरी के बारे मे दर्जनो लतीफे मशहूर है और चूंकि पिछले पन्द्रह-सोलह वर्ष से उर्दू का कोई अच्छा-बुरा पत्र ऐसा प्रकाशित नही हुआ जिसमे सलाम की कोई नज़्म, गज़ल, कहानी, ड्रामा, लेख या सम्पादक के नाम लम्बा-चौडा पत्र न छपा हो, इसलिए मेरा ख्याल है कि लोग-बाग उसकी रचनाओ पर विशेष ध्यान नही देते और सच बात तो यह है कि इन लेख के लिखने तक स्वयं मैंने भी उसकी बहुत कम चीजें पढ़ी थीं। इस पर उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे विभिन्न मित्रो से जो कुछ मैंने सुना था वह भी कुछ अधिक 'सन्तोषजनक' नही था, अतएव मेरे मन मे कभी 'सलाम' से मुलाकात करने की इच्छा उत्पन्न नही हुई—न तो व्यक्तिगत रूप से और न ही शायर की हैसियत से।

लेकिन किसी के चाहने न चाहने से क्या होता है, 'सलाम' से मेरी मुलाकात हुई और जैसा कि कहा जाता है 'खूब' हुई। और फिर लखनऊ रेडियो से तब्दील होकर जब वह दिल्ली रेडियो मे आ गया और कुछ दिनो तक विन बुलाये मेहमान की तरह मेरे ही यहाँ रहा तो आप अनुमान लगा सकते हैं कि मेरी हालत क्या हुई होगी ? मेरे मित्र मुझ पर तरस खाते कि मुझ पर भगवान् का कोप 'सलाम' मछलीशहरी के रूप मे प्रकट हुआ है जो न तो अच्छी बातें करता है, न अच्छे कपड़े पहनता है। इस पर जब वह अपने आत्म-विश्वास और स्वाभिमान की बातें करता है तो और भी उपहासजनक हो जाता है । लेकिन मित्रो की बार-बार हिदायतो के बावजूद कि वह अपने शत्रु अधिक बनाता है और मित्र कम बल्कि नही के बराबर, और चू कि उसकी मित्रता या शत्रुता का सम्बन्ध सीधा उसके स्वार्थ से होता है, इसलिए मुझे उस समय के लिए तैयार रहना चाहिए जब मेरा नाम भी उसके शत्रुओं की सूची मे लिखा जाएगा। मै अभी तक उससे घृणा नही कर सका हूँ और मेरा खयाल है कि घृणा उससे उसका कोई शत्रु भी नही करता। घृणा का नहीं, वह दया का पात्र है।

उर्दू शायरी का यह दयनीय शायर मछली शहर, ज़िला जौनपुर के एक निर्धन और अशिक्षित घराने में पहली जुलाई १६२१ को पैदा हुआ। प्रत्यक्ष है कि उच्च शिक्षा के लिए धन की आवश्यकता थी और घर मे धन नहीं था। अत. वह उर्दू मे मिडिल और अग्रेज़ी मे दसवी श्रेणी से आगे न बढ सका और अपनी छोटी-सी आयु मे ही अपना और अपने कुटुम्ब का पेट पालने के लिए उसे तरह-तरह के पापड बेलने पडे। एक-एक पैसे को वह दाँतों मे पकड़ता रहा (और अब तो उसके दाँत और भी मजबूत हो गये हैं) और चू कि वर्तमान जीवन-व्यवस्था मे पैसे का महत्व बहुत ही अधिक है, पैसे का होना सब कुछ है और पैसे का न होना उदार से उदार मनुष्य को अधम बना देता है, इसलिए दीन-दरिद्र 'सलाम' के मस्तिष्क मे कई प्रकार की मनोवैज्ञानिक गाठें पड़ती गई। भरी महफ़िलो मे उन पर तरह-तरह के वाक्य कसे जाते हैं। हर समय पिता या पत्नी को रुपया भेजने, मालिक-मकान का किराया चुकाने या जिस होटल मे वह खाना खाता है, वहाँ चालीस के बजाये हर महीने उससे पैंतालीस रुपये ठगे जाने की बातें सुन-सुनकर मित्र-मुलाकाती उसे ऐसी नज़रो से देखने लगते हैं जैसे कहना चाहते हो—"तुम स्वय ही बताओ 'सलाम' ! तुम्हें शायर समझा जाये या कजमैनिया ?" तो या तो उनके

मस्तिष्क मे एक और गाँठ पड जाती है या फिर वह उन लोगो पर बेतरह बरस पडता है। ऐसे समय मे उसकी हालत और भी दयनीय हो जाती है क्योकि अपने हीनता-भाव पर वह यह कहकर पर्दा डालने का निष्फल प्रयास करने लगता है कि नई पीढी के लगभग सभी शायर उसके शिष्य या उससे प्रभावित हैं।

लेकिन इन सब बातो के अतिरिक्त मेरे विचार मे 'सलाम' की सबसे बडी ट्रैजिडी यह है कि उसे बहुत छोटी आयु मे ख्याति प्राप्ति हो गई। एक शायर की हैसियत से उसने उस समय आख खोली जब उर्दू शायरी मे रूप-सबन्धी नित नये प्रयोग किये जा रहे थे। नये ढग मे कही हुई प्रत्येक बात बेहद सराही जाती और कथा-वस्तु मे चाहे कितना ही नैराश्य या अवसन्नता होती, रूप का नयापन उसे प्रथम श्रेणी की शायरी की पदवी दिला देता। उस काल मे जिन उर्दू शायरो ने रूप सम्बन्धी असाधारण प्रयोग किये उनमे नून० मीम० 'राशिद' और 'मीराजी' का नाम सबसे पहले आता है और 'मीराजी' की शायरी तो एक बाक़ायदा स्कूल का दर्जा रखती है जिसकी विशेषता है प्रतीक-वाद तथा कामुकता।

'सलाम' मछलीशहरी इन दोनो शायरो का समकालीन है और उसने भी बहुत-से नये और सफल प्रयोग किये हैं। लेकिन जो चीज़ उसे 'मीराजी' से अलग करती है वह है विविध विषयो को पकड मे लाना और जहाँ तक सभव हो प्रतीकवाद से पहलू बचाना। और जो चीज़ उसे 'राशिद' से अलग करती है वह है पक्तियो की तराश-खराश करने की बजाय बडी तीव्रगति से उनका आप ही आप ढलते चले जाना।

यहाँ उस काल के रूप-सम्बन्धी प्रयोगो के गुणो-अवगुणो पर विस्तार से कुछ कहने की गुंजायश नही है, लेकिन इस वास्तविकता से किसी प्रकार इन्कार नही किया जा सकता कि इन प्रयोगवादी शायरो ने आधुनिक उर्दू शायरी के विकास मे काफ़ी बडा योग दिया है।

'सलाम' मछलीशहरी आज भी उसी तीव्रगति से साहित्य-रचना कर रहा है और उसकी इधर की कुछ चीज़ें काफ़ी पसन्द भी की गई हैं, लेकिन मेरे विचार मे यदि वह जीवित है और रहेगा तो अपनी उन्ही प्रयोग-काल की नज़्मों से।

ड्रॉइंग-रूम

ये सीनरी, ये ताजमहल, ये कृष्ण है और ये राधा है,
ये कौच है, ये पाईप है मेरा, ये नावल है, ये रिसाला है,
ये रेडियो है, ये कुमक़ुमे[1] है, ये मेज़ है, ये गुलदस्ता है,
ये गांधी है, टैगोर है ये, ये शाहनशाह, ये मलिका है।

हर चीज़ की बाबत पूछती है जाने कितनी मासूम है ये,
हां इस पर रात को सोने से मीठी-मीठी नींद आती है,
हां इसके दबाने से बिजली की रोशनी गुल हो जाती है,
समझी कि नही, ये कमरा है, हां मेरा ड्रॉइंग-रूम है ये।

इतनी जल्दी, मज़दूर औरत! आखिर ये गले में बाहें क्यो ?
ले देर हुई अब भाग भी जा, बस इतनी मुहब्बत काफ़ी है,
इस मुल्क के भूखे-प्यासो को पैसे की हाजत[2] काफी है,
इतनी हंसमुख खामोशी, इतनी मानूस[3] निगाहे क्यों ?

मैं सोच रहा हूं कुछ बैठा, पाइप के 'धूएं के बादल में,
मैं छुप-सा गया हूं इक नाजुक तखईल[4] के मैले आंचल मे !

---

१. बिजली के बल्ब २. जरूरत ३. परिचित ४. कल्पना

सड़क बन रही है

मई के महीने का मानूस मन्ज़र
गरीबो के साथी ये कंकर ये पत्थर
वहा शहर से एक ही मील हटकर
—सड़क बन रही है।

ज़मी पर कुदालो को बरसा रहे हैं
पसीने - पसीने हुए जा रहे हैं
मगर इस मुशक्क़त[1] मे भी गा रहे हैं
—सड़क बन रही है।

मुसीबत है, कोई मुसर्रत नही है
इन्हे सोचने की भी फुर्सत नही है
जमादार को कुछ शिकायत नही है
—सडक बन रही है।

जवा, नौजवा और खमीदा कमर[2] भी
फ़सुर्दा जबी[3] भी बहिश्ते-नज़र भी
वही शामे-गम भी जमाले-सहर[4] भी
—सडक बन रही है।

जमादार साये मे बैठा हुआ है
किसी पर उसे कुछ अताब[5] आ गया है
किसी की तरफ़ देखकर हस रहा है
—सड़क बन रही है।

---

१ परिश्रम २ झुकी हुई (बूढ़ी) ३ चिंतित माथा ४. सुबह का सौन्दर्य ५ क्रोध

ये वेवाक उलफ़त ये अल्हड़ इशारा
वसन्ती से रामू तो रामू से राधा
जमादार भी है वसन्ती का शैदा

—सड़क वन रही है।

अगर सिर पे पगड़ी तो हाथों में हंटर
चला है जमादार किस शान से घर
वसन्ती भी जाती है पोशीदा होकर[1]

—सड़क वन रही है।

समझते हैं लेकिन हैं मसरूर अब भी
उसी तरह गाते हैं मजदूर अब भी
वाहर-हाल वा[2] हस्वे-दस्तूर अब भी

—सड़क वन रही है।

---

१. छुपकर २. वहा

अन्देशा

"—आर्टिस्ट ! अपनी ये तस्वीर मुकम्मिल कर ल
हा ये होट और भी पतले हो, ये आख और भी मस्त
लेकिन इन गालो की सुर्खी को जरा कम कर दे
मैंने शायद उन्हे मुर्झाया हुआ पाया है
हल्के आसू से इन आँखो को जरा नम कर दे
मैंने अफसुर्दा निगाहो से[1] यही समझा है
आज भी मैंने सरे-राह उसे देखा है—!
एक शहकार इसे जल्द बना ले ऐ दोस्त
वरना तस्वीर का खाका[2] ही बदलना होगा—!!"

◇ ◇ ◇

१ उदासीन नजरो से २ रूप-रेखा

एक बोरजुआ स्टूडेंट

... ..वो इक मज़दूर की लड़की
बहुत आसान है मेरे लिए उसको मना लेना
ज़रा आरास्ता हो लूं[1]
मेरा आईना कहता है—
किसी सब से बड़े बुतसाज़ का शहकार हूँ गोया
मैं शहरों के तबस्सुमपाश[2] नज़्ज़ारों का पाला हूँ
मेरी गुफ्तार[3] के अंदाज़ में—
गैले की नज्में हैं
मोपासां के फसाने हैं
मैं परवर्दा[4] हूँ बारों, कहवाख़ानों की फज़ाओं का
मैं जब शहरों की रंगीन तितलियों को छेड़ लेता हूँ
मैं जब आरास्ता ख़लवतकदों[5] की मेज़ पर जाकर
शराबों से भी रंगीन फूलों को अपना ही लेता हूं
तो फिर इक गांव की पाली हुई मासूम-सी लड़की
मेरे बस में न आयेगी ?
भला ये कैसे मुमकिन है ?
मैं फिर ऐसे में जब भी चाहता हूं प्यार करता हूं !

---

१. सज लूं २. मुस्कराहटों-भरे ३. बातचीत ४. पाला हुआ
५. तनहा जगहें (केबिन)

······ज़रा वैठो
मैं दरिया के किनारे धान के खेतो से हो आऊ
यही मौसम है जव धरती से हम रूई उगाते हैं
तुम्हे तकलीफ तो होगी—
हमारे झोपडो मे चारपाई भी नही होती
नही—मैं रुक गई तो धान तक पानी न आयेगा
हमारे गाव मे वरसात ही तो एक मौसम है
कि जव हम साल-भर के वास्ते कुछ काम करते हैं
—इधर वैठो,
पराई लडकियो को इस तरह देखा नहीं करते,
—ये लिप-स्टिक,
ये पाउडर,
और ये स्कार्फ क्या होगा ?
मुझे खेतो मे मज़दूरी से फुर्सत ही नही मिलती
मेरे होटो पे घंटो वूद पानी की नही पड़ती
मेरे चेहरे, मेरे वाज़ू पे लू और धूप रहती है
गले में सिर्फ पीतल का ये चन्दन-हार काफी है
—वहुत ममनून हू, लेकिन
हुज़ूर आप अपने तोहफे शहर की परियो में ले जायें

·· ·· हवा मे दिलकशी है
और फज़ा सहवा[1] लुटाती है
ज़रा पीपल की शाखो मे
सुनहरे चाद की अगडाइयां देखो
अभी वादल की रिमझिम मे नहा-धोकर जो निकली है—!
गरीवी एक लानत है—

---

१. लाल मदिरा

तुम्हें परमात्मा ने हुस्न की देवी बनाया है
मेरा ये फ़र्ज़ है इस हुस्न को आरास्ता कर दूं
तुम्हारी मुस्कराहट से ज़रा वहशत बरसती है
मैं इसमे जगमगाती ज़िन्दगी की रूह भर दूंगा
तुम्हारे होंटो मे सूखी हुई पत्ती की लर्जिश[1] है
मैं इसमे इक अनोखा रंग देकर जान लाऊंगा
तुम इस वीराकदे[2] मे किस क़दर मजबूर लड़की हो
तुम्हें मेरी मुहब्बत, मेरी दौलत की जरूरत है
—चलो मैं भी तुम्हारे साथ उन खेतो मे चलता हूं
हवा मे दिलकशी है और फ़ज़ा सहबा लुटाती है !
मैं दरिया की हसी लहरो मे इक संगीत ढूंढूंगा
तुम्हारे गांव की सखियों की टोली गीत गायेगी
सुनहरे धान के खेतों की दुनिया झूम जायेगी
नदी से दूर पीपल के किनारे, एक पनघट पर
वहां पाजेब की झंकार मे नगमे बरसते हैं
मैं ये सुनता रहा हूं,
आज इनको देख भी लूंगा—
अदीबों शायरों ने गांव को जन्नत बताया है—

……फ़रेबे-मज़हबो-सरमायादारी और क्या होगा ?
कि जनता के दिलो को
आंसुओ को,
उनकी आहों को,
दबाने के लिए—अपने तईं मसरूर रहने को
अदीबों, शायरों ने गांव को जन्नत बताया है

---

१. कम्पन २. निर्जन स्थान

······ज़रा बैठो
मैं दरिया के किनारे धान के खेतो से हो आऊं
यही मौसम है जब धरती से हम रूई उगाते हैं
तुम्हे तकलीफ तो होगी—
हमारे झोपड़ो मे चारपाई भी नही होती
नही—मै रुक गई तो धान तक पानी न आयेगा
हमारे गाव मे बरसात ही तो एक मौसम है
कि जब हम साल-भर के वास्ते कुछ काम करते हैं
—इधर बैठो,
पराई लडकियो को इस तरह देखा नहीं करते,
—ये लिप-स्टिक,
ये पाउडर,
और ये स्कार्फ क्या होगा ?
मुझे खेतो मे मजदूरी से फुर्सत ही नही मिलती
मेरे होटो पे घंटो बूंद पानी की नही पड़ती
मेरे चेहरे, मेरे बाज़ू पे लू और धूप रहती है
गले में सिर्फ पीतल का ये चन्दन-हार काफी है
—बहुत ममनून हू, लेकिन
हुजूर आप अपने तोहफे शहर की परियों में ले जायें

· ··हवा मे दिलकशी है
और फज़ा सहबा[1] लुटाती है
ज़रा पीपल की शाखो मे
सुनहरे चाद की अगडाइया देखो
अभी बादल की रिमझिम मे नहा-धोकर जो निकली है—!
ग़रीबी एक लानत है—

१. लाल मदिरा

तुम्हे परमात्मा ने हुस्न की देवी बनाया है
मेरा ये फर्ज़ है इस हुस्न को आरास्ता कर दूं
तुम्हारी मुस्कराहट से ज़रा वहशत बरसती है
मैं इसमे जगमगाती जिन्दगी की रूह भर दूंगा
तुम्हारे होंटो मे सूखी हुई पत्ती की लर्ज़िश[1] है
मैं इसमें इक अनोखा रंग देकर जान लाऊगा
तुम इस वीरांकदे[2] मे किस कदर मजबूर लड़की हो
तुम्हें मेरी मुहब्बत, मेरी दौलत की ज़रूरत है
—चलो मैं भी तुम्हारे साथ उन खेतो मे चलता हूं
हवा में दिलकशी है और फज़ा सहबा लुटाती है !
मैं दरिया की हसी लहरो मे इक संगीत ढूंढूंगा
तुम्हारे गाव की सखियों की टोली गीत गायेगी
सुनहरे धान के खेतों की दुनिया झूम जायेगी
नदी से दूर पीपल के किनारे, एक पनघट पर
वहां पाज़ेब की झंकार मे नग़मे बरसते हैं
मैं ये सुनता रहा हूं,
आज इनको देख भी लूंगा—
अदीबो शायरों ने गांव को जन्नत बताया है—

… …फ़रेबे-मज़हबो-सरमायादारी और क्या होगा ?
कि जनता के दिलों को
आसुओं को,
उनकी आहों को,
दबाने के लिए—अपने तईं मसरूर रहने को
अदीबों, शायरो ने गाव को जन्नत बताया है

---

१ कम्पन २. निर्जन स्थान

खुद अपने रंगमहलो में—
किसानो और मज़दूरो की फरियादो से बचने को
शहनशाहो ने फनकारो से कुछ नगमे खरीदे हैं
—तो फिर सरकार देहातो के नज़्ज़ारो को निकले हैं
मगर अब आलमे-मज़दूरो-दहका[1] और ही कुछ है
ज़मी पर खेत हैं, लेकिन यहा नगमे नही होते।

---

१ मज़दूरों-किसानो की हालत।



'मजरूह' सुलतानपुरी

अब खुल के कहूँगा हर ग़मे-दिल 'मजरूह' नहीं वो वक़्त कि जब
अश्कों में सुनाना था मुझको आहों में ग़ज़लख़्वां होना था

परिशिष्ट

रूस की क्राति से पहले क्रातिकारी दल मे एक टुकडी ऐसे युवको की भी थी जो अतीत की प्रत्येक परम्परा को रूढि और सामन्त-काल का जूठन कह-कर उसे समाप्त कर डालने पर उतारू थी और इस सम्बन्ध मे कोई सैद्धान्तिक युक्ति भी सुनने को तैयार नही थी। अतएव जब वहाँ के महान लेखक तुर्गनेव ने अपने उपन्यासो मे ऐसे सकीर्णतावादी (Nihilist) पात्रो को प्रस्तुत करना और उनका खेदजनक परिणाम दिखाना शुरू किया तो उन युवको ने उसे रुढिवादी, प्रतिक्रियावादी बल्कि क्रान्ति-विरोधी तक कह डाला और माँग की कि उसकी समस्त पुस्तको को जलाकर राख कर दिया जाय क्योकि उनके अध्ययन से क्रान्तिकारी युवको के भटक जाने की सम्भावना है।

कुछ वर्ष पूर्व लगभग इसी प्रकार की एक माँग उर्दू के कुछ लेखको और शायरो ने भी की। कहने को तो वे भी अपने आपको प्रगतिशील और क्रातिकारी लेखक और शायर कहते थे लेकिन प्रगतिवाद के वास्तविक अर्थ समझे बिना और क्राति से यान्त्रिक लगाव के कारण उनसे कुछ ऐसी ही भूलें हुईं और चूंकि ऐसे लेखको और शायरो की सख्या काफी बडी थी इसलिए एक समय तक प्रगतिशील साहित्य मे गतिरोध तथा शैथिल्य रहा। उन्होने नई बातें जरूर कीं लेकिन अतीत से सम्बन्ध न होने के कारण वे बातें खोखले नारे बनकर रह गईं। यही तक बस नहीं, उन्होंने साहित्य के कुछ रूपों को मरते हुए सामन्ती समाज का अग कहकर उनके उन्मूलन की भी माँग की।

बेचारी उर्दू 'ग़ज़ल' पर भी उनका यह नजला गिरा। ग़ज़ल को सामन्ती

समाज का अंग और केवल 'आत्मीयता' (Subjectiveness) का चमत्कार कहते हुए वे इस तात्त्विक सिद्धात को भूल गये कि हर नई चीज़ पुरानी चीज़ की कोख से जन्म लेती है। भाषा तथा साहित्य और संस्कृति तथा सभ्यता से लेकर शारीरिक वस्त्रो तक कोई चीज़ शून्य मे आगे नही बढती बल्कि इसे अपने पिछले फैशन का सहारा लेना पडता है। और जहां तक आत्मीयता का सम्बन्ध है, आत्मीयता किसी चिकने घडे का नाम नही है बल्कि आत्मीयता भी पदार्थ-विषमता का ही प्रतिबिम्ब होती है। अपने मन की दुनिया मे रहना किसी पागल के लिए तो सम्भव है लेकिन कोई चेतन व्यक्ति बाह्य परिस्थितियो से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। इन जोशीले लेकिन विमूढ युवको के बारे मे जो नयेपन के इतने रसिया थे और पुरानी परम्पराओ के इतने विरोधी, उर्दू के एक समालोचक ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि "उन्होंने टब के गदले पानी के साथ-साथ टब और बच्चे को भी फेंक देने की ठान ली थी।"

सौभाग्यवश उर्दू के इन नकीर्णतावादी लेखको और शायरों ने बहुत शीघ्र अपनी भूल स्वीकार कर ली और साहित्य, इतिहास और सामाजिक परिस्थितियो के अध्ययन तथा निरीक्षण के बाद अब वे बच्चे और टब को नही केवल टब के गदले पानी को फेंकने और उसकी जगह निर्मल और स्वच्छ पानी भरने के लिए प्रयत्नशील हैं।

यह ठीक है कि उर्दू शायरी का एक विशेष रूप होने के कारण ग़ज़ल की कुछ अपनी विशेष परम्पराएँ हैं और वह सामन्त-काल की उत्पत्ति है, लेकिन इसका मतलब यह नही है कि ग़ज़ल की परम्पराओ मे कोई परिवर्तन नही हुआ या हो नही सकता। विश्व, समाज और मानव-जीवन की प्रत्येक वस्तु की तरह ग़ज़ल की परम्पराओं मे भी बराबर परिवर्तन होता रहा है और 'मीर', 'सौदा', 'दर्द', 'मोमिन', 'ग़ालिब', 'हाली' और 'दाग़' के कलाम के क्रमश. अध्ययन से हम इस परिवर्तन अथवा विकास का रंग-रूप देख सकते हैं। जागीरदारी के पतन और इस कारण से ग़ज़ल की अधोगति के बाद बीसवीं शताब्दी मे जिन शायरो ने ग़ज़ल की रूढ़िगत परम्पराओं में परिवर्तन लाने का भरसक प्रयत्न किया उनमे हसरत मोहानी, 'इक़बाल', 'जोश', 'जिगर', 'फ़िराक़', 'फ़ैज़' और 'जज़्बी' के नाम सबसे आगे हैं। इस प्रसंग में, 'मजरूह' सुलतानपुरी ग़ज़ल के क्षेत्र मे नवागन्तुक है।

'मजरूह' सुलतानपुरी ग़ज़ल के क्षेत्र मे नवागन्तुक अवश्य है लेकिन असिद्धहस्त नही। उर्दू ग़ज़ल के गगनमंडल मे वह एक झिलमिलाते सितारो

दुल्हन की तरह नही वल्कि एक निश्चित तथा निडर दूल्हे की तरह दाखिल हुआ है और कुछ ऐसे स्वाभिमान से दाखिल हुआ है कि शयनगृह का मदमाता वातावरण चकाचौंध प्रकाश मे परिवर्तित हो गया है।

'मजरूह' की शायरी मे गज़ल के वाकेपन के साथ-साथ ग़ज़ल का सुन्दर स्वरूप भी मौजूद है और चूंकि उसके सुलझे हुए राजनीतिक वोध ने सामाजिक विकास और गति के नियमो को समझ लिया है इसलिए वह सौंदर्य का चित्र प्रस्तुत कर रहा हो या प्रेम का दुख-दर्द, राजनीतिक समस्याओ का उल्लेख कर रह हो या समाज की गति का चित्रण, हमे उसके यहा हर जगह यथार्थवाद की झलक मिलती है और जव वह कहता है कि

वचा लिया मुझे तूफा की मौज ने वरना।
किनारे वाले सफीना[1] मेरा डवो देते॥

या

मेरे काम आ गई आखिरश[2] यही काविशें[3] यही गरदिशें।
वढी इस कदर मेरी मजिलें कि कदम के खार[4] निकल गये॥

या फिर

सर पे हवा-ए-ज़ुल्म चले सौ जतन के साथ।
अपनी कुलाह कज[5] है उसी वाकपन के साथ॥

तो केवल इतना ही नही कि 'मजरूह' हमे गज़ल की प्राचीन परम्पराओ का उत्तराधिकारी नज़र आता है वल्कि उसके यहाँ हमे ऐतिहासिक सच्चाइयो की भी वडी सुन्दर झलक मिलती है। खिज़ा, वहार, चमन, साकी, महफिल, शराव, पैमाने इत्यादि शब्दो से, जो प्राचीन ग़ज़ल के 'पात्र' हैं, 'मजरूह' ने वडी कलाकौशलता से अपना काम निकाला है। इन शब्दो को पहनाया हुआ उसका नया अर्थ इस वात का अकाट्य प्रमाण है कि शायरी के अन्य रूपो की तरह गज़ल भी एक लिवास है जो विचारो के शरीर को ढापता है और अपनी तराश-खराश और रग-रूप के आधार पर किसी भी दूसरे लिवास से कम सुन्दर नही। 'मजरूह' ने आवश्यकतानुसार इस लिवास मे कुछ नये शब्दो द्वारा और भी रंगीनी और खमनूरती पैदा करने की कोशिश की है। अपनी इस कोशिश मे कहीं-कहीं तो वह वहुत सफल रहा है। उदाहरणस्वरूप पूंजीवाद के प्रति अपनी

१ नाव २ आखिर ३ प्रयत्न ४ काटे ५ टोपी टेढी है।

घृणा प्रकट करते हुए उसके सबसे बड़े लक्षण 'बैंक' को वह इस प्रकार अपने शेर मे बाधता है :

जबी पर[1] ताजे-जर[2], पहलू मे जिंदा[3], बैंक छाती पर ।
उठेगा बेकफन कब ये जनाजा हम भी देखेंगे ॥

और क्रान्ति का स्वागत करते हुए वह जमीन, हल, जौ के दाने, और कारखाने ऐसे शब्दो को, जो नज्मो मे तो किसी तरह खप सकते हैं लेकिन गजल की नाजुक कमर इनका बोझ मुश्किल ही से उठा सकती है, बड़ी शान से यो प्रयोग मे लाता है :

अब जमी गायेगी हल के साज पर नग़मे ।
वादियो मे नाचेंगे हर तरफ तराने मे ॥
अहले-दिल उगायेंगे खाक से महो-अंजुम[4] ।
अब गुहर[5] सुबक[6] होगा जौ के एक दाने से ॥
मनचले बुनेंगे अब रंगो-बू के पैराहन ।
अब सँवर के निकलेगा हुस्न कारखाने से ॥

लेकिन कभी-कभी नये शब्दो के प्रयोग की धुन मे और राजनीति-सम्बधी सामयिक आन्दोलनों की धारा मे बहकर वह कला की दृष्टि से बेतरह असफल भी रहता है और उस कोमल सम्बंध को भुला देता है जो राजनीतिक बोध और उसके कलात्मक वर्णन के बीच होना चाहिये। उनके ऐसे शेर गालीचे मे टाट के पैवद की तरह खटकते हैं। जरा एक शेर देखिये :

अमन का झंडा इस धरती पर किसने कहा लहराने न पाये ?
ये भी कोई हिटलर का है चेला, मार ले साथी जाने न पाये ॥

इस प्रकार के शेर यद्यपि उनकी शायरी मे आटे मे नमक के बराबर हैं, फिर भी मेरे तुच्छ विचार मे 'मजरूह' को इस प्रकार के वर्णन से पहलू बचाना चाहिये, क्योंकि यह भी कुछ उसी प्रकार की संकीर्णता है जिसने रूस के महान कलाकार तुर्गनेव को क्रान्ति-विरोधी ठहराया था और क्रान्ति-आदोलन मे योग देने की बजाय क्रान्ति को हानि पहुँचाई थी।

आधुनिक उर्दू गजल का यह क्रान्तिवादी शायर, जो अपने साधारण जीवन मे बड़ा-सौंदर्य प्रेमी है, कभी भद्दी बात नहीं करता, कभी भद्दे वस्त्र नहीं पहनता, भद्दा खाना नही खाता, भद्दे मकान मे नहीं रहता, भद्दी पुस्तकें नहीं

१. माथे पर २. पूंजी का ताज ३. जेलखाना ४. चान्द-सितारे
५. मोती ६. हल्का (कम कीमत का)

रखता और इसीलिए बहुत कम भद्दे शेर कहता है, जिला आजमगढ के एक कस्बे निजामाबाद मे पैदा हुआ और हकीम बनते-बनते सयोग से शायर बन गया। उसकी जीवनी उसकी अपनी जबान से सुनिये

"मैं एक पुलिस कास्टेबल का बेटा हूँ जो मुलाजमत के दौरान मे आजमगढ यू० पी० मे रहे और वही कस्वा निजामाबाद मे १६१६ मे मेरी पैदाइश हुई और मैंने अपनी इब्तिदाई तालीम (उर्दू, फारसी, अर्वी) वही हासिल की। १६३० मे मैं आजमगढ से कस्बा टाडा जिला फैजाबाद आया और वहाँ अर्वी दर्स निजामिया की तकमील (पूर्ति) करना चाही लेकिन कर नही सका और इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के अर्वी इम्तिहानो 'मौलवी', 'आलम', 'फाजल' की फिक्र की कि इस जरिये से किसी स्कूल मे टीचरी मिल सकेगी। लेकिन 'आलम' तक पढ़कर उसे भी छोड दिया और तिब (औषध-ज्ञान) की तकमील के लिए लखनऊ आया और यहाँ अर्वी जबान मे तिब की तकमील की। यह जमाना १६३८ का है। चन्द महीने तक मतब (औषधालय) किया लेकिन चूकि सुलतानपुर मे कुछ शेरो-अदब का भी चर्चा था इसलिए मुझे भी शेर कहने का शौक पैदा हुआ। १६४१ मे 'जिगर' मुरादाबादी ने मुझे एक मुशायरे मे सुना और अपने साथ लेकर कई मुशायरो मे गये। इस दौरान मे उन्होंने मुझे दो बातें बताईं। एक तो यह कि जैसे आदमी होगे वैसे शायर होगे। दूसरी बात यह कि अगर किसी का कोई अच्छा शेर सुनो तो कभी नकल न करो बल्कि जो गुजरे (आत्मानुभव हो) वही कहो। बाकायदा इसलाह (सशोधन) मैंने किसी से नही ली। बिल्कुल शुरू की दो ग़जलो पर 'आसी' साहब मरहूम से इसलाह ली थी लेकिन वे ग़जलें मेरे हाफजे (मस्तिष्क) मे बिल्कुल नही हैं। १६४५ मे एक मुशायरे के सिलसिले मे बम्बई आया और यही फिल्मो के गीत वग़ैरा लिखने लगा और अब तक यही हूँ। १६४७ से प्रगतिशील लेखक-सघ से वाबस्ता हूँ और रोज-बरोज (अगरचे फुर्सत कम मिलती है) इसी कोशिश मे हूँ कि ग़जल के पसमजर (पृष्ठ-भूमि) मे मार्कसिजम को रखकर समाजी, सियासी और इश्किया शायरी कर सकू। चुनाँचे कुछ लोग कहते हैं कि मैं अच्छा शायर हूँ और कुछ कहते हैं कि अच्छा आदमी हूँ। तुम मुझे दोनो एतबार से जानते हो, जो चाहो फैसला कर लो।"

इस सम्बोधन का 'तुम' चूकि 'मैं' हूँ इसलिए मेरा फैसला यह है कि 'मजरूह' आदमी भी बहुत अच्छा है और शायर भी बड़ा प्रतिभाशाली।

ग़ज़लें और शेर

हम अपना मुदांवा[1] ढूंढ चुके दरियाओं मे सहराओं मे।
तुम भी जिरः तस्की दे न सके वो दर्दे-जुनूं कम क्या होगा ?
गो खाक नशेमन पर अब भी हैं गिरयाकना[2] अरबावे-चमन[3]।
जब वर्क[4] तड़प कर टूटी थी उस वक़्त का आलम क्या होगा ?
जिस शोख-नज़र की महफ़िल मे आंसू भी तबस्सुम बन जाये।
वा शम्मा जलाई जायेगी परवाने का मातम क्या होगा ?
अब अपनी नज़र है बेमाने मफहूमे-तमन्ना[5] कुछ भी नही।
जब इश्क भी था कुछ चो-ब-जबी[6], अब हुस्न भी बरहम क्या होगा ?
'मजरूह' मेरे अरमानो का अंजाम शिकस्ते-दिल[7] ही सही।
जी खोल के खुद पर हंस न सकूं इतना भी मुझे ग़म क्या होगा ?

◇ ◇ ◇

बहाने और भी होते जो ज़िन्दगी के लिए।
हम एक बार तेरी आरज़ू भी खो देते ॥
कहा वो शब कि तेरे गेसुओं के साये में।
खयाले-सुबह से फिर आस्ती भिगो लेते ॥
बचा लिया मुझे तूफ़ां की मौज ने वरना।
किनारे वाले सफीना[8] मेरा डुबो देते ॥

---

१. इलाज २ रोने-धोने ३. चमन के मालिक ४. बिजली ५. आकांक्षा का अर्थ ६. माथे पर बल डाले हुए ७. दिल का टूटना ८. नौका

रखता और इसीलिए बहुत कम भद्दे शेर कहता है, जिला आजमगढ के एक कस्बे निजामाबाद मे पैदा हुआ और हकीम बनते-बनते सयोग से शायर बन गया। उसकी जीवनी उसकी अपनी जबान से सुनिये

"मैं एक पुलिस कान्स्टेबल का बेटा हूँ जो मुलाजमत के दौरान मे आजमगढ यू० पी० मे रहे और वही कस्बा निजामाबाद मे १९१९ मे मेरी पैदाइश हुई और मैंने अपनी इब्तिदाई तालीम (उर्दू, फारसी, अर्बी) वही हासिल की। १९३० मे मैं आजमगढ से कस्बा टाडा जिला फैजाबाद आया और वहाँ अर्बी दर्स निजामिया की तकमील (पूर्ति) करना चाही लेकिन कर नही सका और इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के अर्बी इम्तिहानो 'मौलवी', 'आलम', 'फाजल' की फिक्र की कि इस जरिये से किसी स्कूल मे टीचरी मिल सकेगी। लेकिन 'आलम' तक पढकर उसे भी छोड दिया और तिब (औषध-ज्ञान) की तकमील के लिए लखनऊ आया और यहाँ अर्बी जबान मे तिब की तकमील की। यह जमाना १९३८ का है। चन्द महीने तक मतब (औषधालय) किया लेकिन चूकि सुलतानपुर मे कुछ शेरो-अदब का भी चर्चा था इसलिए मुझे भी शेर कहने का शौक पैदा हुआ। १९४१ मे 'जिगर' मुरादाबादी ने मुझे एक मुशायरे मे सुना और अपने साथ लेकर कई मुशायरो मे गये। इस दौरान मे उन्होने मुझे दो बातें बताईं। एक तो यह कि जैसे आदमी होंगे वैसे शायर होंगे। दूसरी बात यह कि अगर किसी का कोई अच्छा शेर सुनो तो कभी नकल न करो बल्कि जो गुजरे (आत्मानुभव हो) वही कहो। बाकायदा इसलाह (सशोधन) मैंने किसी से नही ली। बिल्कुल शुरू की दो ग़जलो पर 'आसी' साहब मरहूम से इसलाह ली थी लेकिन वे ग़जलें मेरे हाफजे (मस्तिष्क) मे बिल्कुल नही हैं। १९४५ में एक मुशायरे के सिलसिले मे बम्बई आया और यही फिल्मो के गीत वगैरा लिखने लगा और अब तक यही हूँ। १९४७ से प्रगतिशील लेखक-सघ से वाबस्ता हूँ और रोज-बरोज (अगरचे फुर्सत कम मिलती है) इसी कोशिश मे हूँ कि ग़जल के पसमजर (पृष्ठ-भूमि) मे मार्कसिज्म को रखकर समाजी, सियासी और इश्क़िया शायरी कर सकू। चुनांचे कुछ लोग कहते हैं कि मैं अच्छा शायर हूँ और कुछ कहते हैं कि अच्छा आदमी हूँ। तुम मुझे दोनो एतबार से जानते हो, जो चाहो फैसला कर लो।"

इस सम्बोधन का 'तुम' चूकि 'मैं' हूँ इसलिए मेरा फ़ैसला यह है कि 'मजरूह' आदमी भी बहुत अच्छा है और शायर भी बडा प्रतिभाशाली।

ग़ज़लें और शेर

हम अपना मुदावा[1] ढूंढ चुके दरियाओं मे सहराओं में।
तुम भी जिसे तस्की दे न सके वो दर्दे-जुनूं कम क्या होगा ?
गो खाक नशेमन पर अब भी हैं गिरयाकना[2] अरबावे-चमन[3]।
जब वर्क[4] तड़प कर टूटी थी उस वक़्त का आलम क्या होगा ?
जिस शोख-नजर की महफिल मे आंसू भी तबस्सुम बन जाये।
वां शम्मा जलाई जायेगी परवाने का मातम क्या होगा ?
अब अपनी नजर है बेमाने मफहूमे-तमन्ना[5] कुछ भी नहीं।
जब इश्क़ भी था कुछ चीं-ब-जबीं[6], अब हुस्न भी बरहम क्या होगा ?
'मजरूह' मेरे अरमानों का अंजाम शिकस्ते-दिल[7] ही सही।
जी खोल के खुद पर हंस न सकूं इतना भी मुझे ग़म क्या होगा ?

◇ ◇ ◇

बहाने और भी होते जो ज़िन्दगी के लिए।
हम एक बार तेरी आरज़ू भी खो देते॥
कहां वो शब कि तेरे गेसुओं के साये में।
खयाले-सुबह से फिर आस्ती भिगो लेते॥
बचा लिया मुझे तूफ़ां की मौज ने वरना।
किनारे वाले सफीना[8] मेरा डबो देते॥

---

१. इलाज २. रोने-धोने ३. चमन के मालिक ४. बिजली ५. आकांक्षा का अर्थ ६. माथे पर बल डाले हुए ७. दिल का टूटना ८. नौका

रखता और इसीलिए वहुत कम भद्दे शेर कहता है, जिला आजमगढ के एक कस्वे निजामावाद मे पैदा हुआ और हकीम वनते-वनते सयोग से शायर वन गया। उसकी जीवनी उसकी अपनी जवान से सुनिये

"मैं एक पुलिस कान्स्टेवल का वेटा हूँ जो मुलाजमत के दौरान मे आजम-गढ यू० पी० मे रहे और वही कस्वा निजामावाद मे १९१९ मे मेरी पैदाइश हुई और मैंने अपनी इब्तिदाई तालीम (उर्दू, फारसी, अर्वी) वही हासिल की। १९३० मे मैं आजमगढ़ से कस्वा टाडा जिला फैजावाद आया और वहाँ अर्वी दर्स निजामिया की तकमील (पूर्ति) करना चाही लेकिन कर नही सका और इलाहावाद यूनीवर्सिटी के अर्वी इम्तिहानो 'मौलवी', 'आलम', 'फाजल' की फिक्र की कि इस जरिये से किसी स्कूल मे टीचरी मिल सकेगी। लेकिन 'आलम' तक पढकर उसे भी छोड दिया और तिव (औषध-ज्ञान) की तकमील के लिए लखनऊ आया और यहाँ अर्वी जवान मे तिव की तकमील की। यह जमाना १९३८ का है। चन्द महीने तक मतव (औषधालय) किया लेकिन चूकि सुलतान-पुर मे कुछ शेरो-अदव का भी चर्चा था इसलिए मुझे भी शेर कहने का शौक़ पैदा हुआ। १९४१ मे 'जिगर' मुरादावादी ने मुझे एक मुशायरे मे सुना और अपने साथ लेकर कई मुशायरो मे गये। इस दौरान मे उन्होने मुझे दो वातें वताई। एक तो यह कि जैसे आदमी होगे वैसे शायर होंगे। दूसरी वात यह कि अगर किसी का कोई अच्छा शेर सुनो तो कभी नकल न करो वल्कि जो गुज़रे (आत्मानुभव हो) वही कहो। वाकायदा इसलाह (सशोधन) मैंने किसी से नही ली। विल्कुल शुरू की दो गजलो पर 'आसी' साहव मरहूम से इसलाह ली थी लेकिन वे ग़ज़लें मेरे हाफजे (मस्तिष्क) मे विल्कुल नही हैं। १९४५ मे एक मुशायरे के सिलसिले मे वम्वई आया और यही फिल्मो के गीत वगैरा लिखने लगा और अव तक यही हूँ। १९४७ से प्रगतिशील लेखक-सघ से वावस्ता हूँ और रोज-वरोज (अगरचे फ़ुर्सत कम मिलती है) इसी कोशिश मे हूँ कि ग़जल के पसमजर (पृष्ठ-भूमि) मे मार्कसिजम को रखकर समाजी, सियासी और इश्किया शायरी कर सकू। चुनाँचे कुछ लोग कहते हैं कि मैं अच्छा शायर हूँ और कुछ कहते हैं कि अच्छा आदमी हूँ। तुम मुझे दोनो एतवार से जानते हो, जो चाहो फैसला कर लो।"

इस सम्वोधन का 'तुम' चूकि 'मैं' हूँ इसलिए मेरा फ़ैसला यह है कि 'मजरूह' आदमी भी वहुत अच्छा है और शायर भी वडा प्रतिभाशाली।

ग़ज़लें और शेर

हम अपना मुदावा[1] ढूंढ चुके दरियाओं में सहराओं मे।
तुम भी जिरः तस्की दे न सके वो दर्दे-जुनूं कम क्या होगा?
गो खाक नशेमन पर अब भी हैं गिरयाकना[2] अरबावे-चमन[3]।
जब बर्क[4] तड़प कर टूटी थी उस वक़्त का आलम क्या होगा?
जिस शोख-नज़र की महफ़िल मे आंसू भी तबस्सुम बन जाये।
वां शम्मा जलाई जायेगी परवाने का मातम क्या होगा?
अब अपनी नज़र है बेमाने मफहूमे-तमन्ना[5] कुछ भी नहीं।
जब इश्क भी था कुछ चीं-ब-जबीं[6], अब हुस्न भी बरहम क्या होगा?
'मजरूह' मेरे अरमानो का अंजाम शिकस्ते-दिल[7] ही सही।
जी खोल के खुद पर हंस न सकूं इतना भी मुझे ग़म क्या होगा?

◇ ◇ ◇

बहाने और भी होते जो जिन्दगी के लिए।
हम एक बार तेरी आरज़ू भी खो देते॥
कहां वो शब कि तेरे गेसुओ के साये मे।
खयाले-सुबह से फिर आस्ती भिगो लेते॥
बचा लिया मुझे तूफ़ां की मौज ने वरना।
किनारे वाले सफ़ीना[8] मेरा डबो देते॥

---

१. इलाज २. रोने-धोने ३. चमन के मालिक ४. बिजली ५. आकांक्षा का अर्थ ६. माथे पर बल डाले हुए ७. दिल का टूटना ८. नौका

ये रुके-रुके से आसू ये घुटी-घुटी-सी आहे।
यूही कब तलक खुदाया गमे-जिन्दगी निबाहे?
कही जुल्मतो मे[1] घिरकर है तलाशे-दस्ते-रहबर[2]।
कही जगमगा उठी हैं मेरे नक्शे-पा से[3] राहे॥
तेरे खानमा-खराबो[4] का चमन कोई, न सहरा।
ये जहा भी बैठ जायें वही इनकी बारगाहे[5]॥
कभी जादा-ए-तलब[6] से जो फिरा हू दिल-शिकस्ता।
तेरी आरज़ू ने हसकर वही डाल दी हैं बाहे॥

◇ ◇ ◇

तेरी चश्मे-शोख को क्या हुआ नही होती आज हरीफे-दिल[7]।
मेरे जोमे-इश्क़[8] की खैर हो ये किसे नजर से गिरा दिया॥
शबे-इन्तज़ार की कश्मकश मे न पूछ कैसे सहर हुई।
कभी इक चिराग जला दिया कभी इक चिराग बुझा दिया॥

◇ ◇ ◇

किस किस को हाय तेरे तगाफुल[9] का दू जवाब।
अक्सर तो रह गया हूँ झुकाकर नजर को मैं॥
अल्लाह रे वो आलमे-रुखसत कि देर तक।
तकता रहा हूँ यूही तेरी रहगुज़र को मैं॥

◇ ◇ ◇

मोहतसिब! साकी की चश्मे-नीम-वा[10] को क्या करू।
मैकदे का दर खुला गर्दिश मे जाम आ ही गया॥
इक सितमगर तू कि वजहे-सद-खराबी[11] तेरा दर्द।
इक बला-कश[12] मैं कि तेरा दर्द काम आ ही गया॥

---

१ अघेरो मे २ पथ-प्रदर्शक के हाथो की तलाश ३ पदचिह्नो से
४ जिनका घर तूने बर्बाद कर रखा है ५ दरबार, कचहरी ६ प्रेम-मार्ग
७ दिल की शत्रु ८ इश्क़ का घमड ९ बेरुखी १० अधखुली आख
११ सैकडो खराबियो का कारण १२ बेतहाशा पीने वाला

हम क़फस ! सय्याद की रस्मे-ज़बाँ-वन्दी की खैर ।
वेज़बानों को भी अन्दाज़े-कलाम [1] आ ही गया ॥
क्यो कहूंगा मै किसी से तेरे गम की दास्तां ।
और अगर ऐ दोस्त लब पर तेरा नाम आ ही गया !

◇ ◇ ◇

मुझे सहल हो गईं मंज़िले वो हवा के रुख भी वदल गये ।
तेरा हाथ हाथ में आ गया कि चिराग राह मे जल गये ॥
वो लजाये मेरे सवाल पर कि उठा सके न झुका के सर ।
उड़ी ज़ुल्फ़ चेहरे पे इस तरह कि शबों के राज़ [2] मचल गये ॥
वही बात जो न वो कर सके मेरे शेरो-नगमे मे आ गई ।
वही लब न मैं जिन्हे छू सका क़दहे-शराब मे [3] ढल गये ॥
उन्हे कब के रास भी आ चुके तेरी बज्मे-नाज के हादसे ।
अब उठे कि तेरी नज़र फिरे जो गिरे थे गिर के संभल गये ॥
मेरे काम आ गईं आखिरश यही काविशे यही गरदिशें ।
वढ़ी इस कदर मेरी मंज़िलें कि कदम के खार निकल गये ॥

◇ ◇ ◇

आहे-जांसोज़ [4] की महरूमी-ए-तासीर [5] न देख ।
हो ही जायेगी कोई जीने की तदवीर, न देख ॥
हादसे और भी गुजरे तेरी उल्फत के सिवा ।
हां ! मुझे देख मुझे अब मेरी तस्वीर न देख ॥
ये ज़रा दूर पे मज़िल ये उजाला ये सुकूं ।
ख्वाब को देख अभी ख्वाब की तावीर न देख ।
देख ज़िदां से परे रगे-चमन, जोशे-वहार ।
रक़्स करना है तो फिर पांव की ज़ंजीर न देख ॥
कुछ भी हो फिर भी दुखे दिल को सदा हू नादां ।
मेरी वातों को समझ तलखी-ए-तक़रीर [6] न देख ॥

---

१. वोलने का ढग २. रातों के भेद ३. शराब के प्याले ४. जान तक को जला देने वाली आह ५. प्रभाव-हीनता ६. कटु स्वर

वही 'मजरूह' वही शायरे-आवारा-मिज़ाज ।
कौन उट्ठा है तेरी बज़्म से दिलगीर न देख ।।

◇ ◇ ◇

न मिट सकेंगी तनहाइया मगर ऐ दोस्त ।
जो तू भी हो तो तबीयत ज़रा बहल जाये ।।

◇ ◇ ◇

सुनते हैं कि काटे से गुल तक हैं राह मे लाखो वीराने ।
कहता है मगर ये अज्मे-जुनू सहरा से गुलिस्ता दूर नही ।।

◇ ◇ ◇

अलग बैठे थे फिर भी आख साकी की पडी हम पर ।
अगर है तिश्नगी[1] कामिल[2] तो पैमाने भी आयेंगे ।।

◇ ◇ ◇

हम तो पा-ए-जानाँ पर[3] कर भी आए इक सजदा ।
सोचती रही दुनिया कुफ्र है कि ईमा[4] है ?

◇ ◇ ◇

सवाल उनका जवाब उनका सुकूत[5] उनका खिताब[6] उनका ।
हम उनकी अजुमन मे सर न करते खम तो क्या करते ?

◇ ◇ ◇

मै अकेला ही चला था जानिबे-मज़िल मगर ।
लोग साथ आते गये और कारवा बनता गया ।।
मै तो जब मानू कि भर दे सागरे-हर खासो-आम ।
यू तो जो आया वही पीरे-मुगा[7] बनता गया ।।
जिस तरफ भी चल पडे हम आबला-पायाने-शौक[8] ।
खार से गुल और गुल से गुलिस्ताँ बनता गया ।।

---

१ प्यास (कामना) २ पूर्ण ३ महबूब के पैरो पर ४ ईमान
५ चुप्पी ६ सम्बोधन ७ शराब देने वाला, बुजुर्ग साकी ८ जिज्ञासा (प्रेम) के मार्ग पर चलने वाला ऐसा राही जिसके पाव मे छाले पड गये हो ।

शरहे-ग़म[1] तो मुख्तसर होती गई उसके हुज़ूर ।
लफ़्ज जो मुंह से न निकला दास्तां वनता गया ॥

◇ ◇ ◇

आ निकल के मैदां मे दो-रुख़ी के खाने से ।
काम चल नही सकता अब किसी वहाने से ॥
सुनते हम तो क्या सुनते इक वुज़ुर्ग की वातें ।
सुवह को इलाका[2] क्या शाम के फसाने से ॥
वो लगा के सीने से फ़ल्सफा तसव्वुफ[3] का ।
शेख़ जी हसीनो में फिरते है दिवाने से ॥
ख़ुदकशी ही रास आई देख वदनसीवो को ।
ख़ुद से भी गुरेज़ां[4] हैं भाग कर ज़माने से ॥
अव जुनूं पे वो साअ़त[5] आ पडी कि ऐ 'मजरूह' ।
आज ज़ख्मे-सर वेहतर दिल पे चोट खाने से ॥

◇ ◇ ◇

जस्त करता हूं[6] तो लड़ जाती है मंज़िल से नज़र ।
हाइले-राह कोई और भी दीवार सही ॥
ज़िन्दगी की क़द्र सीखी शुक्रिया तेगे-सितम[7] ।
हां हमी थे कल तलक जीने से उकताये हुए ॥
सैरे-साहिल कर चुके ऐ मौजे-साहिल सर न मार ।
तुझ से क्या वहलेंगे तूफानो के वहलाये हुए ॥

◇ ◇ ◇

मैं हज़ार शक्ल वदल चुका चमने-जहां में सुन ऐ सवा ।
कि जो फूल है तेरे हाथ में ये मेरा ही लख़्ते-जिगर[8] न हो ?
तेरे पा ज़मी पे रुके-रुके तेरा सर फलक[9] पे झुका-झुका ॥
कोई तुझ से भी है अज़ीम-तर[10] यही वहम तुझको मगर न हो ॥

---

१. ग़म की व्याख्या २. सम्बन्ध ३. सूफीवाद ४. दूर (पल्लू बचाये हुए)
५. समय (क्षण) ६. छलांग लगाता हूँ ७. जुल्म ढाने वाली तलवार
८. दिल का टुकड़ा ९. आकाश १०. अधिक महान

मेरे होंठों पे तड़पते हैं अभी तक शिकवे।
जाने उसकी वही नीची सी नजर है कि नही ?
दिल से मिलती तो है इक राह कहीं से आकर।
सोचता हूँ ये तेरी राहगुजर है कि नही ?

◊ ◊ ◊

दुआ देती है राहें आज तक मुझ आबला-पा को।
मेरे कदमों की गुलजारी बियाबां से चमन तक है॥



'क़तील' शफ़ाई

ग़मे-ज़ात से मेरी ज़िन्दगी ग़मे-कायनात में ढल गई
किसी बज़्मे-नाज़ में खोके भी मुझे कायनात से प्यार है

परिचय

किसी शायर के शेर लिखने के ढग आपने बहुत सुने होंगे। उदाहरणत 'इक़बाल' के बारे मे सुना होगा कि वे फर्शी हुक्का भरकर पलग पर लेट जाते थे और अपने मुन्शी को शेर डिक्टेट कराते थे। 'जोश' मलीहाबादी सुबह-सवेरे लम्बी सैर को निकल जाते हैं और यो ताज़ादम होकर रचनात्मक काम करते हैं। नज्म या ग़ज़ल लिखते समय बेतहाशा सिगरेट फूंकने, चाय की केतली गरम रखने और लिखने के साथ-साथ चाय की चुस्कियाँ लेने, यहाँ तक कि कुछ शायरो के सम्बन्ध मे यह भी सुना होगा कि उनके दिमाग़ की गिरहे शराब के कई पैग पीने के बाद खुलना शुरू होती हैं। लेकिन यह अदाज शायद ही आपने सुना हो कि कोई शायर शेर लिखने का मूड लाने के लिए सुबह चार बजे उठकर बदन पर तेल की खूब मालिश करता हो और फिर ताबड-तोड डड पेलने के बाद लिखने की मेज़ पर बैठता हो। यदि आपने नही सुना तो सूचनार्थ निवेदन है कि यह शायर 'क़तील' शफाई है।

'क़तील' शफाई के शेर कहने के इस अदाज को और उसके कहे हुए शेरो को देखकर आश्चर्य होता है। कितनी अजीब बात है कि इस प्रकार लगर-लगोट कसकर लिखे गये शेरों मे झरनो का सा सगीत और मधुरता, फूलों की-सी महक और निखार और उर्दू की परम्परागत शायरी के महबूब की कमर ऐसी लचक मिलती है। अर्थात् ऐसे वक्त मे जब कि उसके कमरे से खम ठोकने की आवाज आनी चाहिये, वहाँ के वातावरण मे कुछ ऐसी गुनगुनाहट बसी होती है

चौदहवी रात के चाँद की चाँदनी खेतियो पर हमेशा बिखरती रहे,
ऊँघते रहगुजारों पे फैले हुए हर उजाले की रंगत निखरती रहे,
नर्म ख्वाबो की गगा बिफरती रहे !

या

रात भर बूँदियाँ रक़्स करती रही, भीगी मौसीकियो ने सवेरा किया।

या फिर

सोई-सोई फ़ज़ा आँख मलने लगी, सेली-सेली हवाओं के पर तुल गये।

और इसके साथ यदि आपको यह भी मालूम हो जाय कि 'कतील' शफाई जाति का पठान है और एक समय तक गेंद-बल्ले, रैकट, लुगियां और कुल्ले बेचता रहा है, चुगीखाने मे मोर्हारिरी और बस की कम्पनियो मे बुकिंग-क्लर्की करता फिरा है तो उसके शेरो के लोच-लचक को देखकर आप अवश्य कुछ देर के लिए सोचने पर विवश हो जायेंगे। इस पर यदि कभी आपको उसे देखने का अवसर मिल जाय और आपको यह न बताया जाय कि यह 'क़तील' है तो आज भी पहली नजर मे वह आपको शायर की अपेक्षा एक ऐसा क्लर्क नजर आयेगा जिसकी सौ-सवासौ तनख्वाह के पीछे आधा दर्जन बच्चे और एक पत्नी जीने का सहारा ढूंढ रही हो। चेहरे-मोहरे से भी वह ऐसा ठेठ पंजाबी नजर आता है जो अभी-अभी लस्सी के बड़े-बडे दो गिलास पी चुका हो, लेकिन डकार लेना अभी बाकी हो।

'कत्तील' शफाई का जन्म दिसम्बर १६१६ मे तहसील हरीपुर जिला हजारा (पाकिस्तान) मे हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा इस्लामियां मिडिल स्कूल रावलपिंडी मे प्राप्त की, उसके बाद गवर्नमेंट हाई स्कूल मे दाखिल हुआ, लेकिन पिता के देहांत और कोई अभिभावक न होने के कारण पढाई जारी न रह सकी। पिता की छोड़ी हुई पूंजी समाप्त होते ही उसे तरह-तरह के 'बिजनेस' और नौकरियां करनी पड़ी। साहित्य की ओर ध्यान इस तरह हुआ कि क्लासिकल साहित्य मे पिता की बहुत रुचि थी, उन्होंने नन्हे कतील को 'किस्सा चहार दरवेश' और 'किस्सा हातिमताई' आदि पुस्तकें पढने को दी और उन्हें पढने-पढते उसे स्वय कहानियां लिखने का शौक चर्राया। लेकिन बाद मे कहानियाँ लिखने की बजाय उसने केवल इस कारण से शायरी शुरू कर दी कि उसके कथनानुसार उसे कहानी को साफ़ करने और फिर कापी करने मे बहुत कष्ट होता था। शुरू-शुरू में उसने वही 'आहो, फरियादो' वाली परम्परागत ग़जलें कहीं (और मैं समझता हूँ आगे चलकर यही चीज उसके लिए हितकर सिद्ध हुई क्योंकि इस प्रकार वह शायरी की पुरानी परम्पराओं से भलिभा

नही रहा) और 'शफा' कानपुरी नाम के एक शायर से इसलाह ली (इसी सम्वन्ध से वह स्वय को 'शफाई' लिखता है), लेकिन नौकरी के सिलसिले मे रावलपिंडी आने पर उसने साहित्य की प्रगतिशील धारा के अनुसरण मे काव्य-रूप के नये-नये प्रयोग किये और अहमद नदीम कासमी ऐसे शायर के मैत्रीपूर्ण परामर्शो द्वारा उसकी इस शायरी का प्रारम्भ हुआ जो आज हमारे सामने है।

लेकिन कोई परामर्श या सशोधन उस समय तक किसी शायर के लिए हितकर नही हो सकता जब तक कि स्वय शायर के जीवन मे कोई प्रेरक वस्तु न हो। लगन और क्षमता का अपना अलग स्थान है लेकिन इस दिशा की समस्त क्षमतायें मौलिक रूप से उस प्रेरणा ही के वशीभूत होती हैं, जिसे 'मनोवृत्तात' का नाम दिया जा सकता है। अतएव १९४७ मे जब वह लाहौर की एक फिल्म कम्पनी मे गीतकार के रूप मे काम कर रहा था, 'चन्द्रकान्ता' नाम की एक एक्सट्रा-गर्ल उसके जीवन मे आई। और उसकी शायरी को नई शक्ति और नया रग-रूप प्रदान कर गई। यद्यपि यह प्रेम केवल डेढ़ वर्ष तक चल सका और उसका परिणाम बिलकुल नाटकीय तथा शायर के लिए अत्यन्त दुखदायक सिद्ध हुआ लेकिन जहाँ तक उसकी शायरी का सम्वन्ध है स्वय उसके अपने शब्दो मे

"यदि यह घटना न घटी होती तो शायद अब तक मैं वही परम्परागत ग़ज़लें लिख रहा होता जिनमे यथार्थ की अपेक्षा बनावट और फैशन होता है। इस घटना ने मुझे यथार्थवाद के मार्ग पर डाल दिया और मैंने व्यक्तिगत घटना को सासारिक रग मे ढालने का प्रयत्न किया। अतएव उसके वाद जो कुछ भी मैंने लिखा है वह कल्पित कम और वास्तविक अधिक है।"

यू उस पर यह नया भेद खुला कि काव्य की परम्पराओ से पूरी जानकारी रखने और अपनी ओर से नये विचार तथा नये शब्द देने के साथ-साथ केवल वही शायरी अधिक अपील कर सकती है जिसमें शायर का व्यक्तित्व अर्थात् उसका 'मनो-वृत्तान्त' विद्यमान हो (जो अनिवार्य रूप से परिस्थितियो से जन्म लेता और वनता है।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरे महायुद्ध के वाद नई पीढी के जो उर्दू शायर बडी तेजी से उभरे हैं उनमे 'कतील' शफाई का अपना एक विशेष रग है।

अब तक 'क़तील' की कविताओ के तीन सग्रह 'हरियाली', 'गजर' और 'जल-तरग' प्रकाशित हो चुके हैं। अपने कविता-सग्रहो के नाम रखने मे उसने किसी अतिशयोक्ति से काम नही लिया। ये नाम उसकी सगीतधर्मी शायरी के सूचक हैं।

हरजाई

खेत से दूर दमकते हुए दोराहे पर,
एक सरशार[1] जवां मैंने खड़ा पाया था।
तमतमाते हुए चेहरे पे सुलगती आँखें,
जैसे महके हुए गुलज़ार का ख़्वाब आया था।

सर पे गागर के छलकने से जो तारे टूटे,
आसमा झांक रहा था मुझे हैरानी से।
टन से ककर जो पड़ा मेरी हसी गागर पर,
एक नगमा सा उलझने लगा पेशानी से।

टूटती रात गये घर को पलटना मेरा,
इक लपकते हुए साये ने डराया था मुझे।
"तुम? अरी तुम ?" (वही सरशार जवां था शायद),
"जी, यूंही एक सहेली ने बुलाया था मुझे।"

खेत भरपूर जवानी को लुटा बैठे थे,
हर दरांती पे तसलसुल[2] का जुनूं[3] तारी था।
जाने क्या देख रहा था वो मेरे चेहरे पर।
इस कदर याद है उंगली से लहू जारी था।

---

१. आह्लादित २. निरन्तरता ३. उन्माद

काच की चूड़ियां कल रात न हो हाथो में,
इतनी ऊची तेरी पाज़ेब की झकार न हो।
सरसराता हुआ मलबूस[1] न लहरा जाये,
किसी साये का गुमा[2] भी पसे-दीवार[3] न हो।

जब कभी चाद से पिघली हुई चादी बरसी,
ऊघती रात के शाने को झझोडा हमने।
भूलकर भी कभी पलकें न झपकने पाईं,
इस कदर नीद को आखो से निचोडा हमने।

अब मगर चादनी रात आके गुजर जाती है,
पूछता ही नही कोई मेरी तनहाई को।
खेत से दूर दमकते हुए दोराहे पर,
ढूढती हैं मेरी आखें किसी हरजाई को।

◇ ◇ ◇

१. पहरावा २ सन्देह ३ दीवार के पीछे

सरताज

चिरामन से उभरती है खनकती हुई किरनें,
गाती है फज़ा[1] मे कोई ज़रपोश[2] कलाई,
मै हलक़ा - ए - नगमात मे[3] हैरान खड़ा हूँ,
आखो मे समेटे हुए इक जश्ने - तलाई[4] ।
ये जश्ने - मुसर्रत जिसे तख्लीक़ किया है[5] ,
आराम से बीते हुए पच्चास बरस ने,
ये क़ाफिला - ए - उम्र की रौंदी हुई मज़िल,
पूजा है जिसे हिरस को आवाज़े-जरस ने[6] ।
ये सास, ये सूखे हुए पत्तो का तरन्नुम[7] ,
ये जिस्म, ये टूटा हुआ पीतल का कटोरा,
ये रंग, ये तेजाव मे डूबी हुई चान्दी,
ये उम्र, ये भादो की हवाओ का हिलोरा।
कुछ भी न सही, खून की बेकैफ़ हरारत[8] ,
दौलत ने इसे प्यार का हक दे तो दिया है,
गुलची की मचलती हुई मुश्ताक[9] नज़र ने।
कोंपल को हिना[10] बार कलक़[11] दे तो दिया है।
रातो को हव्स हो कि गजरदम[12] की हवाये,
गजरो को ये झंकार झरोके मे रहेगी,
जब तक न हकायक से[13] हटा दे कोई पर्दा,
औरत यूंही अखलाक के धोखे में रहेगी।

---

१. वातावरण २. सोना-भरी ३. संगीत के घेरे मे ४. सुनहरा जश्न ५. रचा है ६. घड़ियाल की आवाज़ ने ७ संगीत ८. आनन्द-रहित गर्मी ९. उत्सुकतापूर्ण १०. महदी ११. बेचैनी १२. प्रभात १३. वास्तविकताओ से

गीत

तेरा आचल रंग-रगीला, रग-रग मे बास नई
मेरे मन की आस पुरानी, तेरे तन की आस नई

तू बगिया की तितली बनकर फूल-फूल पर झूले
कली-कली से प्यार बढाये, रुत-रुत के दुख भूले
इक समान है तुझको, सावन हो या सरसों फूले

तेरा जोवन एक पहेली, तेरी आस-निरास नई
तेरा आचल रग-रगीला, रग-रग मे वास नई

रूप-रग मे तेरी मुहफट चचलता इतराये
अग - अग मे सजी-सजाई सुन्दरता बल खाये
सग-सग अन-देखे सपनो की शोभा लहराये

जीवन के हर मोड पे तेरी आस रचाये रास नई
तेरा आचल रग-रगीला, रग-रग मे वास नई

एक उड़ान से तू उकताये वार-बार पर तोले
एक चाल न भाये तुझको कदम-कदम पर डोले
इस पर भी मन मूरख मेरा तेरी ही जय बोले

मेरे साथ पुरानी छाया, काया तेरे पास नई
तेरा आचल रग-रगीला, रग-रग मे वास नई

ग़ज़लें

प्यार तुम्हारा भूल तो जाऊँ लेकिन प्यार तुम्हारा है।
ये इक मीठा ज़हर सही, ये ज़हर भी आज गवारा है ॥
हाप गये पतवार, सफीने[1] चलते-चलते चूर हुए।
ये है भंवर तो ऐ मल्लाहो कितनी दूर किनारा है ?
हम तो एक अनोखी ज़िद मे अपनी जान पे खेल गये।
तुम्ही बताओ उजडी रातो ! क्या जीता क्या हारा है ?
ओ बेरहम मुसाफिर हँस कर साहिल की तौहीन न कर।
हमने अपनी नाव डबोकर तुझको पार उतारा है ॥

० ० ०

तुम्हारी अंजुमन से उठ के दीवाने कहाँ जाते ?
जो वावस्ता हुए तुम से वो अफसाने कहा जाते ?
निकल कर दैरो-क़ाबा से[2] अगर मिलता न मैख़ाना।
तो ठुकराये हुए इन्सा खुदा जाने कहा जाते ?
तुम्हारी बेरुखी ने लाज रख ली बादा-खाने की।
तुम आंखो से पिला देते तो पैमाने कहा जाते ?
चलो अच्छा हुआ काम आ गई दीवानगी अपनी।
वगरना हम ज़माने भर को समझाने कहां जाते ?
'कतील' अपना मुकद्दर[3] ग़म से बेगाना अगर होता।
तो फिर अपने-पराये हम से पहचाने कहां जाते ?

---

१ नौकायें २ काबे और बुतखाने मे ३. भाग्य

गीत

तेरा आचल रंग-रगीला, रग-रग में बास नई
मेरे मन की आस पुरानी, तेरे तन की आस नई

तू बगिया की तितली बनकर फूल-फूल पर झूले
कली-कली से प्यार बढाये, रुत-रुत के दुख भूले
इक समान है तुझको, सावन हो या सरसो फूले

तेरा जोबन एक पहेली, तेरी आस-निरास नई
तेरा आचल रग-रगीला, रग-रग मे बास नई

रूप-रग मे तेरी मुहफट चचलता इतराये
अग - अग मे सजी-सजाई सुन्दरता बल खाये
सग-सग अन-देखे सपनो की शोभा लहराये

जीवन के हर मोड पे तेरी आस रचाये रास नई
तेरा आचल रग-रगीला, रग-रग मे बास नई

एक उडान से तू उकताये बार-बार पर तोले
एक चाल न भाये तुझको कदम-कदम पर डोले
इस पर भी मन मूरख मेरा तेरी ही जय बोले

मेरे साथ पुरानी छाया, काया तेरे पास नई
तेरा आचल रंग-रगीला, रग-रग मे बास नई

ग़ज़लें

प्यार तुम्हारा भूल तो जाऊँ लेकिन प्यार तुम्हारा है।
ये इक मीठा ज़हर सही, ये ज़हर भी आज गवारा है॥
हाथ गये पतवार, सफीने[1] चलते-चलते चूर हुए।
ये है भंवर तो ऐ मल्लाहो कितनी दूर किनारा है?
हम तो एक अनोखी जिद मे अपनी जान पे खेल गये।
तुम्ही बताओ उजड़ी रातो! क्या जीता क्या हारा है?
ओ बेरहम मुसाफिर हँस कर साहिल की तौहीन न कर।
हमने अपनी नाव डबोकर तुझको पार उतारा है॥

० ० ०

तुम्हारी अंजुमन से उठ के दीवाने कहाँ जाते?
जो वाबस्ता हुए तुम से वो अफसाने कहां जाते?
निकल कर दैरो-काबा से[2] अगर मिलता न मैखाना।
तो ठुकराये हुए इन्सा खुदा जाने कहा जाते?
तुम्हारी बेरुखी ने लाज रख ली बादा-खाने की।
तुम आँखो से पिला देते तो पैमाने कहां जाते?
चलो अच्छा हुआ काम आ गई दीवानगी अपनी।
वगरना हम ज़माने भर को समझाने कहां जाते?
'क़तील' अपना मुकद्दर[3] गम से बेगाना अगर होता।
तो फिर अपने-पराये हम से पहचाने कहा जाते?

---

१. नौकायें २ काबे और बुतखाने से ३. भाग्य

इक जाम खनकता जाम, कि साकी रात गुजरने वाली है ।
इक होशरुबा[1] इनश्राम, कि साकी रात गुजरने वाली है ॥
वो देख सितारो के मोती हर श्रान बिखरते जाते हैं ।
श्रफलाक पे[2] है कुहराम[3], कि साकी रात गुजरने वाली है ॥
गो देख चुका हूँ पहले भी नज्जारा दरियानोशी का ।
एक श्रोर सलाए-श्राम[4], कि साकी रात गुजरने वाली है ॥
ये वक्त नही है बातो का पलको के साये काम में ला ।
इलहाम[5] कोई इलहाम, कि साकी रात गुजरने वाली है ॥
मदहोशी मे ऐहसास के ऊँचे ज़ीने से गिर जाने दे ।
इस वक्त मुझे न थाम, कि साकी रात गुजरने वाली है ॥

फुटकर शेर

भवर से बच निकलना तो कोई मुश्किल नही लेकिन ।
सफीने[6] ऐन दरिया के किनारे[7] डूब जाते हैं ॥

◇ ◇ ◇

न जाने कौन सी मंजिल पे श्रा पहुचा है प्यार श्रपना ।
न हमको एतबार उनका, न उनको एतबार श्रपना ॥

◇ ◇ ◇

एक जरा सा दिल है जिसको तोड के भी तुम जा सकते हो ।
ये सोने का तौक[8] नही है ये चादी की दीवार नही ॥
मल्लाहो ने साहिल-साहिल मौजो की तौहीन तो कर दी ।
लेकिन फिर भी कोई भवर तक जाने को तैयार नही ॥

---

१ होश उड़ा देने वाला २ आकाश पर ३ शोर-वावेला ४ श्राम दावत ५ वह बात जो भगवान की श्रोर से मन में डाली जाए ६. नौकायें ७ ठीक किनारे पर ८ गले की जंजीर

◇ ◇ ◇